गाधीजीकी अपेक्षा

गांधीजीकी महत्त्वपूर्ण पुस्तकें

अहिंसक समाजवादकी ओर	१.००
अहिंसाका पहला प्रयोग	१.५०
आरोग्यकी कुंजी	०.४४
आर्थिक और औद्योगिक जीवन : उसकी समस्यायें और हल — १	४.००
खादी : क्यों और कैसे?	२.००
[illegible] कथा और गीता	२.५०
गांधी-विचार-सार	०.५०
ग्राम-स्वराज्य	३.००
नई तालीमकी ओर	१.००
बापूकी कलमसे	२.५०
बुनियादी शिक्षा	१.५०
भारतकी खुराककी समस्या	०.५०
मेरा धर्म	२.००
मेरे जेलके अनुभव	०.७५
मेरे सपनोंका भारत	२.५०
मोहन-माला	१.२५
रामनाम	०.५०
संयम और संतति-नियमन	३.००
सत्यके प्रयोग अथवा आत्मकथा	२.००
सर्वोदय	२.००
स्त्रियां और उनकी समस्यायें	१.००
हम सब एक पिताके बालक	३.००
हमारे गांवोंका पुनर्निर्माण	१.५०

नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद-१४

गांधीजीकी अपेक्षा

गांधीजीकी अपेक्षा

[राष्ट्रपिता द्वारा लोक-प्रतिनिधियोंसे रखी गई अपेक्षायें]

मो० क० गांधी

संग्राहक
हरिप्रसाद व्यास

नवजीवन प्रकाशन मन्दिर
अहमदाबाद-१४

प्रकाशकका निवेदन

गांधीजीकी कार्य-पद्धतिका निरीक्षण करने पर उसका एक मुख्य लक्षण सहज ही ध्यानमें आता है। सार्वजनिक हितके प्रश्नोंका विचार करते समय उनके निर्णय किसी विशेष विचारसरणीके आधार पर अथवा किसी निश्चित सिद्धान्तसे फलित नहीं होते थे। उनका ध्यान केवल इसी बात पर केन्द्रित रहता था कि सत्य और अहिंसाके मूल-भूत सिद्धान्तोंको देशके शासनसे सम्बन्धित कामकाजमें व्यवहारका रूप कैसे दिया जाय। कांग्रेसका और कांग्रेसके द्वारा भारतीय राष्ट्रका उन्होंने जो मार्गदर्शन किया, उसे समझनेके लिए यह बात खास तौर पर ध्यानमें रखने जैसी है।

गांधीजीने स्वराज्यकी स्थापनाके लिए कांग्रेसजनोंको अपनी कार्य-पद्धतिकी तालीम दी थी, इतना ही नहीं, स्वराज्यकी स्थापना होनेके बाद स्वराज्यमें राज्य-प्रबन्ध कैसे किया जाय, इस विषयमें कांग्रेसजनोंकी दृष्टि और समझका भी उन्होंने विकास किया था।

१९३७ में भारतकी जनताको प्रान्तीय स्वराज्यके मर्यादित अधिकार प्राप्त हुए उस समयसे आरंभ करके १९४७ में शासनकी संपूर्ण सत्ता और अधिकार भारतके लोगोंको मिले तब तक और उसके बाद भी गांधीजीने अपना यह कार्य जीवनके अंतिम दिन तक चालू रखा था।

स्वतंत्र भारतीय राष्ट्रकी राज्य-व्यवस्थाके बारेमें गांधीजीका मूल आग्रह यह था कि जिन सेवकों पर देशके शासनकी जिम्मेदारी है, उन्हें [illegible] बातोंका सदा पूरा ध्यान रखना चाहिये : (१) उन्हें एक गरीब [illegible] राज्य-व्यवस्था चलानी है; और (२) उसे चलाते हुए उन्हें [illegible] पिछड़े हुए और गरीब जन-समुदायके हितका सबसे पहले

सवाल रहता है। गांधीजी १९१५में स्थायी रूपसे भारतमें रहनेके लिए दक्षिण अफ्रीकासे लौटे तभीसे उन्होंने यह समझाना शुरू कर दिया था कि यह कार्य कैसे किया जाय। इसलिए पहले १९३७में और फिर १९४७के बाद गांधीजीने भारतका राजकाज चलानेवाले जन-सेवकोंको यह बताया था कि उनकी जिम्मेदारी कैसी और कितनी है।

इस पुस्तकमें गांधीजीके इस विषयसे सम्बन्धित भाषणों और लेखोंका संग्रह किया गया है। इन लेखों और भाषणोंमें उन्होंने स्पष्ट रूपसे यह दिखाया है कि कांग्रेसजनोंने भारतका शासन-तंत्र हाथमें लेकर कैसी जिम्मेदारी अपने सिर उठाई है और इस जिम्मेदारीको वे किस प्रकार भलीभांति अदा कर सकते हैं।

गांधीजीकी रीति आदेश देनेकी नहीं थी। और न उन्होंने कभी यह माना कि कांग्रेसजनोंको आदेश देनेकी कोई सत्ता उनके पास है। वे कांग्रेसियोंके भीतरकी सद्भावना और अच्छाईसे अपील करते थे और यह विश्वास रखते थे कि उनकी अपील व्यर्थ नहीं जायगी।

जनसेवकोंको भारतकी शासन-व्यवस्था द्वारा भारतीय जनताकी कितनी और कैसी सेवा करनी है, इस सम्बन्धमें गांधीजीकी आशाओं और अपेक्षाओंका दर्शन हमें इस संग्रहमें होता है। ऐसा लगता है कि आज मूलभूत बातोंको कुछ हद तक भुलाया जा रहा है और राज-नीतिक तथा सार्वजनिक कार्यकर्ता कुछ मिश्र प्रयोजनसे कार्य करते दिखाई देते हैं। ऐसे समय यह संग्रह हमें जाग्रत करनेमें बहुत उपयोगी सिद्ध होगा।

आशा है, भारतकी शासन-व्यवस्थाकी जिम्मेदारी अपने कंधों पर लेनेवाले सेवकोंसे राष्ट्रपिताने जो अपेक्षायें रखी हैं तथा इस गरीब देशकी जनताके प्रति उनका जो कर्तव्य है, उसका स्पष्ट दर्शन उन्हें इस संग्रहमें होगा।

२६–१–'६६

अनुक्रमणिका

विभाग – ६ : मतदान, मताधिकार और कानून

विभाग – ७ : पद-ग्रहण और मंत्रियोंका कर्तव्य

विभाग – ८ : मंत्रियोंके वेतन

विभाग – ९ : मंत्रियोंके लिए आचार-संहिता

विभाग – १० : मंत्रि-मण्डलोंकी आलोचना

विभाग – ६ : मतदान, मताधिकार और कानून

विभाग – ७ : पद-ग्रहण और मंत्रियोंका कर्तव्य

विभाग – ८ : मंत्रियोंके वेतन

विभाग – ९ : मंत्रियोके लिए आचार-संहिता

विभाग – १० : मंत्रि-मण्डलोंकी आलोचना

विभाग – ११ : शांति-आन्दोलन और अहिंसा

विभाग – १२ : विविध

• धारासभाके सदस्योंको उनका किराया और भत्ता चाहिये, मंत्रियोंको उनके वेतन चाहियें, वकीलोंको उनका मेहनताना और मुकदमेबाजोंको उनकी डिग्रियां चाहिये, मां-बापको अपने लड़कोंके लिए ऐसी शिक्षा चाहिये जिससे वे मौजूदा जीवनमें नामी-गिरामी आदमी बन जायें, लखपतियों और करोड़पतियोंको सब तरहकी सुविधायें चाहिये जिससे वे अपने लाखों-करोड़ोंको अरबों-खरबों तक पहुंचा सकें और बाकीके लोगोंको निःसत्व शांति चाहिये। ये सब बड़े सुन्दर ढंगसे उस मध्यवर्ती मस्याके आसपास घूमते हैं। सब कोई तांडवमें मस्त हैं। कोई उससे अपनेको मुक्त करनेकी चिन्ता नहीं करता। और इसलिए ज्यों ज्यों उसका वेग बढ़ता जाता है त्यों त्यों वे अधिक हर्षोन्मत्त बनते जाते हैं। परन्तु वे नहीं जानते कि यह कृतान्तका तांडव है और उन्हें जो हर्षोन्माद अनुभव होता है, वह उस रोगीके हृदयकी तेज धड़कन जैसा है जो अपने जीवनकी अन्तिम सांसें खींच रहा है।

हिन्दी नवजीवन, १२-३-'२२, पृ० २३७

*

• जब कभी आपके हृदयमें सन्देह उत्पन्न हों या आप अपने बारेमें अत्यधिक विचार करें, तब आप अपने सामने यह कसौटी रखें। अपनी आंखोंसे देखे हुए सबसे गरीब और सबसे दुर्बल मनुष्यका चेहरा आप याद करें और अपने मनसे यह प्रश्न पूछें कि जो कदम उठानेका विचार आप कर रहे हैं, वह उस गरीब और दुर्बलके लिए उपयोगी सिद्ध होगा या नहीं? उस कदमसे उसे कोई लाभ होगा? उस कदमसे क्या वह अपने जीवन पर और अपने भविष्य पर . . . फिरसे अधिकार पा सकेगा? दूसरे शब्दोंमें कहूं तो क्या आपका वह कदम भूखे और आध्यात्मिक दारिद्रय भोगनेवाले लोगोंको स्वराज्यकी दिशामें ले जायगा? उसके बाद आप देखेंगे कि आपके स[illegible]
सर्वथा लुप्त हो गये हैं।

महात्मा गांधी : दि लास्ट फेज, खण्ड-२ (१९५८), पृ० ६५

विभाग – १ : प्रास्ताविक

१

अधिकार-पत्र

स्वतंत्र भारतका संविधान

मैं ऐसे संविधानकी रचनाके लिए प्रयत्न करूंगा, जो भारतको हर तरहकी गुलामीसे और किसीका आश्रित होनेकी भावनासे मुक्त कर देगा और यदि जरूरत पड़े तो उसे पाप करनेका भी अधिकार देगा। मैं ऐसे भारतके लिए कार्य करूंगा, जिसमें गरीबसे गरीब आदमियोंको भी ऐसा लगे कि भारत उनका अपना देश है — जिसके निर्माणमें उनका भी महत्त्वपूर्ण हाथ है। मैं ऐसे भारतके लिए कार्य करूंगा, जिसमें बसनेवाले लोगोंका ऊंचा वर्ग और नीचा वर्ग नहीं होगा; वह ऐसा भारत होगा, जिसमें सारी कौमें पूरी तरह मेल-मिलाप और मित्रताके साथ रहेंगी। ऐसे भारतमें अस्पृश्यताके अभिशापके लिए अथवा नशीले पेयों और मादक पदार्थोंके अभिशापके लिए कोई गुंजाइश नहीं होगी। उसमें स्त्रियां पुरुषोंके साथ समान अधिकारोंका उपभोग करेंगी। चूंकि हम बाकीकी दुनियाके साथ शांतिसे रहेंगे और न हम दूसरोंका शोषण करेंगे और न अपना शोषण होने देंगे, इसलिए हमारी ऐसी छोटीसे छोटी सेना होगी जिसकी कि कल्पना की जा सकती है। उस भारतमें ऐसे समस्त देशी या विदेशी हितोंका आदर किया जायगा, जिनका देशके करोड़ों मूक नागरिकोंके हितोंके साथ कोई संघर्ष और विरोध नहीं होगा। मैं व्यक्तिगत रूपमें देशी और विदेशीके भेदसे नफरत करता हूं। यह मेरे सपनोंका भारत है। . . . इससे कम किसी चीजसे मुझे सन्तोष नहीं होगा। १

२

संसदीय शासन-व्यवस्था

स्वराज्यसे मेरा अभिप्राय है लोक-सम्मतिके अनुसार होनेवाला भारतवर्षका शासन। लोक-सम्मतिका निश्चय देशके बालिग लोगोंकी बड़ीसे बड़ी संख्याके मतके द्वारा होगा, फिर वे स्त्रियां हों या पुरुष, इसी देशके हों या इस देशमें आकर बस गये हों। वे लोग ऐसे होने चाहिये, जिन्होंने अपने शारीरिक श्रमके द्वारा राज्यकी कुछ सेवा की हो और *जिन्होंने मतदाताओंकी सूचीमें अपना नाम लिखवा लिया हो।* . . . १

फिलहाल मेरे स्वराज्यका अर्थ होगा भारतकी आधुनिक व्याख्या-वाली संसदीय शासन-व्यवस्था। २

आजकी मेरी सामूहिक प्रवृत्तिका ध्येय तो हिन्दुस्तानकी प्रजाकी इच्छाके अनुसार चलनेवाला पालियामेन्टरी पद्धतिका स्वराज्य पाना है। ३

संसदीय शासन-व्यवस्थाके अभावमें हम कहींके न रहेंगे। . . .

तब हमारी संसद् क्या करेगी? जब हमारी संसद् हो जायगी तब हमें महान भूलें करने और उन्हें सुधारनेका अधिकार होगा। प्रारंभिक अवस्थाओंमें बड़ी बड़ी भूलें हमसे होंगी ही। . . . ब्रिटेनकी लोक-सभाका इतिहास बड़ी बड़ी भूलोंका इतिहास है। एक अरबी कहावत कहती है कि मनुष्य भूलोंका अवतार है। स्वराज्यकी एक परिभाषा है भूल करनेकी स्वतंत्रता और की हुई भूलोंको सुधारनेका कर्तव्य। और ऐसा स्वराज्य पालियामेन्ट — संसद् — में ही निहित है। उसी पालियामेन्टकी आज हमें जरूरत है। आज हम उसके योग्य हैं। ४

३

विधानसभाओंमें जाना

मैं आपसे कहूं कि धारासभाओं (विधानसभाओं) का वहिष्कार सत्य और अहिंसाकी तरह कोई शाश्वत अथवा सनातन सिद्धान्त नहीं है। उनके प्रति मेरा जो विरोध-भाव था, वह अब बहुत कम हो गया है। लेकिन इसके ये मानी नहीं हैं कि मैं पहलेकी सहयोगकी स्थितिकी ओर लौट रहा हूं। यह तो शुद्ध युद्धकलाका प्रश्न है; अमुक समय पर सबसे जरूरी क्या है, केवल इतना ही मैं कह सकता हूं। क्या मैं वही असहयोगी हूं, जो कि १९२० में था? हां, मैं वही असहयोगी हूं। परन्तु आप लोग यह भूल जाते हैं कि मैं इस अर्थमें सहयोगी भी था कि असहयोग मैंने सहयोगके खातिर किया था; और तब भी मैंने कहा था कि यदि मैं देशको सहयोगके जरिये आगे ले जा सकूं, तो मुझे सहयोग करना चाहिये। धारासभाओंमें जानेकी मैंने अब जो सलाह दी है, वह सहयोग देनेके लिए नहीं बल्कि सहयोग लेनेके लिए दी है। . . .

यदि धारासभाओंके चुनावकी लड़ाईका अर्थ सत्य और अहिंसाकी कुरबानी हो, तो प्रजातंत्रको कोई एक क्षणके लिए भी नहीं चाहेगा। जनताकी वाणी परमेश्वरकी वाणी है; और यह उन ३० करोड़ मनुष्योंकी वाणी है, जिनका कि हमें प्रतिनिधित्व करना है। क्या सत्य और अहिंसाके द्वारा ऐसा करना संभव नहीं? जो लोग जनताके प्रतिनिधि नहीं हैं, जो जनताके सेवक नहीं हैं, उनकी आवाज जुदी हो सकती है; परन्तु उन लोगोंकी नहीं, जो ३० करोड़ मनुष्योंके सेवक होनेका दावा करते हैं।

हमारे देशके लोगोंकी बहुत बड़ी संख्याको वोट (मत) देनेका अधिकार प्राप्त हो गया है — उनमें से करीब एक-तिहाई लोग वोट दे सकते हैं। इन चुनावोंने हमें उनके पास कांग्रेसका सारा कार्यक्रम ले जानेका मौका दिया है। यदि यह बात थी तो गांधी-सेवा-संघके सदस्य क्या अलग खड़े रहते? इसमें शक नहीं कि हम रचनात्मक कार्यक्रमकी प्रतिज्ञासे बंधे हुए हैं। परन्तु क्या यह देखना हमारा कर्तव्य नहीं कि हमारे नाम पर जो लोग धारासभाओंमें जाते हैं, वे रचनात्मक कार्यक्रमको वहां पूरा करते हैं या नहीं? याद रखिये कि बगैर रचनात्मक कार्यक्रमके कोई भी राजनैतिक कार्यक्रम टिक नहीं सकता। वह सारा कार्यक्रम सत्य और अहिंसाका प्रतीक है, और यह देखना गांधी-सेवा-संघका सबसे पहला काम है कि उस कार्यक्रमको किसी तरहकी क्षति तो नहीं पहुंच रही है।

यह बात ध्यानमें रखिये कि मेरा मतलब यह नहीं है कि आप अपने सदस्योंको धारासभाओंमें एक अपरिहार्य विपत्ति (बुराई) समझकर भेजें। वह तो आपका एक कर्तव्य होना चाहिये। आज जो धारासभायें हैं वे हमारी हैं, उनमें हमारी जनताके प्रतिनिधि हैं। हमें वहां अपने सत्य और अहिंसाके सिद्धांतोंका पालन करना है। मैं कांग्रेससे जो हट गया हूं उसके पीछे कुछ खास कारण हैं। यह मैंने इसलिए किया है कि कांग्रेसको मैं और भी अधिक मदद दे सकूं। जब तक सत्य और अहिंसा पर आधार रखनेवाले १९२० के कार्यक्रमकी प्रतिज्ञा पर कांग्रेस कायम है तब तक मेरा सारा समय और सारी शक्ति उसकी सेवाके लिए अर्पित है।

लेकिन यह प्रश्न पूछा जाता है कि जिन धारासभाओंकी हमने मुखालिफत की, उनमें हम कैसे जायें? तबकी धारासभाओंसे आजकी धारासभायें भिन्न हैं। हम उन्हें नष्ट नहीं करना चाहते; नष्ट तो हम उस 'सिस्टम' — पद्धति या प्रणाली — को करना चाहते हैं, जिसे चलानेके लिए ये धारासभायें बनाई गई हैं।

हम यहां सत्य और अहिंसाको दुनियामें कायम करनेके लिए नहीं, बल्कि उनको यहां स्थापित करनेके लिए आये हैं। आज कांग्रेसको धारासभाओं पर कुछ ध्यान ज्यादा खर्च करना पड़ा है। लेकिन देशमें जब हम ऐसी ताकत पैदा कर देंगे, जिसका कोई मुकाबला न कर सके, तब हमें इन पार्टि-यों पर खर्च नहीं करना पड़ेगा। लेकिन सवाल तो यह है कि हम अब-तक रचनात्मक कार्यक्रमको कहां तक किया करते हैं। अब तक उसमें हमने कितना हासिल किया है? धारासभाओंके आज जितने मेम्बर हमारे पास हैं? यदि सम्पूर्ण रचनात्मक कार्यक्रम हमने पूरा कर लिया होता, तो आज किसी भी प्रान्तकी धारासभामें सिवा कांग्रेस पार्टीके कोई दूसरी पार्टी न होती।

लेकिन मैंने जो यह सब कहा है, उसका यह मतलब नहीं कि आप सबके सब आज धारासभाओंमें जानेकी आस लगाने लगें। सबकी तो बात ही नहीं, गांधी-सेवा-संघका एक भी आदमी धारासभामें जानेका प्रयत्न न करे। मेरे कहनेका मतलब तो यह है कि अगर मौका आ जाय, तो कोई उससे पहलू न बचाये। धारासभामें जानेके लिए कानूनी बारीकियोंका ज्ञान जरूरी नहीं। साहस और रचनात्मक कार्यक्रममें अटल श्रद्धा, बस इतना ही वहां जानेके लिए जरूरी है। आपमें से जो लोग धारासभाओंमें जायं, उनसे मुझे यही उम्मीद रखनी चाहिये कि आप वहां अपनी तकली चलाना जारी रखेंगे और मद्य-निषेध तथा रचनात्मक कार्यक्रमके लिए आप वहां काम करेंगे। लेकिन वहां सत्ताके लिए छीना-झपटी नहीं होनी चाहिये। उसका मतलब तो हमारी बरबादी होगी। केवल वही लोग धारासभाओंमें जायेंगे, जिन्हें कि गांधी-सेवा-संघ जानेके लिए कहेगा। मैं इससे इनकार नहीं करता कि धारासभायें एक भारी प्रलोभन हैं, वे करीब करीब शराबकी दुकानें ही हैं। स्वार्थ साधनेवालों और नौकरियोंके पीछे पड़े रहनेवालोंको वे मौका देती हैं। किन्तु कोई कांग्रेसी, कोई गांधी-सेवा-संघका सदस्य इस गन्दे उद्देश्यको लेकर धारा-सभाओंमें नहीं जा सकता। कांग्रेसका नेता कांग्रेसके कार्यक्रम पर ध्यान

देनेके लिए उन्हे बाध्य करता रहेगा और नाजायज तरीकोंसे उसमें किसीको जरा भी हाथ नही डालने देगा। इस तरहकी प्रतिज्ञा लेकर लोग वहा कर्तव्य-बुद्धिसे जायेंगे, न कि उसे एक अपरिहार्य विपत्ति समझकर। अगर हमसे हो सका तो ग्यारहो धारासभाओंको हमें ऐसे आदमियोंसे भर देना है, जो फौलादके जैसे सच्चे हो, लोकसेवा जिनका व्रत हो और जिनका अपना कोई स्वार्थ न हो। १

४

धारासभाएं और रचनात्मक कार्यक्रम

श्री किशोरलालकी शका और भय यह है कि धारासभा (विधान-सभा) का कार्यक्रम हमेशा प्रलोभनोंको उभाड़ता है और मनुष्य इससे अपनेको भूल जाता है, अतः उसका सत्य और अहिंसाको भूल जाना स्वाभाविक है। . मैं मानता हूं कि धारासभाका कार्यक्रम मनुष्यकी लालसाओंको उभाड़ सकता है और उसे बड़े बड़े प्रलोभनोंमें डाल सकता है। पर क्या इसी वजहसे हमें उससे अपना पहलू बचाना चाहिये? हम उसके प्रलोभनोंका प्रतिरोध क्यो न करे? . . .

हमारा कार्यक्रम केवल एक ही है — और वह है रचनात्मक कार्यक्रम, क्योंकि स्वराज्य इसी पर निर्भर करता है। किन्तु धारासभाओंमें जानेमें सत्य और अहिंसाको हम जरा भी कुरबान नही करेंगे। वहा जाकर भी हम रचनात्मक कार्यको मदद पहुचाना चाहते हैं। मैं आपसे कहता हू कि यदि हम सबने चरखेको बुद्धिपूर्वक चलाया होता, तो हमें स्वराज्य हासिल हो गया होता और हमें धारासभाओंमें नही जाना पड़ता। अभी तक हम चरखेके साथ यों ही खेलते रहे। हमने उसे बुद्धिपूर्वक चलाया नही है। अब अगर हम उसे बुद्धिपूर्वक चलाना चाहते है, तो हमें तीन करोड़ मतदाताओंके प्रतिनिधियोंके घनिष्ठ सपर्कमें आना ही चाहिये। इसका यह अर्थ नहीं कि अगर यह बात

५

धारासभाओंका मोह

मैं मानता हूं कि धारासभाओंमें या अन्य निर्वाचित संस्थाओंमें किसी न किसी कांग्रेसीको तो जाना ही चाहिये। पहले मैं इस मतका नहीं था कि जहां चुनाव हो वहां कांग्रेसियोंको उम्मीदवारी करनी ही चाहिये, लेकिन अब मैं इस मतका हूं। मेरी यह आशा सफल नहीं हुई कि सब कांग्रेसी धारासभाका बहिष्कार करेंगे। अब जमाना भी बदला है और स्वराज्य नजदीक आया है। यदि ऐसा है, तो जहां चुनाव होता हो वहां कांग्रेसी उम्मीदवार होने ही चाहिये। इसमें सम्मान कभी हेतु हो ही नहीं सकता, सेवा ही हेतु हो सकती है। कांग्रेस जैसी संस्थाकी यह प्रतिष्ठा होनी चाहिये और है कि जिसे वह पसन्द करे वही चुनावके लिए खड़ा हो, जिस आदमीको वह पसंद न करे उसे दुःख तो होना ही नहीं चाहिये, बल्कि उसे दूसरी सेवाके लिए मुक्ति मिलनेकी खुशी होनी चाहिये। वास्तवमें ऐसी स्थिति नहीं है, यह दुःखकी बात है।

दूसरे, चुनाव लड़नेमें कांग्रेसके पैसा खर्च करनेकी जरूरत ही नहीं होनी चाहिये। लोकप्रिय संस्थाके उम्मीदवार तो घर बैठे चुने जाने चाहिये। गरीब मतदाताओंके लिए सवारीका इंतजाम घर बैठे होना चाहिये। उदाहरणके लिए, पेटलाद गावके मतदाताओंको नडियाद जाना पड़े, तो गरीबोंका किराया पेटलादके खुशहाल लोग दें। सगठित, लोकसत्तात्मक, अहिंसक संस्थाकी यह एक निशानी है। पैसे पर नजर रखनेवाली संस्था गरीबोंकी सेवा कभी नहीं कर सकती। अगर लोगोंकी लड़ाई पैसेसे जीती जा सकती हो, तो अंग्रेजी सल्तनत, जो अपार पैसा खर्च कर सकती है और करती है, सबसे प्रिय मानी जायगी। लेकिन हकीकत यह है कि शाही नौकर भी, जो बड़ी बड़ी तनख्वाह लेते हैं,

दिलमें अंग्रेजी सल्तनतसे खुश नहीं होते। और करोड़ों गरीबोंका तो पूछना ही क्या?

हम धारासभाकी उपयोगिताकी भी जांच करें। धारासभा सल्तनतके दोषोंको खुला कर सकती है, परन्तु यह उसकी बड़ी सेवा नहीं है। सल्तनतके दोष जाननेवाले और उसके शिकार बननेवाले लोग शिकार क्यों बनते हैं, यह कौन बता सकता है? यह जनताको बतानेवाले और उन दोषोंका विरोध करना जनताको सिखानेवालेकी सेवा बहुत बड़ी है। धारासभा इस काममें बाधक बनती है, बनी है और बनेगी।

धारासभाका दूसरा और सच्चा उपयोग है बुरे कानूनोंको न बनने देना और लोकोपयोगी कानून पास करना। लोकोपयोगी कानूनका मतलब यह है कि अधिकारी सत्ता मुख्यतः रचनात्मक कार्योंके लिए जितनी सुविधा कर सके उतनी कर दे।

असल बात यह है कि धारासभाका काम लोकमतके अनुसार चलना है। आज तो उसमें कुछ वाक्चतुर लोगोंकी जरूरत मानी जाती है। लेकिन आखिरमें वह जरूरत कम ही रहेगी, उसमें तो व्यवहार-कुशल ज्ञानियोंकी और उनकी बातका अनुमोदन करनेवाले दूसरे लोगोंकी ही जरूरत रहेगी। इस प्रकार जिसमें केवल सेवाका ही स्थान है और जिसने मान-सम्मान, पदवी वगैराका बहिष्कार किया है, उस संस्थामें इस भावनाका होना ही हानिकारक है कि धारासभामें जानेमें प्रतिष्ठा है। अगर यह विचार जड़ पकड़ ले, तो उसमें मुझे महान, कांग्रेसका पतन और अंतमें उसका नाश ही दिखाई देता है।

अगर कांग्रेसकी ऐसी हालत हो जाय, तो हिन्दुस्तानके नर-कंकालोंमें लहू और मांस कौन पूरेगा और हिन्दुस्तानको तथा दुनियाको किसका आधार रहेगा? १

६

रचनात्मक कार्यक्रम

कांग्रेसकी कार्यकारिणी समितिने इलाहाबादकी अपनी बैठकमें स्वीकृत एक प्रस्तावमें इस बात पर जोर दिया है कि धारासभाओंके सदस्यों और कांग्रेसके दूसरे कार्यकर्ताओंके लिए यह बहुत जरूरी है कि जिन तीन करोड़ ग्रामवासियों और उनके प्रतिनिधियोंके बीच सीधा संपर्क स्थापित हो गया है, उनके झोपड़ों तक वे कांग्रेसका १९२० का रचनात्मक कार्यक्रम पहुचायें। जो प्रतिनिधि धारासभाओंमें चुने गये हैं वे अगर चाहें तो ग्रामवासियोंकी ओर उपेक्षाका भाव बता सकते हैं, या चाहें तो उन्हें आर्थिक बोझसे थोड़ी अथवा उचित मात्रामें मुक्ति भी दिला सकते हैं। परन्तु जब तक वे चतुर्विध रचनात्मक कार्यक्रममें —अर्थात् सार्वत्रिक हाथ-कताई द्वारा खादीके सार्वत्रिक उत्पादन और उपयोगके, हिन्दू-मुस्लिम एकताके, शराबकी जिन्हें लत पड गई है उनमें प्रचार करके एकदम शराब बन्द करनेकी प्रेरणा देनेके और हिन्दुओं द्वारा अस्पृश्यताके पूर्ण निवारणके कार्यक्रममें —ग्रामवासियोंकी दिलचस्पी पैदा नहीं करेंगे, तब तक उनमें आत्म-विश्वास, स्वाभिमान और खुदकी स्थितिमें सतत सुधार करनेकी शक्ति जैसे गुण नहीं आ सकते।

१९२० और १९२१ में हजारों सभाओंमें यह बतलाया गया था कि इन चार चीजोंके बिना अहिंसाके मार्गसे स्वराज्य प्राप्त होना असंभव है। मैं मानता हूं कि आज भी मेरी वह बात उतनी ही सच है।

सरकारी व्यवस्था द्वारा करोंका नियमन करके आम जनताकी आर्थिक स्थिति सुधारना एक बात है; और उनके मनमें यह भावना पैदा करना बिलकुल दूसरी बात है कि वे केवल अपने ही प्रयत्नसे अपनी स्थितिको सुधारें। यह तो वे खुद अपने हाथोंसे सूत कात कर तथा गांवोंकी दूसरी दस्तकारियोंको बढ़ा कर ही कर सकते हैं।

इसी तरह विभिन्न सम्प्रदायों या कौमोंके पारस्परिक व्यवहारोंका नियमन नेताओंके अपनी मरजीसे किये हुए समझौतों या राज्यके जबरन् लादे हुए समझौतों द्वारा करना एक बात है; और आम लोग एक-दूसरेके धर्मों और बाहरी व्यवहारोंके प्रति आदर-भाव रखने लगें यह बिलकुल दूसरी बात है। धारासभाओंके सदस्य और कांग्रेसके कार्यकर्ता गांवोंके लोगोंमें पहुंचकर जब तक उन्हें परस्पर सहिष्णुता रखना नहीं सिखायेंगे तब तक यह चीज संभव नहीं है।

फिर कानूनके बल पर शराब बन्द कराना — और यह तो करना ही होगा — एक चीज है; और मद्य-निषेधका स्वेच्छासे पालन करवा कर उसे टिकाये रखना बिलकुल दूसरी चीज है। निराश और बैठे-ठाले लोग ही यह कहते हैं कि खर्चीली और भारी जासूसी पद्धतिके बिना मद्य-निषेधका काम चल नहीं सकता। अगर कार्यकर्ता ग्रामजनोंके पास जायें और जहां जहां लोग शराब पीते हैं वहां उसके बुरे परिणाम लोगोंको अच्छी तरह समझायें तथा शोध करनेवाले विद्वान शराबकी लतके कारण खोज निकालें और लोगोंको सही ज्ञान करायें, तो मद्य-निषेधका काम बिना किसी खर्चके चल सकता है। इतना ही नहीं, उससे मुनाफा भी हो सकता है। यह काम स्त्रियां विशेष रूपसे कर सकती हैं।

यही बात अस्पृश्यताको भी लागू होती है। अस्पृश्यताके दुष्परिणामोंको कानून द्वारा हम भले नष्ट कर दें, और यह करना ही है; परन्तु जब तक लोग अपने दिलसे छुआछूतकी भावनाको नहीं निकालेंगे तब तक हमें सच्ची स्वतंत्रता नहीं मिल सकती। जब तक आम जनताके हृदयसे अस्पृश्यताकी भावना दूर नहीं होती तब तक वह एकताकी भावनासे और एक हृदयसे कदापि काम नहीं कर सकती।

इस प्रकार अस्पृश्यता-निवारणका कार्य तथा इस रचनात्मक कार्यक्रमके अन्य तीनों अंग लोकशिक्षासे भरे हुए हैं। और अब तो तीन करोड़ स्त्री-पुरुषोंके हाथमें — सही या गलत रूपमें — सत्ता सौंप

दी गई है, इसलिए यह कार्य तात्कालिक महत्त्वका हो गया है। यह सत्ता चाहे जितनी अल्प या सीमित हो, तो भी कांग्रेसवादियों और दूसरोंके हाथमें — जिन्हें इन मतदाताओंसे वोट लेने हों — इन तीन करोड़ मनुष्योंको सही या गलत रास्तेसे शिक्षा देनेकी शक्ति है। जो वस्तुए उनके जीवनके साथ अत्यंत निकटका सम्बन्ध रखती हैं, उनमें उन लोगोंकी बिलकुल ही उपेक्षा करना गलत मार्ग होगा। १

हालतमें बरकरार रखनेका मैं वचन देता हूं।

२. मैं इस सिद्धान्तको नहीं मानता कि हिन्दू और मुसलमान दो अलग राष्ट्र हैं। मेरा मत यह है कि हिन्दुस्तानके सब लोग — फिर वे किसी भी जाति या धर्मके हों — एक ही राष्ट्रके अंग हैं।

३. मैं अपने सारे कार्यों और भाषणों द्वारा ऐसा प्रयत्न करूंगा, जिससे इस प्राचीन और पवित्र देशके सब लोगोंको एक राष्ट्रीयताके विचारको शक्ति मिले।

४. अगर किसी समय में इस प्रतिज्ञाको तोड़नेका अपराधी साबित होऊं, तो मुझे उस समयकी अपनी किसी भी बड़ी तनखाहकी नौकरी या पदसे हटा दिया जाय।"

इस पत्रव-पत्रके शब्दोंमें सुधारकी गुंजाइश हो सकती है। लेकिन अगर हम राजनीतिक क्षेत्रमें बढ़नेवाले रोगसे मुक्त होना चाहते हैं, तो इन मसविदेमें रही भावना सचमुच प्रशंसाके लायक और अपनाने जैसी है। १

८
धारासभाओंके सदस्य

जो कांग्रेसी किसी धारासभाका सदस्य है वह वहां किसी भी पद पर क्यों न आसीन हो, कांग्रेसका अनुशासन माननेके लिए वह बंधा हुआ है और कांग्रेसकी जो भी हिदायतें समय समय पर जारी हों उनका पालन उसे करना होगा।

मेरी रायमें तो जो कांग्रेसी धारासभाओंके सदस्य हैं, चाहे वे केवल सदस्य हों या मंत्री हों या अध्यक्ष हों, उन्हें अपने हरएक काममें इस बातका ध्यान रखना होगा कि कांग्रेस-विधानके अनुसार उन्हें सत्य और अहिंसा पर कायम रहना है। इस प्रकार जब किसी धारासभामें कोई कांग्रेसी अपने विरोधियोंके साथ पेश आये, तो उसका व्यवहार बिलकुल ईमानदारीका और विनम्रतासे युक्त ही होना चाहिये। ईमानदारीसे दूर रहनेवाली गंदी राजनीतिका वह सहारा न लेगा, कभी नीचता पर नहीं उतरेगा और अपने विरोधीकी कठिनाईसे लाभ नहीं उठायेगा। धारासभामें जितना ही बड़ा उसका पद होगा, उतनी ही अधिक इन विषयोंमें उसकी जिम्मेदारी होगी। धारासभाका सदस्य अपने निर्वाचन-क्षेत्र और अपने दलका प्रतिनिधित्व करता है, इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं। लेकिन इसके साथ साथ वह अपने समस्त प्रान्तका भी प्रतिनिधित्व करता है। मंत्री अपने दलकी उन्नति तो जरूर करता है, परन्तु कुल मिलाकर अपने राष्ट्रको हानि पहुंचाकर नहीं। निश्चय ही वह कांग्रेसकी उसी हद तक उन्नति करता है, जिस हद तक वह राष्ट्रकी उन्नत करता है; क्योंकि वह जानता है कि अगर

विदेशी शासकोंसे वह युद्ध नहीं कर सकता, तो अपने राष्ट्रके अंदर ही अपने विरोधियोंसे भी वह युद्ध नहीं ठानेगा। और चूंकि धारासभा एक ऐसी जगह है जहां सब जातियां, वे पसंद करें या न करें, परस्पर मिलती हैं, इसलिए वहीं वह अपने विरोधियोंको जीत कर ऐसी शक्ति पैदा करनेकी आशा रख सकता है, जिसे अदम्य बनाया जा सके। धारासभाको केवल गवर्नमेन्ट ऑफ इंडिया एक्टकी परिभाषामें ही न देखा जाय बल्कि एक ऐसा साधन समझा जाय, जिसका उपयोग ऐसे प्रश्न हल करनेमें किया जा सकता है, जिन्हें हल करनेकी राष्ट्रके विभिन्न संप्रदायोंके प्रतिनिधियोंसे आशा रखी जा सकती है। यदि उन्हें अमर्यादित अधिकार हों, तो सांप्रदायिक एकता सहित हमारे राष्ट्रकी सारी समस्यायें उसमें हल की जा सकती हैं। और यह तय है कि गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट ऐसी अनेक समस्याओंको हल करनेमें धारासभाओंका प्रयोग करनेकी मनाही नहीं करता, जो उनके कार्यक्षेत्रसे तो बाहर हैं परन्तु राष्ट्रीय प्रगतिके लिए जरूरी हैं।

इस दृष्टिकोणसे देखें तो धारासभाके अध्यक्षकी स्थिति प्रधानमंत्रीसे भी बहुत ज्यादा महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि जब वह अध्यक्षके आसन पर आसीन होता है तब उसे न्यायाधीशका कर्तव्य पालना होता है। उसे निष्पक्ष और न्यायपूर्ण निर्णय देने होते हैं। उसे बवंडरके बीच भी शांत रहकर सदस्योंके बीच शिष्टता और सौजन्य बनाये रखना पड़ता है। इस प्रकार विरोधियोंको जीतनेकी उसे ऐसी सुविधायें प्राप्त हैं जैसी अन्य किसी सदस्यको शायद ही हों।

ऐसी हालतमें सभा-भवनके बाहर यदि कोई अध्यक्ष निष्पक्ष न रहकर दलबंदीके चक्करमें पड़ जाय, तो संभवतः उसका वैसा असर नहीं पड़ सकता जैसा हर जगह उसके निष्पक्ष और शांत बने रहने पर पड़ सकता है। मैं यह दावा करता हूं कि अगर कोई अध्यक्ष अपने अत्यन्त सीमित क्षेत्रके बाहर भी वैसा ही निष्पक्ष रहनेकी आदत डाल ले, तो वह कांग्रेसकी प्रतिष्ठा ही बढ़ायेगा। इस पदके कारण उसे जो अनोखा

अवसर मिला है उसे यदि वह समझ ले, तो वह ऐसा करके हिन्दू-मुस्लिम सनातनी तथा दूसरी भी अनेक समस्याओंके हलका रास्ता तैयार कर सकता है। इस प्रकार मेरी रायमें अध्यक्षको जैसा सभा-भवनमें वैसा ही यदि उसके बाहर भी रहना हो, तो उसे प्रथम श्रेणीका काग्रेसी होना चाहिये। मनुष्यके रूपमें भी उसका चरित्र ऐसा होना चाहिये कि कोई उस पर अंगुली न उठा सके। यह जरूरी है कि वह योग्य, निर्भय, स्वभावतः न्यायी और इन सबसे अधिक मन-वचन-कर्मसे सच्चा और अहिंसक हो। तब वह जिस प्लेटफॉर्म पर खड़ा रहना चाहेगा उस पर खड़ा रह सकेगा। १

९
धारासभाकी सावधानी

श्री पीतत्रासबाबूकी नजरबन्दीके लिए दरअसल कोई कारण समझमें नहीं आता। बगाल सरकार लोकमतके प्रति जिम्मेदार है। यह हो ही नहीं सकता कि उसके बिना जाने ही गवर्नरने हुक्म जारी कर दिया हो। वह भारत-रक्षा कानूनका अमल मनमाने ढंगसे नहीं कर सकती। उसे अपनी हर कार्रवाईको जनताके सामने उचित साबित करना चाहिये। अगर धारासभा अपने अस्तित्वकी योग्यता सिद्ध करना चाहती है, तो उसे उत्तरदायी मन्त्रि-मंडलके कामोंसे और उनके कारणोंसे परिचित रहना चाहिये। १

१०
संविधान-सभा फूलोंकी सेज नहीं

यह समय आराम करनेका या मौज-शौकमें दिन बितानेका नहीं है। मैंने पं० जवाहरलाल नेहरूसे कहा कि वे राष्ट्रके खातिर काटोंका ताज पहनें और उन्होंने मेरी बात स्वीकार की। संविधान बनानेवाली

सभा आप सबके लिए फूलोंकी सेज नहीं, परन्तु निरे कांटोंकी सेज साबित होनेवाली है। लेकिन आप उसकी जिम्मेदारीसे बच नहीं सकते।

परन्तु इसका यह मतलब कभी नहीं कि आपमें से हरएकको वहां जाना ही चाहिये। वहां सिर्फ उन्हीं लोगोंको जाना चाहिये, जो अपनी कानूनी शिक्षाके कारण या दूसरी किसी विशेष योग्यताके कारण वहां जाने और सभाका काम करनेकी क्षमता रखते हैं। अपनी कुरबानियोंके बदलेमें मिलनेवाले इनामके खयालसे किसीको संविधान-सभामें नहीं जाना चाहिये। वहां तो धर्म समझकर इस तैयारीसे जाना चाहिये, मानो फांसी पर लटकना हो या सेवाके यज्ञमें अपना सर्वस्व होम देना हो।

इसके अलावा, आप लोगोंके संविधान-सभामें जानेका एक और भी कारण है। अगर आप मुझसे पूछें कि संविधान-सभामें सम्मिलित होनेके प्रस्तावको आप लोग अस्वीकार कर दें या वह सभा बन ही न पाये, तो क्या उस हालतमें मैं लोगोंको व्यक्तिगत रूपमें अथवा सामूहिक रूपमें सत्याग्रहकी लड़ाई शुरू करनेकी सलाह दूंगा, अथवा क्या मैं स्वयं उपवास शुरू करूंगा, तो मेरे पास आपके इस प्रश्नका एक ही उत्तर है: 'नहीं, मैं ऐसा कुछ नहीं करूंगा।' मैं उन लोगोंमें हूं, जो अकेले चलनेमें विश्वास रखते हैं। इस संसारमें मैं अकेला आया हूं, दुःखके समुद्र जैसे इस संसारमें मैं अकेला तैरा हूं, और समय आने पर मैं अकेला ही यहांसे चल दूंगा। मैं यह भी जानता हूं कि बिलकुल अकेला होने पर भी मैं सत्याग्रहकी लड़ाई शुरू करनेमें पीछे नहीं हटूंगा। पहले मैं ऐसा कर चुका हूं। परन्तु यह समय न तो सत्याग्रहकी लड़ाई छेड़नेका है और न उपवास आरंभ करनेका है। संविधान बनानेवाली सभाके कार्यको मैं सत्याग्रहका स्थान लेनेवाला कार्य मानता हूं। वह रचनात्मक सत्याग्रह है। १

११

धारासभाके कांग्रेसी सदस्य और भत्ता

संयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश) की धारासभाके एक सदस्यने मुझे एक पत्र भेजा है। वह इस प्रकार है :

"संयुक्त प्रान्तमें हमें ७५ रुपये महीने भत्ता मिलता है। कांग्रेसकी सत्ता ढाई साल रही। इस अरसेमें धारासभाकी बैठकें कभी तो छह छह दिनमें खतम हो गई और कभी कभी महीनों चलती रहीं। इनके सिवा, निर्वाचित, विशिष्ट और नियमित कमेटियोंकी भी बैठकें हुईं। इनमें से कुछ कमेटियां अभी भी काम कर रही हैं और हमारा बहुत समय ले लेती हैं। साथ ही, यह भी पता नहीं कि धारासभा फिर कब बुला ली जाये। अपने अपने चुनावके क्षेत्रोंमें दौरा करनेमें भी हमारा दो दो सौ रुपया साल खर्च हो जाता है। ऐसे भी निर्वाचन-क्षेत्र हैं, जो लखनऊसे दो सौ मीलसे भी ज्यादा दूर हैं। सालमें तीन दौरोंका औसत मान लें, तो हर सदस्यको इस काममें ६ सप्ताह लगाने पड़ते हैं। सदस्य लोग जब लखनऊमें रहते हैं तब उन्हें अपने अपने चुनावके क्षेत्रोंसे आनेवालोंकी आवभगत भी करनी पड़ती है। हर सदस्य-को अपने दल और प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीको ४ रुपये माहवार देना पड़ता है। ऐसी दशामें व्यापार-धंधा तो छूट ही जाता है, और यह जाहिर है कि किसी सदस्यकी आमदनीका अगर खानगी जरिया न हो तो बिना कुछ भत्ता लिये अपना सारा समय देना उसके लिए बिलकुल असंभव है। संयुक्त प्रान्तकी धारासभाके

सदस्योंके सामने यह प्रश्न कई बार आ चुका है। हममें से बहुतों-को ऐसा लगता है कि या तो भत्ता बढ़ाया जाना चाहिये या हममें जो गरीब लोग हैं उन्हें धनवानोंके लिए मैदान छोड़कर निकल जाना पड़ेगा। आपको तो यह जानकर दुःख हुआ कि धारासभाके कुछ सदस्य भत्ता अपने ही काममें ले रहे हैं। परन्तु मैंने आपके सामने तसवीरका दूसरा पहलू पेश किया, जिससे आप हमें रास्ता दिखा सकें। यह भी याद रखनेकी बात है कि कांग्रेसकी आज्ञा मानकर हमने जो चुनाव लड़े, उनमें हममें से बहुतोंको कर्ज लेना पड़ा था।

"दूसरी जिस बातकी ओर मैं आपका ध्यान दिलाना चाहता हूं, वह है कांग्रेसमें फैली हुई गंदगीका सवाल। इसके अन्य दो कारण तो हैं ही, साथ ही धारासभाकी सदस्यताका लालच भी कांग्रेसके साधारण कार्यकर्ताओंको बहुत बड़ा है। इससे लोग वर्तमान सदस्यको हटा कर उसकी जगह खुद आनेकी कोशिश करते हैं और इसके लिए अकसर बुरे उपाय काममें लाते हैं। अगर यह समझ लिया जाय कि जिन सदस्योंने अच्छा काम किया है उन्हींको फिरसे खड़ा किया जायगा, तो वह अच्छी बात होगी। ऐसी नीतिसे धारासभाओंके कामके लिए कार्यकर्ताओंका एक तालीम पाया हुआ समूह जरूर बना रहेगा। सदस्योंको यह अनुभव भी अच्छी तरह हो जायगा कि धारा-सभाओंके बाहर उन्हें रचनात्मक कार्य भी करना है।

"तीसरी बात, जिस पर प्रकाश डालनेकी आपसे नम्र प्रार्थना है, यह है कि बड़े बड़े कांग्रेसियोंका भी पश्चिमी ढंगके रहन-सहन, विचार और संस्कृतिकी ओर जबरदस्त झुकाव हो रहा है। खद्दर पहनते हुए भी उनमें से बहुतेरे अपनी देशी संस्कृतिसे बिलकुल दूर रहते हैं और उन्हें जो भी प्रकाश मिलता है वह पश्चिमसे ही मिलता है।"

जहा तक सदस्योंके भत्तेसे सम्बन्ध है, उसके पक्षमें दी गई दलीलोंसे मैं कायल नही हुआ हूं। अलबत्ता, सभी मामलोंमें कुछ लोगोंको तो कष्ट होता ही है। परन्तु ऐसे उदाहरणोंसे नियम बनाना अच्छी बात नहीं है। याद रहे कि धारासभाओं पर कांग्रेसका ठेका नहीं है। वहा कई दलोंके प्रतिनिधि होते है। इसलिए सिर्फ कांग्रेस-की सुविधाका ही खयाल नही रखा जा सकता। पत्रलेखक यह मान बैठे है कि प्रत्येक सदस्य धारासभाके कामको विशेष रूपसे ध्यानमें रखकर अपना सारा समय राष्ट्रीय सेवामें लगाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि धारासभाओंके सदस्योंका राजनीति ही एक धन्धा हो गया है और धारासभायें खास तौर पर उनके लिए सुरक्षित स्थान बन गई हैं। मेरा बस चले तो मैं ये बातें राजनीतिक दलोंसे ही करा लू। मैं जानता हू कि इस प्रश्नमें कठिनाइया भरी पडी हैं और इस पर पूरी तरह तथा शांतिसे चर्चा होनी चाहिये। पर मैंने जो बात उठाई है वह बिलकुल छोटी है। जब धारासभाओंका काम एक तरहसे बन्द हो तब सदस्य लोग कुछ भी भत्ता क्यों लें? जाच की जाय तो पता चलेगा कि बहुतसे सदस्य धारासभामें चुने जानेसे पहले इतना नही कमा रहे थे जितना कि वे अब कमा रहे है। धारासभाओं-को अपनी मामूली कीमतसे अधिक कमाईका साधन बना लेना खतर-नाक बात है। प्रान्तोंके जिम्मेदार लोगोंको मिलकर सोचना चाहिये और कोई ऐसा निर्णय करना चाहिये, जिससे कांग्रेसकी भी शोभा बढ़े और जिस कामके लिए वे खप रहे हैं उसकी भी शोभा बढे।

पत्रलेखकने वर्तमान सदस्योंको स्थायी उम्मीदवार बना देनेका जो प्रश्न उठाया है, वह मेरे हाथकी बात नही है। इस मामलेमें मुझे कोई अनुभव नहीं है। इसकी गहराईमें जाना कांग्रेस कार्यसमितिका काम है। रही बात पश्चिमसे प्रकाश लेनेकी आदतकी। तो अगर मेरे सारे जीवनसे किसीको कोई रास्ता न मिला हो, तो अब और मैं क्या रास्ता बता सकता हू? प्रकाश तो पूर्वसे निकल कर सर्वत्र फैला

करता था। अगर पूर्वका बाजार मारा गया है, तो यह स्वाभावि[illegible] है कि पूर्वको पश्चिमसे प्रकाश उधार लेना पड़ेगा। मुझे तो आश्चर्य [illegible] कि प्रकाश यदि प्रकाश ही हो और कोई भ्रम न हो, तो क्या वह [illegible] भी पैदा हो सकता है! बचपनमें मैंने पढ़ा था कि प्रकाश [illegible] ज्ञान देता? सकता है, पश्चिम नहीं। कुछ भी हो, मैंने तो इसी विश्वा[illegible] पर अमल किया है और इसीलिए [illegible]ओंकी पूंजी पर ही अपना व्यापार चलाया है। मैं कभी घाटेमें नहीं रहा। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि मैं कुएंका मेंढक बन जाऊं। अगर प्रकाश पश्चिमसे आये, तो मुझे उससे लाभ उठानेमें कोई आपत्ति नहीं है। मैं इतना ध्यान जरूर रखूंगा कि पश्चिमकी तड़क-भड़कके वशीभूत मैं न हो जाऊं। मुझे भूलसे इस तड़क-भड़कको ही सच्चा प्रकाश नहीं समझ लेना होगा। प्रकाश हमें जीवन प्रदान करता है और तड़क-भड़क मौतके मुंहमें ले जाती है। १

१२
धारासभाके सदस्योंकी तनखाह

प्रश्न — धारासभाके एक सदस्यकी माहवार तनखाह २०० रुपये है। चूंकि वह कस्बेमें रहता है, इसलिए धारासभाकी बैठकोंके दिनोंमें वह १५ रुपये रोजका भत्ता पानेका अधिकारी है। इसके अलावा, जिस दिन वह धारासभाकी बैठकमें हाजिर रहे, उस दिनके लिए वह सवारी-भत्तेके ढाई रुपये ले सकता है। साथ ही, अपने रहनेके स्थानसे शहरमें आने पर उसे प्रथम वर्गके डचौढ़े कियायेके हिसाबसे सफर-खर्चका भत्ता भी मिल सकता है। लेकिन एक ही दिनके लिए वह सफर-खर्चका भत्ता और दैनिक भत्ता दोनों नहीं ले सकता।

१. (अ) क्या गरीबोंके प्रतिनिधि और सेवकके नाते ऐसे आदमीको यह तनखाह लेनी चाहिये?

(आ) अगर वह अपनी पूरी तनखाह स्थानीय कांग्रेस कमेटीको या जिस संस्थामें वह काम करता हो उसे रचनात्मक कार्यके लिए दे दे, तो क्या वह इस दोषसे मुक्त हो सकेगा?

(इ) अगर ऐसा हो तो क्या इसका यह मतलब न होगा कि ध्येयके शुद्ध होनेसे उसे प्राप्त करनेका साधन भी शुद्ध ठहरता है?

२. धारासभाके अधिवेशनके दिनोंमें सदस्यको शहरमें रहना होगा और धारासभाके सदस्यके नाते अपने फर्जों और जिम्मेदारियोंको अदा करनेके लिए उसे कुछ खर्च भी करना पड़ेगा।

(अ) ऐसी हालतमें क्या वह अपने आदर्शके साथ मेल बैठाते हुए इन खर्चोंको पूरा करनेके लिए दैनिक भत्ता ले सकता है?

(आ) अगर ऐसा हो सकता हो और भत्तेका कुछ ही हिस्सा लिया न जा सकता हो, तो क्या उसे पूरा भत्ता लेना चाहिये? और बची हुई रकम अपनी संस्थाको, जिसके मातहत वह काम करता हो, दे देनी चाहिये?

(इ) अगर ऐसा किया जा सके, तो क्या अपने आदर्शके साथ मेल बैठाते हुए वह इस तरह बची हुई रकमको या उसके कुछ भागको अपने परिवारके लिए खर्च कर सकता है? क्योंकि ऐसा न करने पर उसे अपने घरका खर्च चलानेके लिए मित्रोंके दानका सहारा लेना पड़ेगा।

३. (अ) क्या ऐसी स्थितिमें भी उसे सवारी-भत्ता लेना चाहिये, जब कि दैनिक भत्तेकी रकम उसके सवारी वगैराके सब खर्चोंको पूरा करनेके लिए काफीसे ज्यादा हो? (सवारीका भत्ता तो शहरमें रहते हुए उसके धारासभाकी बैठकोंमें शामिल होनेके लिए ही रखा गया है।)

(आ) अगर वह सामान्यतः ट्राममें या मोटरबसों
सफर करता हो, तो क्या धारासभाकी बैठकोंमें शरीक होने
लिए उसे कीमती या खर्चीली सवारीका उपयोग करना चाहिये

४. अगर कोई सदस्य सिद्धान्तके खातिर तीसरे दर्जे
सफर करता हो, तो मीलके हिसाबसे सफर-भत्ता लेनेके मामले
उसे उस स्थितिमें क्या करना चाहिये जब कि उसके लिए पहले
दरजेके ड्योढ़े किरायेके हिसाबसे भत्ता लेना कानूनी तौर प
संभव हो?

उत्तर —— मेरी रायमें विभिन्न धारासभाओंके सदस्योंको जो
तनखाहें और भत्ते दिये जाते हैं, वे उनकी देशसेवाके लिहाजसे ह
तरह ज्यादा हैं। तनखाहों या भत्तोंके जो स्तर निश्चित किये गये
हैं, वे ब्रिटिश नमूनेके हैं। दुनियाके इस गरीबसे गरीब देशकी आयके
साथ उनका कोई मेल नहीं बैठता। इसलिए इन प्रश्नोंका मेरा उत्तर
यही है कि जब तक मंत्रि-मंडल सारा खर्च कम न करे तब तक
या तो ली जानेवाली तनखाह या भत्ता उस पार्टीको दे दिया जाय,
जिसके अधीन वह सदस्य काम करता है; और वह उतनी ही रकम
ले जितनी पार्टीने उसके लिए निश्चित कर दी हो। और अगर यह
संभव न हो तो वह उतनी रकम ले जितनी उसे अपने लिए और
अपने परिवारके लिए सचमुच जरूरी मालूम हो। और बची हुई
रकमको वह रचनात्मक कार्यके किसी अंगमें या इस तरहके अन्य किसी
सार्वजनिक कार्यमें लगा दे। तनखाह या भत्तेके रूपमें निश्चित की
गई रकम लेना जरूरी है, लेकिन यह किसी सदस्यके लिए अनिवार्य
नहीं है कि वह उस रकमको अपने लिए खर्च भी करे। हां, अपनी
जरूरतके मुताबिक खर्च किया जा सकता है। ध्येयके शुद्ध होनेसे
साधनके शुद्ध होनेका प्रश्न यहां उठता ही नहीं। १

विभाग — ५ : विधानसभाके सदस्योंको चेतावनी

१३

बड़े दुःखकी बात

बहुतसे लोग संविधान-सभामें जानेके लिए इच्छुक हैं और मुझे इस बारेमें पत्र लिख रहे हैं। मुझे डर लगने लगा है कि अगर यह आम लोगोंकी दिमागी हालतकी निशानी हो, तो कहना होगा कि उन्हें हिन्दुस्तानकी आजादीके बनिस्बत अपनेको आगे लानेकी ही ज्यादा चिन्ता है। इन चुनावोंके साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है, फिर भी जब मेरे पास इतने पत्र आ रहे हैं, तो कांग्रेस कार्यसमितिके सदस्योंके पास कितने पत्र आते होंगे? पत्र लिखनेवालोंको समझना चाहिये कि मैं चुनावोंमें कोई दिलचस्पी नहीं लेता। कार्यसमितिकी जिन बैठकोंमें इन अर्जियों पर विचार किया जाता है, उनमें मैं उपस्थित नहीं रहता। और अकसर मुझे अखबारोंसे ही पता चलता है कि कौन कौन चुने गये हैं। शायद ही कभी किसी चुनावके बारेमें मेरी सलाह पूछी जाती है। लेकिन आज तो मैं उस बीमारीकी ओर आम लोगोंका ध्यान खींचनेके लिए लिख रहा हूं, जिसकी निशानी इतने पत्र या अर्जियां हैं। इसे लिखनेमें मेरा आशय यह बतानेका नहीं है कि मुझसे इस बारेमें मददकी कोई आशा न रखी जाय। इन चुनावोंके बारेमें साम्प्रदायिक दृष्टिसे सोचना गलत है और साथ ही यह सोचना भी गलत है कि संविधान-सभामें हर कोई जा सकता है। और यह खयाल करना तो सरासर गलत है कि ये चुनाव प्रतिष्ठाकी निशानी हैं। जो लोग इस तरहकी सेवाके योग्य हैं, उनके लिए यह सेवाका एक साधन है। और आखिरी बात मैं यह भी कह दूं कि जितने दिन तक संविधान-सभा अपना काम

करेगी, उतने दिन तक उसकी बैठकोंमें शामिल होकर थोड़ा रुपया जमा कर लेनेका खयाल तो बहुत ही बुरी चीज है।

संविधान-सभामें उन्हीं लोगोंको जाना चाहिये, जो दुनियाके सब देशोंके संविधानोंकी जानकारी रखते हों और इससे भी ज्यादा जरूरी यह है कि वे हिन्दुस्तानको जिस तरहके संविधानकी जरूरत है वैसे संविधानके बारेमें कुछ जानते-समझते हों। यह सोचना या समझना कि सच्ची सेवा तो संविधान-सभामें जाकर ही हो सकती है, एक नीचे गिरानेवाली बात है। सच्ची सेवा तो संविधान-सभाके बाहर पड़ी है। इसके बाहर सेवाका जो क्षेत्र पड़ा है, उसकी तो कोई सीमा ही नहीं है। जिस तरहकी संविधान-सभा आज बन रही है, आजादीकी लड़ाईमें उसकी भी अपनी एक जगह है। लेकिन उस जगहकी कीमत बहुत कम है; और वह भी तभी कि जब हम बुद्धिमानीसे उसका अच्छी तरह उपयोग करें। संविधान-सभामें बैठक पानेके लिए ही सब भाग-दौड़ करने लगें, तो विश्वास रखिये कि ऐसी सभासे कोई सार नहीं निकलेगा। इस भाग-दौड़को देखकर तो डर लगता है कि कहीं वह सभा स्वार्थी लोगोंकी शिकारगाह न बन जाय। यह तो मानना ही होगा कि संसदीय प्रवृत्तिका ही सीधा नतीजा आजकी यह संविधान-सभा है। स्व० देशबन्धु चित्तरंजन दास और स्व० पंडित मोतीलाल नेहरूने धारासभामें जाकर जो मेहनत की, उसने मेरी आंखें खोल दीं और मैं यह देख सका कि देशकी आजादीकी लड़ाईमें पार्लियामेन्टरी प्रोग्रामकी भी अपनी जगह है। पहले मैंने इसका कड़ा विरोध किया था; क्योंकि शुद्ध असहयोगके साथ इस प्रोग्रामका कोई मेल नहीं बैठना। लेकिन शुद्ध असहयोग कभी चला ही नहीं। जो चला वह भी आगे चल कर धीमा पड़ गया। अगर कांग्रेसवाले शुद्ध अहिंसक असहयोगको अपनाते, तो पार्लियामेन्टरी प्रोग्राम देशके सामने आता ही नहीं। बुराईके साथ अहिंसक असहयोग करनेका मतलब है अच्छाईके साथ —जो भी कुछ अच्छा है उस सबके साथ—सहयोग करना। इसलिए

परदेशी सरकारके साथ अहिंसक असहयोग करनेका एक ही अर्थ हो सकता है और वह यह कि अपनी देशी अहिंसक सरकार बनाई जाय। यदि हम पूरा पूरा असहयोग कर पाते, तो आज हिन्दुस्तानमें अहिंसक स्वराज्य आ चुका होता। लेकिन वैसा तो हम कुछ कर नहीं पाये। ऐसी स्थितिमें जिस तरीकेको देश जानता है और जिसे हम छुड़वा नहीं पाये, उसका विरोध करना व्यर्थ होता। धारासभामें जाना मंजूर करनेके बाद इस नये कदमका बहिष्कार करना अनुचित होता। परन्तु इसका यह मतलब हरगिज नहीं, न हो सकता है, कि संविधान-सभामें घुसनेके लिए वेगरसीके साथ होड़ की जाय या भाग-दौड़ मचाई जाय। हरएकको अपनी मर्यादा समझ लेनी चाहिये। १

१४
एक एक पाई बचाइये

मैंने देखा है कि धारासभाओंके सदस्य अपने निजी कामोंके लिए भी निहायत कीमती गुलकारी किये हुए कागजका उपयोग करते हैं। जहां तक मैं जानता हूं, दफ्तरोंका लिखनेका सामान (स्टेशनरी) वहांसे बाहर नहीं ले जाया जा सकता। दफ्तरोंमें भी व्यक्तिगत कामोंके लिए — जैसे मित्रों या रिश्तेदारोंको पत्र लिखना या धारा-सभाके सदस्योंका सार्वजनिक कार्य करनेवाले किसी व्यक्तिको सार्व-जनिक सेवासे भिन्न किसी दूसरे कामके लिए पत्र लिखना — इसके उपयोगकी इजाजत नहीं है। जहां तक मैं जानता हूं, दुनियाके हर भागमें इस बातकी मनाही है।

लेकिन इस गरीब देशके लिए तो मैं और भी आगे जाऊंगा। लिखनेके जिस सामानका मैंने जिक्र किया है, वह हमारे देशके लिए बहुत महंगा है। अंग्रेज दुनियाके सबसे खर्चीले देशके लोग हैं। वे यह भी जानते हैं कि हम पर वे अपनी जितनी धाक बैठा सकें उतना ही उन्हें लाभ है। इसलिए उन्होंने दफ्तरोंके लिए बहुत कीमती और

बड़े बड़े मकान बनवाये हैं, जिनकी देखभालके लिए नौकरों और उनके सहारे जीनेवाले चापलूसोंकी एक फौजकी जरूरत होती है। अगर हमने उनके तरीकों और आदतोंकी नकल की, तो हम-आप तबाह हो जायंगे और देशको भी अपने साथ ले डूबेंगे। अंग्रेजोंने हमें जीता था, इसलिए उनकी बुराइयां बरदाश्त कर ली गईं। लेकिन अगर वे ही बुराइयां हममें हुईं, तो वे बरदाश्त नहीं की जायंगी। देशमें आज कागजकी कमी है। इसलिए मेरी राय है कि ये तमाम खर्चीली आदतें हम छोड़ दें। हमें ग्रामोद्योगके हाथ-कागजका उपयोग करना चाहिये, जिस पर उर्दू और नागरीमें नाम, ठिकाना वगैरा सादे ढंगसे छपा हो। गुलकारी किये हुए कागजको, जो पहलेका छपा हुआ है, काटकर आसानीसे ज्यादा अच्छे काममें लाया जा सकता है। हम किफायत करनेके बहाने उसका उपयोग न करें। बेशक, ग्रामोद्योगके मालसे तब तक इन्तजार नहीं कराया जा सकता जब तक कि कीमती और बहुत सम्भव है विदेशी माल खतम न हो जाये। जनताकी सरकारोंको चाहिये कि वे आते ही लोकप्रिय कार्य करें और सस्ती आदतें अपनायें। १

१५

हम सावधान रहें

आंध्रका एक पत्र

मेरे पास आन्ध्र देशसे एक करुण पत्र आया है। एक नौजवानका और एक बूढ़ेका खत है। बूढ़ेको मैं जानता हूं, पर नौजवानको नहीं जानता। वे नौजवान भाई लिखते हैं कि जबसे १५ अगस्त आ गई है, तबसे लोगोंको ऐसा लगने लगा है कि वे मनमानी कर सकते हैं। पहले तो अंग्रेजोंका डर था। अब किसका डर है? आन्ध्रके लोग तगड़े हैं। अब आजाद हो गये हैं, तो काबूके बाहर हो गये हैं। आजादी पानेको उन्होंने भी काफी बलिदान तो दिया है, लेकिन कांग्रेस आज गिरती जाती है। आज सबको नेता बनना है, पैसा पैदा करनेके प्रयत्न करने हैं। वे

लिखते हैं कि तुम यहां आकर रहो। मुझे यह अच्छा लगता है। पर कैसे जाऊं? आन्ध्रके लोगोंको मैं जानता हू। मेरे लिए सब जगहें एकसी हैं। सारा हिन्दुस्तान मेरा है। मैं हिन्दुस्तानका हू। लेकिन आज मैं दूसरे काममें पड़ा हू। मेरी आवाज जल्दीसे जल्दी वहा पहुच जाय, इसलिए यहा यह सब कह रहा हूं। वे लिखते हैं, एम एल. ए. और एम. एल. सी. लोग गन्दगी फैला रहे हैं। उस गन्दगीको कम करनेके लिए सदस्योंकी संख्या कम करनी चाहिये। गन्दगी कम होगी तो उसे हटाना आसान होगा।

कम्युनिस्ट और सोशलिस्ट भाई भी वहा पड़े हैं। वे लोग काग्रेस पर हमला करके हिन्दुस्तानकी सत्ता हाथमें लेना चाहते हैं। अगर सब हिन्दुस्तानकी सत्ता अपने हाथमें लेनेकी कोशिश करे, तो हिन्दुस्तानका क्या हाल होगा? हिन्दुस्तान सबका है। हिन्द हमारा न बने, हम हिन्दके बनें। हम सब हिन्दकी सेवा करें और वह भी निःस्वार्थ भावसे। यह हमारा पहले नम्बरका काम है। हम अपना पेट भरनेका न सोचें। अगर हम अपने रिश्तेदारोंको नौकरी दिलानेकी कोशिश करेंगे, तो काम बिगड़ जायगा। १

आत्मशुद्धिकी आवश्यकता

मैंने कल आध्रसे आये हुए दो पत्रोंका उल्लेख किया था। पत्र लिखनेवाले वृद्ध मित्र देशभक्त कोंडा वेंकटप्पैया गारू हैं। मैं उनके पत्रमें कुछ भाग यहा देता हू:

"राजनीतिक और आर्थिक प्रश्नोंके सिवा, एक बडा पेचीदा सवाल यह है कि काग्रेसके लोगोंका नैतिक पतन हो गया है। दूसरे प्रान्तोंके बारेमें तो मैं अधिक नहीं कह सकता, पर मेरे प्रान्तमें हालत बहुत खराब है। राजनीतिक सत्ता पाकर लोगोंके दिमाग ठिकाने नहीं रहे। लेजिस्लेटिव असेम्बली और लेजिस्लेटिव कौंसिलके कई सदस्य इस मौकेका अपने लिए पूरा पूरा लाभ उठानेकी कोशिश कर रहे हैं।

"वे अपनी जान-पहचानका फायदा उठाकर पैसा बना रहे हैं और मजिस्ट्रेटोंकी कचहरियोंमें पहुंचकर न्यायके मार्गमें भी रुकावट डालते हैं। जिला कलेक्टर और दूसरे माल-अधिकारी भी आजादीसे अपना फर्ज अदा नहीं कर सकते। कौंसिलके मेम्बर उसमें हस्तक्षेप करते हैं। कोई ईमानदार अधिकारी लम्बे समय तक अपनी जगह पर नहीं रह सकता। उसके खिलाफ मंत्रियोंके पास रिपोर्ट पहुंचाई जाती है और मंत्री किसी सिद्धान्त-को न माननेवाले ऐसे स्वार्थी लोगोंकी बातें सुनते हैं। स्वराज्य-की लगन एक ऐसी चीज थी, जिसके कारण सभी स्त्री-पुरुष आपके नेतृत्वको मानने लगे थे। परन्तु ध्येय पूरा हो जाने पर अधिकतर कांग्रेसी लड़वैयोंके नैतिक बन्धन टूट गये हैं। बहुतसे पुराने योद्धा आज उनका साथ दे रहे हैं, जो हमारे स्वातंत्र्य-आन्दोलनके कट्टर विरोधी थे। अपना मतलब निकालनेके लिए वे लोग आज कांग्रेसमें अपना नाम लिखवा रहे हैं। समस्या दिन-ब-दिन ज्यादा पेचीदा बनती जा रही है। नतीजा यह है कि कांग्रेसकी और कांग्रेस सरकारकी बदनामी हो रही है। लोगोंका कांग्रेस परसे विश्वास हट रहा है। अभी अभी यहां म्युनिसिपैलिटीके चुनाव हुए थे। ये चुनाव बताते हैं कि कितनी तेजीसे जनता कांग्रेसके काबूसे बाहर जा रही है। चुनावकी पूरी तैयारी करनेके बाद गंतूरमें लोकल बोर्ड्स (स्थानीय संस्थाओं) के मंत्रीका जरूरी संदेशा आनेसे चुनाव एकाएक रोक दिये गये।

"मैं समझता हूं कि करीब दस सालसे यहां सब सत्ता एक नियुक्त की हुई कौंसिलके हाथोंमें रही है और अब करीब एक सालसे म्युनिसिपैलिटीका कामकाज एक कमिश्नरके हाथोंमें है। अब ऐसी बात चल रही है कि सरकार शहरकी म्युनिसिपैलिटीका कारोबार संभालनेके लिए एक कौंसिल नियुक्त करेगी।

"मैं बूढा हूं। मेरी टांग टूट गई है। लकड़ीके सहारे लंगड़ाते लंगड़ाते थोड़ा-बहुत चलता फिरता हूं। मुझे अपना कोई स्वार्थ नहीं साधना है। इसमें शंका नहीं कि जिले और प्रान्तकी कांग्रेस कमेटियां जिन दो गुटबंदियोंमें बंटी हुई हैं, उनके मुख्य मुख्य कांग्रेसवालोंके खिलाफ मैं कड़े विचार रखता हूं। और मेरे विचार सब लोग जानते हैं।

"कांग्रेसमें फिरकेबाजी, लेजिस्लेटिव कौंसिलके सदस्योंकी पैसे बनानेकी प्रवृत्ति और मंत्रियोंकी कमजोरीके कारण जनतामें विद्रोहकी वृत्ति पैदा हो रही है। लोग कहते हैं कि इससे तो अंग्रेजी हुकूमत बहुत अच्छी थी, और वे कांग्रेसको गालियां भी देते हैं।"

आन्ध्रके और दूसरे प्रान्तोंके लोग इस त्यागी सेवकके कहनेकी कीमत करें। वे ठीक कहते हैं कि जिस बेईमानीका उल्लेख उन्होंने किया है, वह सिर्फ आंध्रमें ही नहीं पाई जाती। परन्तु वे आंध्रके बारेमें ही अपना निजी अभिप्राय दे सकते हैं। हम सब सावधान बनें। २

१६
कांग्रेसजनोंमें भ्रष्टाचार

इस पद-ग्रहणका अर्थ या तो अधिक महान प्रतिष्ठाकी ओर कदम बढ़ाना है या फिर प्रतिष्ठासे बिलकुल हाथ धो बैठना है। अपनी प्रतिष्ठाको यदि हमें बिलकुल नहीं गंवा बैठना है, तो मंत्रियों और धारासभाओंके सदस्योंको अपने व्यक्तिगत और सार्वजनिक आचरणके प्रति जागरूक रहना ही होगा। उनकी हर बात सन्देहसे परे होनी चाहिये। वे कोई ऐसा काम न करें, जिससे खुद उन्हें या उनके सम्बन्धियों या मित्रोंको व्यक्तिगत रूपमें कोई फायदा पहुंचता हो। अगर वे अपने सम्बन्धियों या मित्रोंकी किसी सरकारी पद पर नियुक्ति करें,

तो उसकी वजह यही होनी चाहिये कि उस पदके उम्मीदवारोंमें वे सबसे अधिक योग्य हैं और सरकार उन्हें जो वेतन देती है उससे कहीं ज्यादा पानेकी उनमें योग्यता है। कांग्रेसी मंत्रियों और धारासभाके सदस्योंको बिना किसी डर या दबावके अपना फर्ज अदा करना चाहिये। उन्हें अपनी सीटों या पदोंको खोनेका खतरा उठानेके लिए हमेशा तैयार रहना चाहिये। अगर इन पदों और धारासभाओंकी सदस्यतामें कांग्रेसकी प्रतिष्ठा और शक्ति बढ़ानेकी ताकत नहीं है, तो उनका कुछ भी मूल्य नहीं। और चूंकि ये दोनों चीजें सार्वजनिक और व्यक्तिगत आचरण पर पूरी तरहसे निर्भर करती हैं, इसलिए किसी भी प्रकारके नैतिक पतनके मानी हैं कांग्रेसको धक्का पहुंचाना। अहिंसाका यह आवश्यक फलितार्थ है। १

धारासभामें अनुशासन-भंग

दैनिक अखबारोंमें आया है कि मध्यप्रान्तीय धारासभाका अधिवेशन जब शुरू हुआ, तो दर्शकोंने — जो गैलरीमें ठसाठस भरे हुए थे — श्री राघवेन्द्र रावके विरुद्ध अनुचित प्रदर्शन किया। गैलरी जिन लोगोंसे भरी हुई थी, वे संभवतः कांग्रेसवादी थे या ऐसे लोग थे जिनकी कि कांग्रेसके साथ सहानुभूति थी। मेरा खयाल है कि हमें अपने ढंगकी पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त हो जायेगी, उसके बाद भी विभिन्न राजनीतिक दल तो रहेंगे ही। यदि उन दलोंने एक-दूसरेके साथ सहिष्णुता नहीं दिखाई या एक-दूसरेके प्रति साधारण शिष्टता और सौजन्य जाहिर न किया, तो वह हमारे लिए तकलीफका कारण हो जायेगा। और फिर कांग्रेसको तो, जो सारे राष्ट्रके प्रतिनिधित्वका दावा करती है, अपने विरोधियों या दूसरोंके प्रति असहिष्णु होना पुसा ही नहीं सकता। यदि कांग्रेस एकमात्र अखिल भारतीय संस्था है, और वह है भी, तब तो वह सभी प्रकारके हितोंका प्रतिनिधित्व करती है। वह तो श्री राघवेन्द्र राव तकका प्रतिनिधित्व करती है, जो कि किसी समय कांग्रेसके एक प्रतिष्ठित सदस्य थे। हो सकता

है कि जिस निर्वाचन-क्षेत्रसे वे खड़े हुए थे, उसमें वोटोंके सम्बन्धमें अनुचित तरीका काममें लाया गया हो। अगर ऐसा हुआ है, तो यह कानूनके देखनेकी बात है। लेकिन जब तक श्री राव अपराधी साबित नहीं होते, तब तक उनको ईमानदार समझना ही चाहिये। और अगर वे दोषी साबित भी हो जायें, तो उनके विरुद्ध जो अनुचित प्रदर्शन किया गया उसके बचावमें उनका वह अपराध कोई प्रमाण थोड़े ही हो जायेगा।

असहिष्णुता, अविनय और कटुता न केवल कांग्रेसके अनुशासन और प्रतिष्ठाके विपरीत है, बल्कि ये दुर्गुण तो किसी भी भद्र या सभ्य समाजके लिए अवाछनीय हैं और प्रजातंत्रकी भावनाके तो निश्चय ही विरुद्ध है। २

१७

धारासभाके सदस्य और मतदाता

धारासभाके सदस्य सेवक हैं

धारासभाके सदस्य देशके शासक नहीं, परन्तु देशके प्रतिनिधि हैं और इसलिए देशके सेवक हैं। १

केवल सीमित संख्यामें ही पुरुष और स्त्रियां धारासभाओंके सदस्य वन सकते हैं — कहिये कि १५००। इस सभामें वैठे हुए लोगोंमें से कितने धारासभाके सदस्य वन सकते हैं? और इस समय ३॥ करोड़से ज्यादा लोग इन १५०० सदस्योंके लिए मत नहीं दे सकते। तव वाकीके ३१॥ करोड़ लोगोंका क्या? स्वराज्यकी हमारी कल्पनामें तो ३१॥ करोड़ ही सच्चे स्वामी हैं और ३॥ करोड़ मतदाता इन लोगोंके सेवक हैं, जो स्वयं धारासभाओंके १५०० सदस्योंके स्वामी हैं। इस प्रकार १५०० सदस्य देशके प्रति वफादार रहकर अपने कर्तव्यका पालन करें, तो वे दोहरे सेवक हैं — सेवकोंके भी सेवक हैं।

परन्तु ३१॥ करोड़ लोगोंको भी अपने प्रति और अपने राष्ट्रके प्रति, जिसके व्यक्तियोंके नाते वे केवल छोटे अंश हैं, वफादार रहकर अपना कर्तव्य पालन करना है। और अगर वे आलसी और निष्क्रिय वने रहें, स्वराज्यके वारेमें कुछ न जानें और उसे जीतनेके उपाय भी न जानें, तो वे धारासभाके इन १५०० सदस्योंके गुलाम वन जायंगे। मेरी दलीलके लिए देशके ३॥ करोड़ मतदाता उसी श्रेणीके हैं, जिस श्रेणीके ३१॥ करोड़ लोग हैं। क्योंकि यदि वे उद्यमी और वुद्धिमान न वनें, तो वे १५०० खिलाड़ियोंके हाथके प्यादे वन जायंगे — भले ही वे कांग्रेसजन हों या और कोई हों। अगर मतदाता केवल

हर तीसरे या पाचवें साल अपने मत दर्ज करानेके लिए ही नीदसे जागें और मत देकर फिर गहरी नीदमें सो जायं, तो उनके सेवक जरूर उनके स्वामी बन जायंगे। २

सत्ता कहां रहती है ?

हम एक अरसेसे इस बातको माननेके आदी बन गये हैं कि आम जनताको सत्ता सिर्फ धारासभाओंके जरिये मिलती है। इस खयालको मैं अपने लोगोंकी एक गभीर भूल मानता रहा हूं। इस भ्रम या भूलकी वजह या तो हमारी जड़ता है या वह मोहिनी है, जो अंग्रेजोके रीति-रिवाजोने हम पर डाल रखी है। अंग्रेज जातिके इतिहासके छिछले या ऊपर ऊपरके अध्ययनसे हमने यह समझ लिया है कि सत्ता शासन-तत्रकी सबसे बडी सस्था पालियामेण्टसे छनकर जनता तक पहुचती है। सच बात यह है कि सत्ता जनताके बीच रहती है, जनताकी होती है और जनता समय समय पर अपने प्रतिनिधियोंकी हैसियतसे जिनको पसद करती है उनको उतने समयके लिए उसे सौंप देती है। जनतासे भिन्न या स्वतत्र पालियामेण्टोकी सत्ता तो ठीक, हस्ती तक नहीं होती। पिछले इक्कीस बरसोसे भी ज्यादा अरसेसे मैं यह इतनी सीधी-सादी बात लोगोके गले उतारनेकी कोशिश करता रहा हूं। सत्ताका असली भण्डार तो सत्याग्रहकी या सविनय कानून-भंगकी शक्तिमें है। एक समूचा राष्ट्र यदि अपनी धारासभाके कानूनोंके अनुसार चलनेसे इनकार कर दे, और इस सिविल नाफरमानीके नतीजोंको बरदाश्त करनेके लिए तैयार हो जाय, तो सोचिये कि क्या नतीजा होगा! ऐसी जनता सरकारकी धारासभाको और उसके शासन-प्रबन्धको जहाका तहां, पूरी तरह, रोक देगी। सरकारकी, पुलिसकी या फौजकी ताकत, फिर वह कितनी ही जबरदस्त क्यों न हो, थोडे लोगोंको ही दबानेमें कारगर होती है। लेकिन जब कोई समूचा राष्ट्र सब कुछ सहनेको तैयार हो जाता है, तो उसके दृढ संकल्पको डिगानेमें किसी पुलिसकी या फौजकी कोई जबरदस्ती काम नहीं देती।

फिर, पार्लियामेण्टके ढंगकी शासन-व्यवस्था तभी उपयोगी होती है, जब पार्लियामेण्टके सब सदस्य बहुमतके फैसलोंको माननेके लिए तैयार हों। दूसरे शब्दोंमें, इसे यों कहिये कि पार्लियामेण्टरी शासन-पद्धतिका प्रबन्ध परस्पर अनुकूल समूहोंमें ही ठीक-ठीक काम देता है। ३

१८

स्त्रियां और विधानसभायें

कस्तूरबा ट्रस्ट और विधानसभायें

२८, २९ और ३० मार्च (१९४६)को उरुली कांचनमें दो बैठकें हुईं: एक कस्तूरबा स्मारक ट्रस्टके एजेन्टोंकी और दूसरी ट्रस्टकी कार्यकारिणी समितिकी। एजेन्टोंकी बैठक अपने ढंगकी पहली ही थी। बैठकमें एजेन्टोंने बहुतसे दिलचस्प सवाल पूछे। एक बहनने पूछा कि कस्तूरबा ट्रस्टकी एजेन्ट बहनें विधानसभाकी सदस्या क्यों नहीं हो सकतीं? इसका स्पष्ट उत्तर यह है कि यदि उन्हें अपने कार्यके साथ न्याय करना हो, तो विधानसभाके कर्तव्य पूरे करनेके लिए उन्हें समय ही नहीं मिल सकता। निश्चित कारण यह है कि यदि ग्रामवासियोंको विधानसभाके सदस्योंकी ओर मददके लिए ताकना पड़े, तो यह ग्रामवासियोंके लिए एक गलत उदाहरण पेश करना होगा। १

क्यों नहीं?

एक बहनको मेरा यह कहना चुभता है कि यदि धारासभाकी सदस्या बहनें कस्तूरबा-निधि-मंडलकी एजेन्ट बनें, तो वह ग्रामवासियोंके सामने एक गलत उदाहरण होगा। वे कहती हैं कि अगर यह बात मौजूदा धारासभाओंके लिए हो तब तो ठीक हो सकती है, लेकिन जब हमारा शासन होगा तब तो शकल बदल जायगी। धारासभाके सदस्य पथ-प्रदर्शक होंगे। इसलिए वहां जाना लाभदायक ही होगा। जिस

कामको करनेमें यों ही बरसों लग जाते हैं, यह काम धारासभाके मारफत एक ही बैठकमें हो जायगा।

इस दलीलमें तीन गलतियां हैं। पहले तो यह बात ही नहीं है कि मैंने आजकी और अपने शासन-कालमें होनेवाली धारासभाओंमें कोई भेद किया है। ऐसा भेद अनावश्यक है।

दूसरे यह मानना कि ऐसे सदस्य पथ-प्रदर्शक होंगे, भ्रममूलक होगा। मतदाता किसीको धारासभामें इसलिए नहीं भेजते कि उससे मार्गदर्शन प्राप्त करें, बल्कि इसलिए भेजते हैं कि हम उसके लिए जो रास्ता तय कर दें उस पर चलनेकी वफादारी उसमें है। पथ-प्रदर्शक तो हम हैं, धारासभाके सदस्य नहीं। वे हमारे सेवक हैं, स्वामी नहीं। आजका यह भ्रम वर्तमान शासन-पद्धतिका पैदा किया हुआ है। जब यह भ्रम दूर हो जायगा, तो सदस्य बननेवालोंकी भरमार बहुत कम हो जायगी। धर्म समझकर जानेवाले लोग थोड़े ही होंगे। वे हमारी इच्छासे वहां जायेंगे। धारासभामें जानेकी अगर कोई जरूरत हो सकती है तो वह आज है, जब कि वहां जाकर लोक-शासनके लिए लड़ना है। लेकिन आज तो कुछ हद तक हमने यह भी देख लिया है कि वहां पहुंच कर लोक-शासनके लिए लड़ाई कम होती है।

तीसरी गलती यह माननेमें है कि धारासभायें ही मार्गदर्शनके सबसे योग्य साधन हैं। अपने इर्द-गिर्द देखनेसे पता चलता है कि दुनिया भरमें पथ-प्रदर्शक ज्यादातर तो धारासभाके बाहर रहनेवाले लोग ही होते हैं। यदि ऐसा न हो तो लोक-शासन सड़ जाय। क्योंकि मार्गदर्शन करनेका क्षेत्र तो व्यापक और विशाल है और धारासभाका बहुत छोटा। लोक-जीवनकी धारा महासागर है, जब कि धारासभा एक बहुत छोटी नदी। २

प्रश्नोत्तर

प्र० — हमें मालूम होता है कि कांग्रेस किसी भी प्रतिनिधि-संस्था या समितिके लिए महिला प्रतिनिधियोंको बड़ी तादादमें चुननेके खिलाफ

है। असलमें न्यायका तकाजा है कि अलग अलग संस्थाओंमें महिलाओंको ज्यादा संख्यामें चुना जाय। इस सवालको आप कैसे हल करेंगे?

उ०—ऐसी बातोंमें मुझे समानताका या दूसरे किसी तरहके अनुपातका मोह नहीं है। इसमें योग्यता ही मुख्य कसौटी होनी चाहिये। आज तक अगर स्त्रियोंको इस क्षेत्रसे दूर रखनेका रिवाज चला आया है, तो अबसे समान योग्यताके आधार पर पुरुषोंके बदले स्त्रियोंको तरजीह देनेका उलटा रिवाज चालू कर देना चाहिये। इस तरजीहका यह नतीजा हो सकता है कि पुरुषोंकी सारी जगहें स्त्रियोंके हाथमें आ जायं, लेकिन इसकी कोई चिन्ता नहीं। कोई स्त्री केवल स्त्री है इसीलिए उसे सदस्य बनाने पर जोर देना खतरनाक बात होगी। स्त्रियां हों या दूसरे कोई दल हों, उन्हें किसीकी मदद पर आधार न रखना चाहिये। उन्हें न्यायकी मांग करनी चाहिये, न कि पक्षपात या मेहरबानीकी। इसलिए स्त्रियां और पुरुषों दोनोंके लिए यही ठीक होगा कि वे अंग्रेजी या पश्चिमी शिक्षाके बदले अपने समाजमें प्रान्तीय भाषाओं द्वारा ऐसी शिक्षाका प्रसार करें, जो लोगोंको नागरिकोंके सारे फर्ज पूरे करने लायक बना दे। अगर पुरुष इस ओर पहले कदम बढ़ाते हैं, तो उनका यह काम मेहरबानी नहीं बल्कि स्त्रियोंके साथ किया जानेवाला न्याय ही होगा, जो बहुत पहले किया जाना चाहिये था। ३

१९
मताधिकार

मैंने बालिग मताधिकारका वरण किया है। . . . बालिग मताधिकार एक नहीं अनेक कारणोंसे जरूरी है। और मेरे लिए एक निर्णायक कारण यह है कि वह मुझे न केवल मुसलमानोंकी परन्तु तथाकथित हिन्दुओंकी, ईसाइयोंकी, मजदूरोंकी और सभी प्रकारके वर्गोंकी सारी उचित महत्त्वाकांक्षायें सन्तुष्ट करनेके लिए समर्थ बनाता है। मैं

इस विचारको सहन नहीं कर सकता कि जिस आदमीके पास धन है उसे मतदानका अधिकार हो और जिस आदमीके पास धन या अक्षरज्ञान तो नहीं परन्तु चरित्र है उसे मतदानका अधिकार न हो; अथवा जो आदमी रात-दिन पसीना बहाकर ईमानदारीसे कड़ी मेहनत करता है उसे केवल इस अपराधके लिए मतदानका अधिकार न हो कि वह गरीब है। १

जहां तक मताधिकारका सम्बन्ध है, मैं विश्वास दिलाता हूं कि २१ या १८ वर्षकी उम्रसे ऊपरके सब बालिग स्त्री-पुरुषोंको मत देनेका अधिकार रहेगा। मैं अपने जैसे बूढ़ोंको यह अधिकार नहीं देना चाहता। ऐसे लोग किसी कामके नहीं। हिन्दुस्तान और बाकीकी दुनिया उन लोगोंके लिए नहीं है, जो मौतके किनारे खड़े हैं। उनके लिए मौत है, जिन्दगी नौजवानोंके लिए है। इस तरह मैं चाहूंगा कि जैसे १८ वर्षकी उम्रसे कम उम्रके लोगोंको मत देनेका अधिकार नहीं होगा, उसी तरह एक निश्चित उम्रके बादके लोगोंको — मान लीजिये कि ५० सालसे ऊपरकी उम्रके लोगोंको भी इससे वंचित रखना होगा। २

वयस्क मताधिकार और अक्षरज्ञानकी कसौटी

अब तक मैं यह मानता और कहता आया हूं कि हरएक वयस्क आदमीको — फिर वह निरक्षर हो या साक्षर — मत देनेका अधिकार होना चाहिये। लेकिन कांग्रेस-विधानको जिस तरह अमलमें लाया जा रहा है, उसका निरीक्षण करते करते मेरी राय बदल गई है। अब मैं यह मानने लगा हूं कि मताधिकारके लिए अक्षरज्ञानका होना आवश्यक है। इसके दो कारण हैं। मतको एक विशेष अधिकारके रूपमें माना जाये और उसके लिए कुछ योग्यता आवश्यक समझी जाये। सादीसे सादी योग्यता अक्षरज्ञानकी — लिखना, पढ़ना आ जानेकी — है। और अक्षरज्ञानवाले मताधिकारके विधानके अनुसार बना हुआ मंत्रि-मंडल यदि मताधिकारसे वंचित निरक्षर प्रजाजनोंके हितकी चिंता रखनेवाला होगा, तो आवश्यक अक्षरज्ञान तो उन्हें देखते देखते हो जायगा। ३

कानून द्वारा सुधार

लोग ऐसा सोचते मालूम होते हैं कि किसी बुराईके खिलाफ कानून बना दिया जाय, तो वह बुराई अपने-आप निर्मूल हो जाती है। इस सम्बन्धमें अधिक कुछ करनेकी आवश्यकता नहीं रहती। लेकिन इससे ज्यादा बड़ी कोई आत्म-वंचना नहीं हो सकती। कानून तो अज्ञानमें फंसे हुए या बुरी वृत्तिवाले अल्पसंख्यक लोगोंको ध्यानमें रखकर यानी उनसे उनकी बुराई छुड़वानेके उद्देश्यसे बनाया जाता है और उसी स्थितिमें वह सफल भी होता है। बुद्धिमान और संगठित लोकमत अथवा धर्मकी आड़ लेकर दुराग्रही अल्पसंख्यक लोग जिस कानूनका विरोध करते हैं, वह कभी सफल नहीं हो सकता। १

पहली चीज तो यह है कि हमारे प्रयत्नमें जबरदस्ती या असत्यका लेश भी नहीं होना चाहिये। मेरी नम्र रायमें आज तक जबरदस्तीके द्वारा कोई भी महत्त्वपूर्ण सुधार नहीं कराया जा सका है। कारण यह है कि जबरदस्तीके द्वारा ऊपरी सफलता होती भले दिखाई दे, किन्तु उससे दूसरी अनेक बुराइयां पैदा हो जाती हैं, जो मूल बुराईसे भी ज्यादा हानिकारक सिद्ध होती हैं। २

एक बार जब कानून अमलमें आ जाता है, तब उसे बदलनेमें सभी कठिनाइयोंका सामना करना होता है। जनमतके पूरी तरह [illegible] होने पर ही देशमें प्रचलित कानून रद्द किये जा सकते हैं। [illegible] विधानके मातहत हर समय कानून सुधारे जाते हैं या रद्द किये जाते हैं, उसे स्थायी या सुगठित नहीं कहा जा सकता है। ३

मुझे डर है कि भारतको अभी कई वर्षों तक दबी हुई और [illegible] जनताको शुद्ध और [illegible] उठानेके लिए आवश्यक कानून [illegible] काम करते रहना होगा। इस बीचमें उसे [illegible]

सब तो पूंजीपतियों, जमींदारों और तथाकथित उच्च वर्गोंने और बादमें ब्रिटिश शासकोंने फंसाया है; अलबत्ता, ब्रिटिश शासकोंने अपना यह काम बहुत वैज्ञानिक रीतिसे किया है। अगर हमें इस जनताका उसकी इस दुरवस्थासे उद्धार करना है, तो अपना घर सुव्यवस्थित करनेकी दृष्टिसे भारतकी राष्ट्रीय सरकारका यह कर्तव्य होगा कि वह लगातार जनताको ही तरजीह देती रहे और जिन बोझोंके भारसे उसकी कमर टूटी जा रही है उनसे उसे मुक्त भी कर दे। और यदि जमींदारोंको, अमीरोंको और उन लोगोंको जो आज विशेषाधिकार भोग रहे हैं — फिर वे यूरोपीय हों या भारतीय — ऐसा मालूम हो कि उनके साथ निष्पक्षताका व्यवहार नहीं हो रहा है, तो मैं उनसे सहानुभूति रखूंगा। लेकिन मैं उनकी कोई सहायता नहीं कर सकूंगा, क्योंकि मैं तो इस मसलेमें उनकी मदद चाहूंगा, और सच तो यह है कि उनकी मददके बिना इस जनताका दलदलसे उद्धार करना सम्भव ही नहीं होगा।

इसलिए धन या अधिकारोंके रूपमें जिनके पास कोई सम्पत्ति है उनके तथा जिनके पास ऐसी कोई सम्पत्ति नहीं है उन गरीबोंके बीच संघर्ष तो अवश्य होगा। और यदि इस संघर्षका भय रखा जाता हो और सब वर्ग मिलकर करोड़ों मूक लोगोंके सिर पर पिस्तौल तानकर ऐसा कहना चाहते हों कि 'तुम लोगोंको तुम्हारी अपनी सरकार तब तक नहीं मिलेगी जब तक कि तुम इस बातका आश्वासन नहीं देते कि हमारी सम्पत्ति और हमारे अधिकारोंको कोई आंच नहीं आयेगी', तब तो मुझे लगता है कि राष्ट्रीय सरकारका निर्माण हो ही नहीं सकता। ४

उद्देश्यसे उपयोग कर सकें, तो यह आशा निष्फल हो सकती है। और ऐसा करना कुछ कठिन काम नहीं है, क्योंकि हम कानूनों और इस विधानका ऐसा उपयोग करें जैसा उपयोग किये जानेकी उन्होंने आशा नहीं रखी है और जैसा वे चाहते हैं वैसा उपयोग हम उनका न करें।

इस प्रकार शराबकी आमदनीसे शिक्षाका खर्च चलानेके बजाय शिक्षाको स्वावलम्बी बनाकर मंत्रि-मण्डल तत्काल मद्य-निषेधको अमलमें ला सकते हैं। यह एक धोखा देनेवाली बात मालूम पड़ेगी, लेकिन मैं तो इसे सर्वथा व्यावहारिक और बिल्कुल उचित समझता हूँ। इसी तरह जेलोंको सुधार-गृहों और कारखानोंका रूप दिया जा सकता है। उस हालतमें वे खर्चीले और सजा देनेवाले महकमोंके बजाय स्वावलम्बी और शिक्षात्मक महकमे बन जायेंगे। इर्विन-गांधी करारके अनुसार, जिसकी सिर्फ नमकवाली धारा अब भी कायम है, नमक गरीबोंके लिए मुफ्त मिलना चाहिये। लेकिन ऐसा है नहीं। अब कमसे कम कांग्रेसी प्रान्तोंमें तो यह हो ही सकता है। इसी तरह जो भी कपड़ा खरीदा जाय वह खादीका ही होना चाहिये। शहरोंके बजाय अब गावों और किसानोंकी तरफ ज्यादा ध्यान दिया जाना चाहिये। ये तो इधर-उधरके कुछ उदाहरण भर हुए। ये सब बातें पूरी तरह कानून-सम्मत हैं। परन्तु इनमें से किसी एकके लिए भी अभी तक कोई प्रयत्न नहीं किया गया है।

इसके बाद मंत्रियोंके अपने निजी आचरणका सवाल आता है। कांग्रेसी मंत्री किस तरह अपना कर्तव्य पालन करेंगे? राष्ट्रपति (कांग्रेस अध्यक्ष) तो तीसरे दर्जेमें यात्रा करते हैं। तब क्या मंत्री पहले दर्जेमें यात्रा करेंगे? इसी प्रकार राष्ट्रपति तो खुरदरे और सादे खद्दरके कुर्ते, धोती और जाकिटसे ही संतोष कर लेते हैं, तब क्या मंत्री पश्चिमके रहन-सहनके ढंग और पैमाने पर पैसा खर्च करेंगे? गत १७ वर्षोंसे कांग्रेसियोंने कठोरतासे सादगीका पालन किया है। अतः राष्ट्र

विभाग – ७ : पद-ग्रहण और मंत्रियोंका कर्तव्य

२१

कांग्रेसी मन्त्रि-मण्डल

पद-ग्रहणके मामलेमें कांग्रेस कार्यसमिति तथा कांग्रेसवादियोंने मेरी रायसे अपनेको प्रभावित होने दिया है, इसलिए सर्व-साधारणको यह बताना मेरे लिए शायद जरूरी हो गया है कि पद-ग्रहणके बारेमें मेरी क्या कल्पना है और कांग्रेसके चुनाव-घोषणापत्रके अनुसार पद-ग्रहण द्वारा क्या कार्य किया जा सकता है। यह बात शायद पाठकोंको उस मर्यादासे बाहरकी मालूम पड़े, जो कि मैंने 'हरिजन' के लिए अपने-आप बना रखी है। लेकिन इसके लिए मुझे माफी मांगनेकी जरूरत नहीं है। कारण इसका बिलकुल साफ है। भारतीय शासन विधान (गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट) हिन्दुस्तानकी स्वतंत्रता प्राप्त करनेके लिए बिलकुल पर्याप्त नहीं है, यह आम तौर पर सब कोई मानते हैं। परन्तु इसके द्वारा तलवारके शासनको बहुमतके शासनमें बदला जा सकता है, फिर वह कितना ही सीमित और निर्बल क्यों न हो। तीन करोड़ स्त्री-पुरुषोंके मिला-

उद्देश्यसे उपयोग कर सके, तो यह आशा निष्फल हो सकती है। और ऐसा करना कुछ कठिन काम नहीं है, बशर्ते कि हम कानूनी तौर पर इस विधानका ऐसा उपयोग करे जैसा उपयोग किये जानेकी उन्होंने आशा नहीं रखी है और जैसा वे चाहते हैं वैसा उपयोग हम उसका न करें।

इस प्रकार शराबकी आमदनीसे शिक्षाका खर्च चलानेके बजाय शिक्षाको स्वावलम्बी बनाकर मंत्रि-मण्डल तत्काल मद्य-निषेधको अमलमें ला सकते हैं। यह एक चौंका देनेवाली बात मालूम पड़ेगी, लेकिन मैं तो इसे सर्वथा व्यावहारिक और बिलकुल उचित समझता हू। इसी तरह जेलोंको सुधार-गृहो और कारखानोका रूप दिया जा सकता है। उस हालतमें वे खर्चीले और सजा देनेवाले महकमोके बदले स्वावलम्बी और शिक्षणात्मक महकमे बन जायेंगे। इर्विन-गाधी करारके अनुसार, जिसकी सिर्फ नमकवाली धारा अब भी कायम है, नमक गरीबोंके लिए मुफ्त मिलना चाहिये। लेकिन ऐसा है नही। अब कमसे कम कांग्रेसी प्रान्तोंमें तो यह हो ही सकता है। इसी तरह जो भी कपडा खरीदा जाय वह खादीका ही होना चाहिये। शहरोके बजाय अब गावों और किसानोंकी तरफ ज्यादा ध्यान दिया जाना चाहिये। ये तो इधर-उधरके कुछ उदाहरण भर हुए। ये सब बातें पूरी तरह कानून-सम्मत हैं। परन्तु इनमें से किसी एकके लिए भी अभी तक कोई प्रयत्न नही किया गया है।

इसके बाद मंत्रियोके अपने निजी आचरणका सवाल आता है। कांग्रेसी मंत्री किस तरह अपना कर्तव्य पालन करेंगे? राष्ट्रपति (कांग्रेस अध्यक्ष) तो तीसरे दर्जेमें यात्रा करते है। तब क्या मंत्री पहले दर्जेमें यात्रा करेंगे? इसी प्रकार राष्ट्रपति तो खुरदरे और सादे खद्दरके कुर्ते, धोती और जाकिटसे ही संतोष कर लेते है, तब क्या मंत्री पश्चिमके रहन-सहनके ढंग और पैमाने पर पैसा खर्च करेंगे? गत १७ वर्षोंसे कांग्रेसियोंने कठोरतासे सादगीका पालन किया है। अतः राष्ट्र

उद्देश्यसे उपयोग कर सकें, तो यह आशा निष्फल हो सकती है। और ऐसा करना कुछ कठिन काम नही है, बशर्ते कि हम कानूनी तौर पर इस विधानका ऐसा उपयोग करे जैसा उपयोग किये जानेकी उन्होंने आशा नही रखी है और जैसा वे चाहते हैं वैसा उपयोग हम उसका न करें।

इस प्रकार शराबकी आमदनीसे शिक्षाका खर्च चलानेके बजाय शिक्षाको स्वावलम्बी बनाकर मन्त्रि-मण्डल तत्काल मद्य-निषेधको अमलमें ला सकते है। यह एक चौंका देनेवाली बात मालूम पड़ेगी, लेकिन मै तो इसे सर्वथा व्यावहारिक और बिलकुल उचित समझता हूं। इसी तरह जेलोंको सुधार-गृहों और कारखानोंका रूप दिया जा सकता है। उस हालतमें वे खर्चीले और सजा देनेवाले महकमोके बदले स्वावलम्बी और शिक्षणात्मक महकमे बन जायेंगे। इर्विन-गांधी करारके अनुसार, जिसकी सिर्फ नमकवाली धारा अब भी कायम है, नमक गरीबोंके लिए मुफ्त मिलना चाहिये। लेकिन ऐसा है नही। अब कमसे कम कांग्रेसी प्रान्तोंमें तो यह हो ही सकता है। इसी तरह जो भी कपड़ा खरीदा जाय वह खादीका ही होना चाहिये। शहरोंके बजाय अब गांवो और किसानोंकी तरफ ज्यादा ध्यान दिया जाना चाहिये। ये तो इधर-उधरके कुछ उदाहरण भर हुए। ये सब बातें पूरी तरह कानून-सम्मत हैं। परन्तु इनमें से किसी एकके लिए भी अभी तक कोई प्रयत्न नहीं किया गया है।

इसके बाद मंत्रियोके अपने निजी आचरणका सवाल आता है। कांग्रेसी मंत्री किस तरह अपना कर्तव्य पालन करेंगे? राष्ट्रपति (कांग्रेस अध्यक्ष) तो तीसरे दर्जेमें यात्रा करते हैं। तब क्या मंत्री पहले दर्जेमें यात्रा करेंगे? इसी प्रकार राष्ट्रपति तो खुरदरे और सादे खद्दरके कुर्ते, धोती और जाकिटसे ही संतोष कर लेते है, तब क्या मंत्री पश्चिमके रहन-सहनके ढंग और पैमाने पर पैसा खर्च करेंगे? गत १७ वर्षोंसे कांग्रेसियोंने कठोरतासे सादगीका पालन किया है। अतः राष्ट्र

२१

कांग्रेसी मन्त्रि-मण्डल

पद-ग्रहणके मामलेमें कांग्रेस कार्यसमिति तथा कांग्रेसवादियोंने मेरी रायसे अपनेको प्रभावित होने दिया है, इसलिए सर्व-साधारणको यह बताना मेरे लिए शायद जरूरी हो गया है कि पद-ग्रहणके बारेमें मेरी क्या कल्पना है और कांग्रेसके चुनाव-घोषणापत्रके अनुसार पद-ग्रहण द्वारा क्या काम किया जा सकता है। यह बात शायद पाठकोंको उस मर्यादासे बाहरकी मालूम पड़े, जो कि मैंने 'हरिजन' के लिए अपने-आप बना रखी है। लेकिन इसके लिए मुझे माफी मांगनेकी जरूरत नहीं है। कारण इसका बिलकुल साफ है। भारतीय शासन विधान (गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट) हिन्दुस्तानकी स्वतंत्रता प्राप्त करनेके लिए बिलकुल पर्याप्त नहीं है, यह आम तौर पर सब कोई मानते हैं। परन्तु इसके द्वारा तलवारके शासनको बहुमतके शासनमें बदला जा सकता है, फिर वह कितना ही सीमित और निर्बल क्यों न हो। तीन करोड़ स्त्री-पुरुषोंके निर्वाचन-मण्डलका निर्माण करके उसके हाथमें विशाल सत्ता सौंपनेवाले कानूनको हम और कुछ भी क्या मान सकते हैं? यह सच है कि इस [illegible]

उद्देश्यसे उपयोग कर सकें, तो यह आशा निष्फल हो सकती है। और ऐसा करना कुछ कठिन काम नहीं है, बशर्ते कि हम कानूनी तौर पर इस विधानका ऐसा उपयोग करें जैसा उपयोग किये जानेकी उन्होंने आशा नहीं रखी है और जैसा वे चाहते हैं वैसा उपयोग हम उसका न करें।

इस प्रकार शराबकी आमदनीसे शिक्षाका खर्च चलानेके बजाय शिक्षाको स्वावलम्बी बनाकर मंत्रि-मण्डल तत्काल मद्य-निषेधको अमलमें ला सकते हैं। *यह एक चौंका देनेवाली बात मालूम पड़ेगी, लेकिन मैं* तो इसे सर्वथा व्यावहारिक और बिलकुल उचित समझता हूं। इसी तरह जेलोंको सुधार-गृहों और कारखानोंका रूप दिया जा सकता है। उस हालतमें वे खर्चीले और सजा देनेवाले महकमोंके बदले स्वावलम्बी और शिक्षणात्मक महकमे बन जायेंगे। इर्विन-गांधी करारके अनुसार, जिसकी सिर्फ नमकवाली धारा अब भी कायम है, नमक गरीबोंके लिए मुफ्त मिलना चाहिये। लेकिन ऐसा है नहीं। अब कमसे कम कांग्रेसी प्रान्तोंमें तो यह हो ही सकता है। इसी तरह जो भी कपड़ा खरीदा जाय वह खादीका ही होना चाहिये। शहरोंके बजाय अब गांवों और किसानोंकी तरफ ज्यादा ध्यान दिया जाना चाहिये। ये तो इधर-उधरके कुछ उदाहरण भर हुए। ये सब बातें पूरी तरह कानून-सम्मत हैं। परन्तु इनमें से किसी एकके लिए भी अभी तक कोई प्रयत्न नहीं किया गया है।

इसके बाद मंत्रियोंके अपने निजी आचरणका सवाल आता है। कांग्रेसी मंत्री किस तरह अपना कर्तव्य पालन करेंगे? राष्ट्रपति (कांग्रेस अध्यक्ष) तो तीसरे दर्जेमें यात्रा करते हैं। तब क्या मंत्री पहले दर्जेमें यात्रा करेंगे? इसी प्रकार राष्ट्रपति तो खुरदरे और सादे खद्दरके कुर्ते, धोती और जाकिटसे ही संतोष कर लेते हैं, तब क्या मंत्री पश्चिमके रहन-सहनके ढंग और पैमाने पर पैसा खर्च करेंगे? गत १७ वर्षोंसे कांग्रेसियोंने कठोरतासे सादगीका पालन किया है। अतः राष्ट्र

अपने मंत्रियोंसे यही आशा करेगा कि अपने प्रांतोंके शासनमें वे उसी सादगीका प्रवेश करायें। इसके लिए वे लज्जित नहीं होंगे, बल्कि गर्वका अनुभव करेंगे। क्योंकि भूमंडल पर एक हमारा ही राष्ट्र सबसे अधिक गरीब है, जिसमें लाखों लोग अधभूखे रहते हैं। इसके प्रतिनिधि ऐसे ढंग और तौर-तरीकोंसे रहनेका साहस नहीं कर सकते, जो उनके निर्वाचकोंके रहन-सहन और तौर-तरीकोंसे मेल न खाते हों। अंग्रेज लोग तो विजेता और शासकके रूपमें यहां आते हैं। इसलिए वे रहन-सहनका ऐसा स्तर रखते हैं, जिसका पराजितोंकी असहाय अवस्थासे बिल्कुल मेल नहीं खाता। अतः मंत्री लोग दूसरा कुछ न करें और सिर्फ गवर्नरों और सुरक्षित सिविल सर्विसवालोंकी नकल करनेसे ही बचे रहें, तो वे यह दिखा देंगे कि कांग्रेसकी और उन लोगोंकी मनोवृत्तिमें कितना अन्तर है। सच तो यह है कि जैसे हाथी और चींटीके बीच कोई साझेदारी नहीं हो सकती, वैसे ही उनके और हमारे बीच भी नहीं हो सकती।

सिवा और किसी चीजका उपयोग करें। कांग्रेसी मन्त्री अगर सादगी और किफायतशारीकी उस विरासतको कायम रखें, जो १९२० से उन्हें मिली है, तो वे हजारों रुपयेकी बचत और लोगोंमें आशाका संचार करेंगे और शायद सिविल सर्विसवालोंके रुखको भी बदल देंगे। मेरे लिए यह कहनेकी तो शायद ही जरूरत हो कि सादगीका अर्थ भद्दापन नहीं है। सादगीमें तो ऐसी सुन्दरता और कला है, जिसे कोई भी व्यक्ति देख सकता है। साफ-सुथरा और सलीकेदार होनेके लिए रुपये-पैसेकी जरूरत नहीं होती। तड़क-भड़क और आडम्बर तो प्रायः अशिष्टता और गंवारपनका ही दूसरा नाम है।

यह सीधा-सादा काम तो यह प्रदर्शित करनेकी भूमिका मात्र होना चाहिये कि नया विधान जनताकी इच्छापूर्ति करनेके लिए बिल-कुल अपर्याप्त है और उसका अन्त करनेके लिए हम दृढ़ताके साथ कटिबद्ध हैं।

अंग्रेजोंके अखबार हिन्दुस्तानको हिन्दू और मुसलमानोंके दो भागोंके रूपमें बांटनेका जीतोड़ प्रयत्न कर रहे हैं। जिन प्रांतोंमें कांग्रेसका बहुमत है उन्हें हिन्दू और बाकी पांच प्रांतोंको वे मुस्लिम प्रान्तोंका नाम देते हैं। यह साफ तौर पर गलत है, इसकी उन्हें कभी चिन्ता ही नहीं हुई। अतः मुझे इस बातकी बड़ी आशा है कि छह प्रान्तोंके (जिनमें कांग्रेसका बहुमत है) मंत्री उनकी ऐसी व्यवस्था करेंगे, जिससे इस प्रकारका कोई सन्देह न रहे। अपने मुसलमान साथियोंको वे दिखा देंगे कि हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी या ईसाईके बीच कोई भेदभाव नहीं है। न सवर्ण और अवर्ण जातियोंके हिन्दुओंके बीच ही वे कोई भेदभाव मानेंगे। वे तो अपने हर कार्यसे यही प्रकट करेंगे कि उनके लिए सब लोग एक ही भारत माताकी संतान हैं; न कोई ऊंचा है, न कोई नीचा। गरीबी और आबहवा बिना किसी भेदभावके सबके लिए समान हैं और सबकी मुख्य समस्यायें भी एकसी ही हैं। और जब कि — जहां तक हम कार्यसे निर्णय कर सकते हैं — अंग्रेजों

लक्ष्य हमारी पद्धतिसे बिलकुल भिन्न है, दोनों लक्ष्योंका प्रतिनिधित्व करनेवाले स्त्री-पुरुष मूलतः एक ही मानव-परिवारके हैं। अब उन्हें एक-दूसरेके सम्पर्कमें आनेका ऐसा अवसर मिलेगा जैसा पहले कभी नहीं मिला था। मानव-दृष्टिसे मैंने विधानका जो अध्ययन किया है वह अगर सही हो, तो उसके जरिये दो दल — हरएक अपने अपने इतिहास, अपनी आधार-भूमि और अपना लक्ष्य सामने रखकर — एक-दूसरेको बदलनेके लिए आगे बढ़ते हैं। जड़ और आत्मा-रहित संस्थायें होती हैं, न कि उन्हें बनानेवाले और उनका उपयोग करनेवाले मनुष्य। अगर अंग्रेज या अंग्रेजियतमें पले हुए हिन्दुस्तानी कमसे कम यदि भारतीय यानी कांग्रेसके दृष्टिकोणसे भी देख सकें, तो समझना चाहिये कि कांग्रेसने अपनी लड़ाई जीत ली और पूर्ण स्वाधीनता हमें एक बूंद खून बहाये बिना ही प्राप्त हो जायगी। मैं जिसे अहिंसात्मक तरीका कहता हूं वह यही है। यह तरीका चाहे बेवकूफी भरा समझा जाय या काल्पनिक अथवा अव्यावहारिक, परन्तु यही वह सर्वोत्तम तरीका है जिसे कांग्रेसियों, अन्य भारतीयों तथा अंग्रेजोंको जानना चाहिये। यह ध्यान रहे कि पद-ग्रहण इसलिए नहीं किया जा रहा है कि किसी न किसी तरह नये विधान पर अमल किया जाय। यह तो कांग्रेसका अपना पूर्ण स्वतंत्रताका ध्येय सिद्ध करनेकी दिशामें एक ऐसा गंभीर प्रयत्नमात्र है, जिसमें एक ओर तो खूनी क्रांति यानी रक्तपातको बचाना है और दूसरी ओर सविनय अवज्ञाको ऐसे पैमाने पर करनेसे रोकना है, जिस पर कि अभी तक उसे करनेका प्रयत्न नहीं हुआ है। ईश्वर हमारे इस प्रयत्नको आशीर्वाद दे! १

२२

कितना मौलिक अन्तर है!

जरा सोचनेकी बात है कि पुराने और नये राज्य-प्रबन्धमें कितना मौलिक अन्तर है! इसके महत्त्वको पूरी तरह अनुभव करनेके लिए इस नये विधान द्वारा लादी गई तथा प्रबन्धकोंके मार्गमें बेहद रोड़े अटकानेवाली मर्यादाओंको हम एक क्षणके लिए भुला दें। पद-ग्रहण करनेमें कांग्रेस ठेठ पराकाष्ठाकी सीमा तक चली गई है। पर सवाल यह है कि इससे दरअसल उसके हाथोंमें सत्ता कितनी आई है। पहले मंत्रि-मंडलों पर गवर्नरोंका नियन्त्रण था, अब कांग्रेसका है। अब वे कांग्रेसके प्रति जिम्मेदार हैं। अपनी प्रतिष्ठाके लिए वे कांग्रेसके ऋणी हैं। गवर्नरों और सिविल सर्विसवालोंको आज भले ही हम हटा न सकें, फिर भी वे मंत्रि-मंडलोंके प्रति जवाबदेह हैं। तब भी मंत्रियोंका उन पर नियंत्रण एक हद तक ही है। किन्तु इस हदके अन्दर रहते हुए भी वे कांग्रेसकी यानी जनताकी सत्ताका सगठन कर सकते हैं। मंत्रियोंके कार्य गवर्नरोंके लिए चाहे जितने अरुचिकर हों, पर जब तक वे इस कानूनकी मर्यादामें रहेंगे तब तक गवर्नर उनका कुछ भी नहीं कर सकेंगे। और अच्छी तरह परीक्षा करने पर हमें साफ साफ दिखाई दे सकता है कि जनता अगर अहिंसक बनी रही, तो कांग्रेसके मंत्रि-मंडलोंके हाथोंमें राष्ट्रको विकसित करनेकी अब भी काफी सत्ता है।

इस सत्ताका उपयोग करके अगर अच्छे परिणाम लाने हैं, तो जनताको चाहिये कि वह कांग्रेस और उसके मंत्रियोंको हार्दिक सहयोग दे। अगर मंत्री कुछ अन्याय करें, तो हर आदमी इसकी शिकायत राष्ट्रीय महासमिति (ऑल इंडिया कांग्रेस कमेटी) के मंत्रीसे कर सकता है और उसके परिमार्जनकी मांग भी कर सकता है। पर कानूनको कोई अपने हाथोंमें न ले।

कांग्रेसवादियोंको यह भी अच्छी तरह जान लेना चाहिये कि आज सारा मैदान कांग्रेसके हाथोंमें है। एक भी राजनीतिक दल ऐसा नहीं है, जो उसकी सत्ताके खिलाफ उंगली तक उठा सके; क्योंकि दूसरे दल कभी गांवोंमें गये ही नहीं हैं। और न यह काम ही ऐसा है, जो एक दिनमें किया जा सके। इसलिए जहां तक मैं नजर दौड़ाता हूं, मुझे तो यही दिखाई देता है कि हमारे मंत्रियोंके लिए — यदि वे ईमानदार, **निःस्वार्थ, उद्योगशील, सजग और तत्पर** हैं तथा अपने करोड़ों भूखे मरनेवाले भाई-वहनोंका सचमुच भला करना चाहते हैं — कांग्रेसके पूर्ण स्वतन्त्रतावाले ध्येयकी तरफ तेजीसे आगे कदम वढ़ानेके लिए यह वड़ा अच्छा मौका है। निःसन्देह इस कथनमें भी वहुत सत्य है कि इस नये कानूनने राष्ट्र-निर्माणकारी महकमोंके लिए मंत्रियोंके हाथोंमें कुछ भी पैसा नहीं छोड़ा है। पर अधिकांशमें यह भी तो एक भ्रम ही है कि राष्ट्र-निर्माण केवल पैसेसे ही हो सकता है। सर डेनि. हेमिल्टनके साथ मैं भी यही मानता हूं कि सच्चा धन सोना-चांदी नहीं, वल्कि श्रमशक्ति है। धनशक्तिके साथ श्रमशक्तिका होना अच्छा है। किन्तु श्रमशक्ति मुख्य हो और उसके साथ जहां जरूरत हो वहां पैसेकी भी सहायता ले लें, तो वह अधिक अच्छा है, कम हरगिज नहीं।

एक अंग्रेज अर्थशास्त्री, जो कि हिन्दुस्तानमें एक वड़े ऊंचे पद पर रह चुके हैं, लिखते हैं: "हिन्दुस्तानको हमारी सवसे वुरी देन है ये महंगी नौकरियां। पर जो हुआ सो हुआ। मुझे तो अव कोई स्वतंत्र वस्तु ढूंढ़कर वतानी होगी। आज जो कुछ पैसेके लिए किया जाता है वह अव आगे सेवाकी दृष्टिसे होना चाहिये। डॉक्टरों तथा शिक्षकोंको भारी भारी तनखाहें क्यों दी जायं? सहकारिताके सिद्धांतके अनुसार क्यों नहीं अधिकांश काम चलाया जा सकता? आप पूंजीकी चिल्लाहट क्यों मचाते हैं, जव कि सत्तर करोड़ हाथ काम करनेके लिए तैयार हैं? अगर हम सहकारिताके आधार पर — जो कि समाज-

दका एक सशोधित रूप है — काम करें, तो हमें धनकी कमसे कम धिक परिमाणमें तो जरूरत नही होगी।"

सेगांवमें मुझे इसका प्रमाण मिल रहा है। यहांके चार सौ लिग निवासी बड़ी आसानीसे एक सालमें दस हजार रुपये कमा कते हैं, बशर्ते कि वे मेरे बताये हुए मार्ग पर चलें। पर वे चलते ही। उनमें सहयोगकी कमी है। वे काम करते समय बुद्धिसे काम ही लेते और कोई भी नई बात सीखना नही चाहते। छुआछूत नके रास्तेमें एक बड़ी जबरदस्त रुकावट है। अगर कोई उन्हें एक गख रुपये भी दे दे, तो वे उसका सदुपयोग नही करेंगे। लेकिन पनी इस दशाके लिए वे लोग खुद ही जिम्मेदार नही हैं। जिम्मेदार म मध्यम वर्गके लोग हैं। सेगाव जैसी ही हालत दूसरे गावोंकी भी मझ लीजिये। लेकिन धीरजके साथ प्रयत्न किया जाय, तो उन पर ो सेगावकी ही तरह असर — भले बहुत थोड़ा ही क्यों न हो — ड़ सकता है। पर बगैर एक पाई भी अधिक खर्च किये राज्य इस शामें बहुत-कुछ कर सकता है। सरकारी अधिकारियोंका उपयोग लोगोंको सतानेके बजाय उनकी सेवामें किया जा सकता है। ग्रामीणों र किसी तरहकी जोर-जबरदस्ती करनेकी जरूरत नहीं है। उन्हें ऐसी तें करनेकी शिक्षा दी जा सकती है, जिससे कि वे नैतिक, बौद्धिक, शारीरिक और आर्थिक सब दृष्टियोंसे सम्पन्न हो जायं। १

इस सम्बन्धमें पहली बात तो मैं यह कहूंगा कि मन्त्रियोंके चुनावके किसी भी मामलेमें मैंने कोई दखल नहीं दिया है। पहले तो मेरी ऐसी कोई इच्छा ही नहीं है; फिर अगर इच्छा हो भी तो कांग्रेससे बिलकुल अलग हो जानेके कारण मुझे ऐसे मामलोंमें दखल देनेका कोई अधिकार नहीं है। कांग्रेसके मामलोंमें मैं उसी हद तक पड़ता हूं जहां तक मंत्रीपद ग्रहण करनेके सिलसिलेमें खड़े होनेवाले प्रश्नोंके बारेमें या पूर्ण स्वाधीनताके हमारे लक्ष्यको पहुंचनेके लिए अपनाई जानेवाली नीतियोंके बारेमें मेरी सलाहकी जरूरत हो।

लेकिन मुझे ऐसा मालूम होता है कि मेरे पास जो लोग लम्बे-लम्बे पत्र भेज रहे हैं, उनके खयालमें मंत्रीपद मानो पुरानी सेवाओंके बदलेमें मिलनेवाले पुरस्कार हैं, जिनके लिए कुछ कांग्रेसी अपने दावे पेश कर सकते हैं। मैं उन्हें यह सुझानेका साहस करता हूं कि मंत्रिपद तो सेवाके द्वार हैं; जिन लोगोंको वे सुपुर्द किये जायें उन्हें प्रसन्नता और पूरी योग्यताके साथ जनताकी सेवा करनी चाहिये। इसलिए इन पदोंके लिए आपसमें छीना-झपटी होनी ही नहीं चाहिये। विभिन्न हितों-

को सन्तुष्ट करनेके लिए मंत्रीपदोंका निर्माण करना निश्चय ही गलती होगी। अगर मैं किसी प्रान्तका प्रधानमन्त्री होता और मेरे पास ऐसे दावे आते, तो मैं अपने निर्वाचकोंसे कह देता कि वे किसी और आदमी-को अपना नेता चुन लें। इन पदोंसे हमें चिपट नहीं जाना है, बल्कि हल्के हाथसे उन्हें पकड़े रहना है। ये तो कांटोंके ताज हैं या होने चाहियें। ये प्रसिद्धिके लिए कभी नहीं हो सकते। पद तो यह देखनेके लिए ग्रहण किये गये हैं कि अपने लक्ष्यकी ओर हम जिस गतिसे बढ़ रहे हैं, उसमें इनसे कुछ जल्दी होती है या नहीं। ऐसी सूरतमें अगर स्वार्थी या गुमराह लोगोंको प्रधानमन्त्रियों पर हावी होकर प्रगतिमें बाधा डालने दी गई, तो वह बड़ी दुःखद बात होगी। जिन लोगोंमें अन्तमें जाकर मंत्रियोंको सत्ता हासिल होनी है, उनसे अगर आश्वासन मांगना जरूरी था, तो आपसमें एक-दूसरेको समझने, असन्दिग्ध रूपसे वफादार रहने और अनुशासनका स्वेच्छापूर्वक पालन करनेका आश्वासन पानेकी दूनी जरूरत है। कांग्रेसजनोंने अगर अपने व्यवहारमें काफी निःस्वार्थता, अनुशासन और लक्ष्यप्राप्तिके लिए कांग्रेस द्वारा प्रतिपादित साधनोंमें अपना विश्वास प्रकट नहीं किया, तो जिस विकट लड़ाईमें हमारा देश लगा हुआ है उसमें हमें विजय नहीं मिल सकती।

भला हो कराचीके प्रस्तावका, जिसके कारण कांग्रेसके मातहत ग्रहण किये जानेवाले मंत्रीपदोंके लिए आर्थिक आकर्षण नहीं हो सकता। यहां मैं यह जरूर कहूंगा कि ५०० रु० की तनखाहको ज्यादासे ज्यादा समझनेके बजाय कमसे कम समझना गलती है। ५०० रु० तो आखिरी हद है। हमारे देश पर बहुत भारी भारी तनखाहोंका जो बोझ लदा हुआ है उसके हम अगर आदी न हो गये होते, तो ५०० रु० की तनखाहको हमने बहुत ज्यादा समझा होता। कांग्रेसमें तो पिछले १७ सालोंमें आम तौर पर तनखाहकी कमसे कम दर ७५ रु० रही है। राष्ट्रीय शिक्षा, खादी और ग्रामोद्योग कांग्रेसके जो तीन बड़े बड़े रचना-

त्मक अखिल भारतीय विभाग हैं, उनमें तनखाहकी स्वीकृत दर ७५ रु० माहवार रही है। और इन विभागोंमें ऐसे व्यक्ति मौजूद हैं जो—जहां तक योग्यताका सम्बन्ध है——इतने योग्य हैं कि किसी भी दिन मंत्रीपदकी जिम्मेदारी संभाल सकते हैं। उनमें ख्यातिप्राप्त शिक्षाशास्त्री, वकील, रसायनशास्त्री और व्यापारी हैं, जो अगर चाहें तो आसानीसे ५०० रु० माहवारसे ज्यादा कमा सकते हैं। भला मंत्री बनने पर ऐसा फर्क क्यों आ जाना चाहिये, जैसा कि हम आज देख रहे हैं? लेकिन अब तो शायद जो कुछ होना था वह हो चुका। मैंने जो बातें कहीं वे तो मेरी व्यक्तिगत रायको ही प्रगट करती हैं। प्रधानमंत्रियोंके लिए मेरे मनमें इतना ज्यादा आदर है कि उनके निर्णय और उनकी बुद्धिमत्ता पर मैं शंका नहीं कर सकता। उनके सामने जो परिस्थितियां उपस्थित थीं, उनमें उनके खयालसे निःसन्देह यही सर्वोत्तम था। अपने पास आनेवाले पत्रोंके जवाबमें पत्रलेखकोंको जो बात मैं बताना चाहता हूं, वह यह है कि इन पदोंको इनकी वजहसे मिलनेवाली तनखाह और भत्तेकी रकमके खातिर ग्रहण नहीं किया गया है।

और फिर दलमें से उन्हीं लोगोंको ये पद दिये जायंगे, जो कि इन पर आसीन होकर इनके द्वारा प्राप्त कर्तव्यका पालन करनेके लिए सबसे अधिक योग्य होंगे।

और अन्तमें, असली कसौटी तो यह है कि उसी दलके सदस्योंको इन पदोंके लिए चुना जाय, जिसकी वजहसे प्रधानमंत्रियोंको अपना पद प्राप्त हुआ है। कोई भी प्रधानमंत्री अपने दलके ऊपर अपनी मर्जीसे किसी पुरुष या स्त्रीको एक क्षणके लिए भी नहीं लाद सकता। वह तो इसीलिए प्रमुख है कि योग्यता, व्यक्तियोंके ज्ञान तथा दूसरे जिन गुणोंसे नेतृत्व प्राप्त होता है उनके लिए उसे अपने दलका पूरा विश्वास प्राप्त है। १

२४

विजयकी कसौटी

मुझे अपनी यह राय जाहिर करनेमें कोई हिचकिचाहट नहीं हुई कि कांग्रेसके मंत्रियोंने अपने लिए जो वेतन लेनेका निश्चय किया है, वह हमारे — अर्थात् संसारके इस सबसे अधिक दरिद्र देशके — पैमानेको देखते हुए बहुत ही अधिक है, क्योंकि हमारा असली पैमाना तो वही होना चाहिये। प्रो० के० टी० शाहने जल्दी जल्दीमें एक टिप्पणी* तैयार करके मेरे पास भेजी है। उसमें उन्होंने बताया है कि हिन्दुस्तानकी वार्षिक औसत आमदनी ४ पौंड और इग्लैंडकी ५० पौंड है। दुर्भाग्य-

*तुलनात्मक आंकड़े

इसके साथ दुनियाके भिन्न भिन्न देशोंके कुछ मुख्य अधिकारियोंको दिये जानेवाले वार्षिक वेतन और भत्तोंकी यादी दी जा रही है। (ग्रेट ब्रिटेन . ८००० पौंड; अमेरिका १८००० पौंड; फ्रांस: २८००० पौंड; आस्ट्रेलिया: ८००० पौंड; कैनेडा: १०००० पौंड; भारत १३०००० पौंड।) इन आंकड़ो परसे पूरी स्थिति समझमें नहीं आ सकती, क्योंकि ये वेतन देशकी औसत आय पर कितने भाररूप हैं, यह बात ये आकड़े नहीं बता सकते। आज तकके निश्चित आंकड़े मैं नहीं दे सकता, लेकिन मुझे जो याद है वे लगभग निश्चित हैं; और उन परसे मैं यह कह सकता हू कि भिन्न भिन्न देशोंकी वार्षिक आयके नीचे दिये जा रहे आंकड़े बराबर हैं। वे इस प्रकार हैं:

ग्रेट ब्रिटेन	पौंड	५०	आस्ट्रेलिया	पौंड	७०
अमेरिका	,,	१००	कैनेडा	,,	७५
फ्रान्स	,,	४०	हिन्दुस्तान	,,	४ (आजके भावोंके अनुसार अधिकसे अधिक)

जापानकी आय भी हिन्दुस्तानकी अपेक्षा कहीं अधिक हैं।

(हरिजन, २१–८–'३७; पृ० २१८) — के० टी० शाह

से हमें अब भी कुछ समय अंग्रेजी विरासतका बोझ ढोना ही होगा अपनी शक्तिभर कोशिश करने पर भी आदर्श पैमाने पर हम आ नहीं पहुंच सकते। ये तनखाहें और भत्ते अब बदले नहीं जा सकते पर अब सवाल तो यह है कि क्या ये मंत्री, उनके सचिव और धारा-सभाओंके सदस्य खूब परिश्रम करके अपनेको इन ऊंची तनखाहोंके पात्र सिद्ध कर देंगे? क्या धारासभाओंके सदस्य भी अब अपना पूरा समय राष्ट्रकी सेवामें देंगे और अपनी सेवाओं तथा समयका ठीक ठीक हिसाब पेश करेंगे? कोई यह कल्पना करनेकी भूल न करे कि जैसा भी कुछ हम चाहते हैं या जैसा होना चाहिये वैसा सब हो गया है।

फिर केवल यही काफी नहीं होगा कि मंत्रीगण सादगीसे रहें और केवल खुद ही खूब काम करते रहें। उन्हें यह भी ध्यान रखना होगा कि उनके अधीन काम करनेवाले विभाग भी ठीक उसी तरह काम कर रहे हैं जैसा कि वे चाहते हैं। उदाहरणके लिए, अब जनताको न्याय जल्दी और कम खर्चमें मिल जाना चाहिये। आज तो वह अमीरोंके विलासकी वस्तु और जुएका खेल बन गया है। पुलिसका भय मिट जाना चाहिये और अब उसे जनताका मित्र बन जाना चाहिये। शिक्षामें भी ऐसी क्रांति होनी चाहिये कि वह साम्राज्यवादी लुटेरोंकी जरूरतोंकी नहीं, बल्कि गरीब ग्रामवासियोंकी जरूरतोंकी पूर्ति करने लगे।

अगर मंत्रियोंके बसकी बात होगी तो अब शीघ्र ही वे सब कैदी छोड़ दिये जायंगे, जिन्हें राजनीतिक अपराधोंके कारण — चाहे वे हिंसात्मक अपराध ही क्यों न हों — कैद कर लिया गया था। यह एक गंभीरतासे सोचनेकी बात है। क्या इसके मानी यह हैं कि अब सबको हिंसा करनेकी छूट मिल गई? हरगिज नहीं। यह कांग्रेसके अहिंसात्मक उद्देश्यके बिलकुल खिलाफ होगा। व्यक्तियोंकी हिंसासे जितनी अंग्रेज सरकारको — जिसे कांग्रेस उलटना चाहती है — घृणा है, उससे कहीं अधिक घृणा खुद कांग्रेसको है। कांग्रेस इस हिंसाका प्रतिकार सत्ता अर्थात् सुसंगठित हिंसा द्वारा नहीं परन्तु अहिंसा द्वारा करेगी। वह गुमराहोंको

मैत्रीभावसे समझा-बुझा कर और हर प्रकारकी हिंसाके खिलाफ जोरदार और विचारपूर्ण लोकमत तैयार करके उसे दूर करेगी। उसके उपाय निषेधात्मक है, दंडात्मक नही। दूसरे शब्दोमें, कांग्रेस सेनाबल पर भरोसा रखनेवाली पुलिसकी सहायतासे नही, बल्कि जनताकी सदिच्छा पर आधार रखनेवाले अपने नैतिक बलसे शासन करेगी। वह आज जो शासन करने जा रही है उसका आधार शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित किसी महान सत्ताकी दी हुई शक्ति नही बल्कि उस जनताकी सेवा है, जिसका वह अपने हर कार्यमें प्रतिनिधित्व करना चाहती है।

तमाम प्रकारके साहित्य पर लगाई गई बन्दी भी उठाई जा रही है। मेरा खयाल है कि इस साहित्यमें कुछ ऐसी भी पुस्तके होगी, जिनमें हिंसा, अश्लीलता तथा जातीय विद्वेषका प्रचार भी होगा। कांग्रेस राज्यके मानी हिंसा, अश्लीलता और जातीय विद्वेष फैलानेकी आजादी नही है। कांग्रेसका विश्वास है कि आपत्तिजनक साहित्य पर रोक लगानेमें सुशिक्षित नागरिक उसका पूरा साथ देंगे। मत्री भी अगर देखें कि उनके प्रान्तोंमें हिंसा, जातीय विद्वेष या अश्लीलता बढ रही है, तो ताजीरात हिन्द या ऐसे ही तमाम उपायोंका अवलम्बन लेनेसे पहले वे यह आशा करे और चाहे कि कांग्रेस कमेटियां उनकी तत्काल और पूरी सहायता करेंगी। वे कांग्रेस कार्यसमितिसे भी सहायता मागें। सचमुच कांग्रेसकी विजयकी कसौटी तो यही है कि वह किस हद तक पुलिस और सेनाको बेकार साबित कर देती है। और अगर वह ऐसा न कर सकी, अगर ऐसे प्रसंग आ ही जायें जब पुलिस और सेनाकी सहायता लेना अनिवार्य हो जाय, तो कहना चाहिये कि कांग्रेस बुरी तरह असफल हुई। इस मौजूदा विधानको तोड़नेका सबसे उत्तम उपाय यही है कि कांग्रेस सेनासे किसी भी प्रकारकी सहायता न ले और यह सिद्ध करके दिखा दे कि वह अच्छी तरह शासन कर सकती है। पुलिससे भी, जिसका मैत्रीभाव प्रकट करनेवाला कोई नया नामकरण किया जा सकता है, वह कमसे कम सहायता ले। १

२५

पद-ग्रहणका मेरा अर्थ

श्री शंकरराव देव लिखते हैं:

"'आदेशपत्र नहीं' शीर्षक आपकी टिप्पणी (ह० से०, २८–८–'३७) के दूसरे पैरेमें आपने लिखा है— 'कांग्रेसके चुनाव घोपणापत्र और प्रस्तावोंकी दृष्टिसे भी मैं मंत्रीपद ग्रहण करनेका एक खास अर्थ लेता हूं। इसलिए पद-ग्रहणके अपने इस अर्थको मैं जनता और मंत्रियोंके सामने न रखूं, तो वह ठीक नहीं होगा।' मैंने जहां तक आपके आशयको समझा है, पद-ग्रहणको आपने इसलिए आवश्यक समझा कि इससे रचनात्मक कार्यक्रममें सहायता मिलेगी तथा जनताकी सेवा करने तथा कांग्रेसकी शक्ति बढ़ानेका मौका मिलेगा। लेकिन मैं समझता हूं कि इस सम्बन्धमें आप अपना आशय जरा विस्तारसे समझा दें, तो ज्यादा अच्छा होगा।"

सही हो या गलत, लेकिन १९२० से कांग्रेसके जैसे विचार रखने वाले लाखों-करोड़ों हिन्दुस्तानियोंका यह दृढ़ मत रहा है कि अंग्रेजी हुकूमत हिन्दुस्तानके लिए कुल मिलाकर शापरूप ही सिद्ध हुई है। और इस हुकूमतके टिके रहनेका कारण अंग्रेजी फौजें तो हैं ही, पर साथ ही उसके लिए धारासभाएं, उपाधियां, अदालतें, शिक्षासंस्थाएं और अर्थ-नीति भी उतनी ही जिम्मेदार हैं। कांग्रेस अन्तमें इस नतीजे पर पहुंची कि हमें बन्दूकोंसे डरना नहीं चाहिये। इतना ही नहीं बल्कि जनताको उस सुसंगठित हिंसाका, अंग्रेजी बन्दूकें जिसका एक नग्न प्रतीक मात्र हैं, प्रतिकार अपनी सुसंगठित अहिंसा द्वारा करना चाहिये; और धारासभाओं आदिका प्रतिकार असहयोग द्वारा होना चाहिये। असहयोगका एक मजबूत और परिणामजनक विधायक पहलू भी था, जिसे लोग रचनात्मक कार्य कहते थे। जिस हद तक यह १९२० का कार्यक्रम सफल हुआ, उसी हद तक राष्ट्र भी सफल हुआ।

और यह नीति कभी बदली नहीं है। इसकी शर्तें भी कांग्रेसने उठाई नहीं हैं। बल्कि मेरा तो यह मत है कि तबसे जितने भी प्रस्ताव कांग्रेसने स्वीकार किये हैं, *वे सब इस मूलभूत नीतिके निषेधक* नहीं बल्कि पूरक हैं, जब तक उनकी तहमें वही १९२० वाली वृत्ति मौजूद है।

१९२० की नीतिका मुख्य आधार राष्ट्रकी सुसंगठित अहिंसा थी। अंग्रेजी शासन-प्रणाली पत्थरकी तरह जड़ ही नहीं बल्कि राक्षसी भी थी। परन्तु उसके पीछे काम करनेवाले स्त्री-पुरुष ऐसे नहीं थे। इसलिए हमारा अहिंसाका उद्देश्य तो यह था कि हम इस प्रणालीको चलानेवालोंका हृदय बदल दें, यह नहीं कि उनका नाश कर दें। फिर वे अपना हृदय चाहे खुशीसे बदलें या मजबूर होकर। अगर उन्होंने यह देखा — भले वे इसे न भी चाहते हों — कि हमारी अहिंसाके कारण उनकी बन्दूकें, तोपें और वे तमाम चीजें, जो उन्होंने अपनी सत्ताको मजबूत करनेके लिए निर्माण की थीं, बेकार हो गई हैं, तो वे सिवा इसके कर ही क्या सकते हैं कि अटल नियतिके सामने अपना सिर झुकाकर या तो यहांसे चले जायं या अगर रहना ही पसन्द करें तो हमारी शर्तों पर रहें; यानी हमारे मित्र बनकर हमसे सहयोग करें, न कि शासक बनकर हम पर अपनी इच्छाएं लादें।

अगर कांग्रेसवादी इस मनोवृत्तिको लेकर धारासभाओंमें गये हैं और इसी मनोवृत्तिसे उन्होंने पद-ग्रहण किया है, और अगर अंग्रेज शासक भी कांग्रेसी मंत्रि-मण्डलोंको अनिश्चित काल तक बरदाश्त करते रहें, तो समझना चाहिये कि कांग्रेस इस कानूनको तोड़ने और सम्पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके मार्गमें काफी हद तक सफल हो जायगी। क्योंकि अगर मेरी बताई शर्तों पर काफी अरसे तक मंत्रि-मंडल कायम रहें, तो निश्चय ही कांग्रेसकी शक्ति दिन दिन बढ़ती ही जायगी और अन्तमें जाकर वह ऐसी दुर्दमनीय हो जायगी कि उसके मार्गमें कोई खड़ा नहीं हो सकेगा। पर इस परिणतिकी सबसे पहली और अनिवार्य शर्त होगी

जनता द्वारा अहिंसाका स्वेच्छापूर्वक पालन। इसमें शामिल हैं समस्त जातियोंके बीच सम्पूर्ण मित्रता और सहयोग; अस्पृश्यताका सम्पूर्ण नाश; सवर्णों द्वारा अहंभाव और अभिमानका स्वेच्छासे त्याग; स्त्रियोंकी सामाजिक बन्धनोंसे मुक्ति; गांवोंमें रहनेवाले करोड़ों श्रमजीवियोंका उत्तरोत्तर कष्ट-निवारण; निःशुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा — आजकलकी तरह नाममात्रकी नहीं बल्कि सच्ची, जैसी कि मैंने बतानेका साहस किया है; प्रौढ़ शिक्षा द्वारा ऐसे अंधविश्वासोंका क्रमशः निर्मूलन, जो निश्चित रूपसे हानिकर सिद्ध हो चुके हैं; माध्यमिक शिक्षामें इस दृष्टिसे आमूल परिवर्तन कि वह मुट्ठीभर मध्यम वर्गकी नहीं बल्कि करोड़ों ग्रामवासियोंकी जरूरतोंकी पूर्ति कर सके; न्याय-विभागके अंदर भी ऐसा मौलिक परिवर्तन हो कि जिससे कम खर्चमें शुद्ध न्याय मिल सके; और जेलोंका सुधार-गृहोंमें परिवर्तन हो और वहां सजाके लिए नहीं बल्कि सम्पूर्ण शिक्षा पानेके लिए उन आदमियोंको भेजा जाय, जिनको अब तक हम गलतीसे अपराधी कहते आये हैं, परन्तु दरअसल जिनके दिमागमें तात्कालिक खराबी पैदा हो जाती है।

इस लम्बी-चौड़ी कार्य-योजनाको देखकर कोई डरे नहीं। अगर हम निश्चय कर लें, तो मेरी बताई हुई इस योजनाके हर हिस्से पर बगैर किसी रुकावटके हम आजसे ही अमल शुरू कर सकते हैं।

पद-ग्रहणकी सलाह देते समय तक मैंने शासन-विधानको ध्यानसे पढ़ा नहीं था। लेकिन उसके बादसे अध्यापक के० टी० शाहकी लिखी 'प्रान्तीय स्वायत्त शासन' पुस्तकका मैं ध्यानपूर्वक अध्ययन कर रहा हूं। यह पुस्तक नये विधानकी एक जोरदार निन्दा है, लेकिन कट्टर लोगोंकी दृष्टिसे वह एक सच्चा और न्यायशुद्ध निषेध है। किन्तु कांग्रेसके इन तीन महीनेके संयमने सारे वायुमंडलको बदल दिया है। मुझे ऐसी एक भी बात इस कानूनमें नजर नहीं आती, जो मंत्रियोंको सुझाये गये मेरे कार्यक्रमका आरंभ करनेमें बाधक हो। कानूनमें जिन विशेष अधिकारों और संरक्षणोंका उल्लेख है, उन पर अमल करनेका मौका तभी

आ सकता है जब कि देशमें हिंसा या अल्पसंख्यकों और तथाकथित बहुसंख्यक जातिके बीच संघर्ष — जो कि हिंसाका दूसरा नाम है — पैदा हो।

इस कानूनकी हरएक धारामें मुझे यह दिखाई देता है कि इसके बनानेवालोंके मनमें हिन्दुस्तानकी अपना शासन खुद करनेकी योग्यतामें घोर अविश्वास और अंग्रेजी हुकूमतको चिरस्थायी बनानेकी इच्छा है। परन्तु साथ ही इसके निर्माताओंने जनताको अंग्रेजोंके पक्षमें लानेके लिए एक साहसपूर्ण प्रयोग किया है और इसमें अगर वे सफल न हुए तो अंग्रेजी सत्ताको खतम करनेकी जनताकी इच्छाके वश होनेकी तैयारी भी उनकी है। इन लोगोंका दिल बदलनेकी दृष्टिसे ही कांग्रेसने धारा-सभाओंमें जाना स्वीकार किया है, और अगर वह अहिंसा, असहयोग और आत्मशुद्धिकी सच्ची भावनासे काम करती रही, तो मुझे निश्चय है कि वह जरूर सफल होगी। १

२६

आलोचनाओंका जवाब

ता० १७-७-'३७ के 'हरिजन' में छपे मेरे 'कांग्रेसी मंत्रि-मंडल' शीर्षक लेखकी ओर लोगोंका ध्यान आकर्षित हुआ है और उस पर आलोचनायें भी हुई हैं, जिनका उत्तर देना जरूरी है।

शराबबन्दी

कहा जाता है कि पूर्ण शराबबंदी अगर संभव भी हो, तो वह एकदम कैसे की जा सकती है? एकदमसे मेरा मतलब यह है कि ऐसी घोषणा तुरन्त कर दी जाय कि १४ जुलाई, १९३७ से — अर्थात् कांग्रेसके पहले मंत्रि-मंडलने जबसे सत्ता हाथमें ली उस दिनसे — लेकर तीन सालके अंदर अंदर शराब वगैरा मादक द्रव्योंकी पूर्ण बंदी हो जायगी। मेरा तो खयाल है कि शराबबंदी दो सालके अन्दर ही हो

कहते हैं कि गैर-कानूनी शराबकी भट्टियोंको रोकनेमें भारी खर्च होगा। पर इस पुकारमें अगर दंभ नहीं है तो विचारकी कमी जरूर है। हिन्दुस्तान अमेरिका तो है नहीं। अमेरिकाका उदाहरण प्रोत्साहन देनेके बजाय शायद हमारे मार्गमें रोड़े अटकायेगा। अमेरिकामें शराब पीना शरमकी बात नहीं है। वहां तो यह एक तरहका फैशन है। बेशक, उन अल्पसंख्यक लोगोंको धन्य है, जिन्होंने केवल अपने नैतिक बलसे शराबबंदीके कानूनको मंजूर करवा लिया, फिर वह कितना ही अल्प-जीवी क्यों न रहा हो। मैं उस प्रयोगको असफल नहीं समझता। सम्भव है, इस अनुभवसे लाभ उठाकर अमेरिका किसी दिन और भी अधिक उत्साहसे अपने यहां शराबबंदी करनेमें सफल हो जाय। मैं इस सम्बन्धमें निराश नहीं हुआ हूं। यह भी सम्भव है कि अगर हिन्दुस्तानमें हम शराबबंदी करनेमें पहले सफल हो जायं, तो अमेरिकाका मार्ग अधिक सरल हो जाय और वह इससे जल्दी सफल हो। संसारके किसी भी देशमें शराबबंदी करना इतना आसान नहीं है जितना कि इस देशमें है, क्योंकि यहां तो शराब पीनेवालोंकी संख्या बहुत थोड़ी है। शराब पीना यहां नीच काम समझा जाता है। और मेरा तो यह खयाल है कि यहां करोड़ों लोग ऐसे हैं, जिन्होंने शराबको कभी छुआ भी न होगा।

पर गैर-कानूनी शराब बनानेके गुनाहको रोकनेके लिए अन्य गुनाहोंको रोकने पर जो खर्च होता है, उसकी अपेक्षा अधिक खर्चकी जरूरत ही क्यों होनी चाहिये? गैर-कानूनी शराब बनाने पर मैं तो कड़ी सजा लगा दूं और बेफिक्र हो जाऊं, क्योंकि चोरीकी तरह यह अपराध भी कुछ अंशमें तो कल्पान्त तक जारी रहेगा ही। मैं इस बातकी खोज करनेके लिए कोई पुलिस-दल तैनात नहीं करूंगा कि कहीं गैर-कानूनी शराबकी भट्टियां तो नहीं हैं। मैं तो सिर्फ यह घोषित कर दूंगा कि जो भी आदमी शराब पिया हुआ पाया जायगा उसे सख्त सजा दी जायगी, चाहे वह कानूनी अर्थमें सड़कों या अन्य सार्वजनिक

सकती है। किन्तु शासन-प्रबन्ध सम्बन्धी कठिनाइयोंकी जानकारी न होनेसे मैंने तीन साल बताये हैं। इस बंदीके कारण सरकारी आयमें जो कमी होगी, उसे मैं जरा भी महत्त्व नहीं देता। प्रथम श्रेणीके राष्ट्रीय महत्त्वके प्रश्नके विषयमें कांग्रेस यदि कीमतका खयाल करेगी, तो शराबबंदीमें सफलताकी आशा रखना उसके लिए व्यर्थ होगा।

यह याद रखना चाहिये कि शराब और नशीली चीजोंसे पैदा होनेवाली आय एक अत्यन्त पातक — नीचे गिरानेवाला — कर है। सच्चा कर तो वह है, जो करदाताको आवश्यक सेवाके रूपमें दस गुना बदला चुका दे। लेकिन आबकारीकी यह आय क्या करती है? वह लोगोंको अपने नैतिक, मानसिक और शारीरिक पतन तथा भ्रष्टताके लिए कर देनेको मजबूर करती है। वह कर ऐसे लोगों पर एक पत्थरकी तरह भारी बोझ-सा गिरता है, जो उसे सहनेकी सबसे कम शक्ति रखते हैं। और फिर यह आय उन कारखानों और खेतोंमें काम करनेवाले मजदूरोंसे होती है, जिनकी प्रतिनिधि होनेका कांग्रेस खास तौर पर दावा करती है।

आयकी यह हानि भी वास्तविक हानि नहीं है। क्योंकि अगर यह कर हट जाय, तो शराबी यानी करदाताकी कमाने और खर्च करनेकी शक्ति भी बढ़ जायगी। इसलिए शराबबंदीसे राष्ट्रको जो भारी लाभ होगा, उसके अलावा आर्थिक लाभ भी काफी होगा।

शराबबंदीको मैंने सबसे पहला स्थान इसलिए दिया है कि इसका परिणाम भी तत्काल दिखाई देगा। कांग्रेसने और खास करके बहनोंने इसके लिए अपना खून बहाया है। इस कार्यसे राष्ट्रकी प्रतिष्ठा इतनी बढ़ जायगी जितनी मेरे खयालसे किसी भी एक कार्यसे नहीं बढ़ सकती। और फिर बहुत संभव है कि इन छह प्रान्तोंका अनुकरण बाकीके पांच प्रान्त भी करें। उन मुस्लिम मंत्रियोंको भी, जो कांग्रेसवादी नहीं हैं, हिन्दुस्तानसे शराबके उठ जाने पर अधिक खुशी होगी, बजाय इसके कि यहां शराबखोरी बनी रहे।

कहते हैं कि गैर-कानूनी शराबकी भट्टियोंको रोकनेमें भारी खर्च होगा। पर इस प्रकारमें अगर दंभ नहीं है तो विचारकी कमी जरूर है। हिन्दुस्तान अमेरिका तो है नही। अमेरिकाका उदाहरण प्रोत्साहन देनेके बजाय शायद हमारे मार्गमें रोड़े अटकायेगा। अमेरिकामें शराब पीना धरमकी बात नही है। वहां तो यह एक तरहका फैशन है। बेशक, उन अल्पसंख्यक लोगोंको धन्य है, जिन्होंने केवल अपने नैतिक बलसे शराबबंदीके कानूनको मंजूर करवा लिया, फिर वह कितना ही अल्प-जीवी क्यों न रहा हो। मैं उस प्रयोगको असफल नहीं समझता। सम्भव है, इस अनुभवसे लाभ उठाकर अमेरिका किसी दिन और भी अधिक उत्साहसे अपने यहां शराबबंदी करनेमें सफल हो जाय। मैं इस सम्बन्धमें निराश नहीं हुआ हूं। यह भी सम्भव है कि अगर हिन्दुस्तानमें हम शराबबंदी करनेमें पहले सफल हो जायं, तो अमेरिकाका मार्ग अधिक सरल हो जाय और वह इससे जल्दी सफल हो। संसारके किसी भी देशमें शराबबंदी करना इतना आसान नहीं है जितना कि इस देशमें है, क्योंकि यहा तो शराब पीनेवालोंकी संख्या बहुत थोड़ी है। शराब पीना यहां नीच काम समझा जाता है। और मेरा तो यह खयाल है कि यहां करोड़ों लोग ऐसे हैं, जिन्होंने शराबको कभी छुआ भी न होगा।

पर गैर-कानूनी शराब बनानेके गुनाहको रोकनेके लिए अन्य गुनाहोंको रोकने पर जो खर्च होता है, उसकी अपेक्षा अधिक खर्चकी जरूरत ही क्यों होनी चाहिये? गैर-कानूनी शराब बनाने पर मैं तो कड़ी सजा लगा दूं और बेफिक्र हो जाऊं, क्योंकि चोरीकी तरह यह अपराध भी कुछ अंशमें तो कल्पान्त तक जारी रहेगा ही। मैं इस बातकी खोज करनेके लिए कोई पुलिस-दल तैनात नहीं करूंगा कि कहीं गैर-कानूनी शराबकी भट्टियां तो नही हैं। मैं तो सिर्फ यह घोषित कर दूंगा कि जो भी आदमी शराब पिया हुआ पाया जायगा उसे सख्त सजा दी जायगी, चाहे वह कानूनी अर्थमें सड़कों या अन्य सार्वजनिक

स्थानों पर नशेमें बेहोश और अस्तव्यस्त हालतमें न भी पाया जाय। सजा या तो भारी जुर्मानेके रूपमें होगी या तब तकके लिए अनिश्चित कैदके रूपमें होगी, जब तक अपराधी अपने आपको रिहाईका पात्र सिद्ध न कर दे।

पर यह तो निषेधात्मक उपाय हुआ। इसके सिवा स्वयंसेवकों दल, जिनमें कि खासकर बहनें होंगी, मजदूर-बस्तियोंमें काम करें जिन्हें शराबकी आदत है उनके पास वे जायंगी और इस लतको छो देनेके लिए उन्हें समझायेंगी। मजदूरोंसे काम लेनेवालोंसे कानून अपेक्षा रखेगा कि वे अपने यहां काम करनेवालोंके लिए ऐसी सुविध कर दें, जिससे मजदूरोंको सस्ती और स्वास्थ्यवर्धक खाने-पीनेकी चं मिलें तथा वाचनालय और मनोरंजनके लिए ऐसे कमरे भी मिलें, ज पर मजदूर थोड़ी देर जाकर आराम, ज्ञान और निर्दोष मनोविनो साधन भी पा सकें।

इस प्रकार शराबबन्दीके मानी केवल शराबकी दुकानें बन्द देना ही नहीं है; उसके मानी हैं राष्ट्रमें एक प्रकारके प्रौढ़-शिक्षण प्रारम्भ।

शराबबन्दीका प्रारम्भ इसी बातसे हो कि नई दुकानोंके लिए परवाने जारी करना कतई बन्द कर दिया जाय और साथ ही शराबकी ऐसी दुकानें भी बन्द कर दी जायं, जिनसे जनताको कष्ट और असुविधा होनेका भय हो। लेकिन मैं यह ठीक ठीक नहीं कह सकता कि दुकानदारोंको बगैर भारी मुआवजा दिये यह कहां तक संभव है। जो भी हो, जिनके परवाने खतम हो गये हों उन्हें फिरसे देना तो जरूर रोक दिया जाय। हर हालतमें एक भी नई दुकान न खुलने पाये। जहां तक आयके घाटेका सवाल है हमें उसका क्षणभर भी खयाल किये बिना कानूनके अनुसार जितना हम कर सकें उतना तुरन्त कर डालना चाहिये।

परन्तु पूर्ण शराबबन्दीका अर्थ और उसकी मर्यादा क्या है? पूर्ण शराबबन्दीका अर्थ है तमाम नशीले पेयों और मादक वस्तुओंकी बिक्री पर पूरी रोक। अलबत्ता सिर्फ यह हो सकता है कि ये चीजें सिर्फ उन अधिकृत डॉक्टर, वैद्य अथवा हकीमकी सिफारिश पर सरकारी दुकानसे मिलें, जो कि इसी कामके लिए खोली जायगी। जो यूरोपियन शराबके बिना रह ही नहीं सकते अथवा रहना नहीं चाहते, सिर्फ उन्हींके लिए विदेशी शराबें परिमित मात्रामें मगाई जा सकती हैं। पर ये शराबें अधिकृत लोगों द्वारा ही खास खास स्थानों पर बेची जायं। भोजनालयों और जलपान-गृहोंमें मादक पेयोंकी बिक्री कतई रोक दी जाये।

किसान

परन्तु किसानोंको राहत देनेके बारेमें हम क्या करेंगे? वे तो आज अत्यधिक करों, कष्टदायी महसूल, गैर-कानूनी लागों, निरक्षरता, अधविश्वास, दरिद्रताले पैदा होनेवाले अनेक रोगों और कभी न अदा हो सकनेवाले भारी कर्जेके भारके नीचे पिस रहे हैं। निश्चय ही आर्थिक सकट और जनसख्याकी दृष्टिसे उनका सवाल सबसे पहले हाथमें लिया जाना चाहिये। पर किसानोंको राहत देनेका यह कार्यक्रम काफी लम्बा-चौडा है और ऐसा है, जिसे हम आज ही एकदम पूराका पूरा हाथमें नहीं ले सकते। हां, उसे लेना जरूर होगा। क्योंकि कोई काग्रेसी मन्त्रि-मडल, जो ऐसे सार्वत्रिक महत्वके प्रश्नको हाथमें नहीं लेगा, दस दिन भी टिक नहीं सकेगा। हर काग्रेसवादीको इसमें और कुछ नहीं तो कमसे कम सैद्धांतिक दृष्टिसे ही हार्दिक रस है। जब काग्रेसका जन्म ही इस उद्देश्यसे हुआ है तब तो हर काग्रेसवादीको यह एक विरासत हो गई है। इसलिए यह भय तो हो ही नहीं सकता कि इस प्रश्नकी कभी उपेक्षा की जा सकती है। परन्तु मुझे भय है कि शराबबंदीके विषयमें यही बात नहीं कही जा सकती। उसे तो अभी अभी १९२० में काग्रेसके कार्यक्रममें शामिल किया गया है। इसलिए मेरा तो यही खयाल है कि चूंकि अब काग्रेसके हाथोंमें सत्ता आ गई है, इस-

लिए उसका अधिकार-ग्रहण तभी सार्थक कहा जायगा जब वह इ
महानाशक बुराईके साथ साहस और कठोरतासे युद्ध छेड़ देगी।

शिक्षा

शिक्षाका सवाल दुर्भाग्यवश शराबके साथ जोड़ दिया गया है।
शराबकी आय यदि बंद हो जाय, तो शिक्षाका क्या होगा? निस्सं
नये कर लगानेके और भी तरीके हो सकते हैं। अध्यापक शाह औ
खंबाताने यह दिखाया भी है कि इस गरीब देशमें भी कुछ नये क
लगानेकी गुंजाइश है। संपत्ति पर हमारे यहां अभी काफी कर न
लगा है। संसारके अन्य देशोंमें कुछ भी हो, यहां तो व्यक्तियोंके पा
अत्यधिक संपत्तिका होना भारतकी मानवताके प्रति एक अपराध
समझा जाना चाहिये। अतः संपत्तिकी एक निश्चित मर्यादाके बा
जितना भी कर उस पर लगाया जाय उतना थोड़ा ही होगा। जहां
तक मैं जानता हूं, इंग्लैंडमें व्यक्तिकी आय एक निश्चित संख्या त
पहुंच जानेके बाद उससे आयका ७० प्रतिशत कर लिया जाता है।
कोई कारण नहीं कि हिन्दुस्तानमें हम इससे भी काफी अधिक कर क्यों
न लगायें? मृत्युकर भी क्यों न लगाया जाय? करोड़पतियोंके लड़के
जब बालिग होने पर भी विरासतमें मिली संपत्तिका उपभोग करते हैं
तो इस विरासतके कारण ही उन्हें नुकसान उठाना पड़ता है। इस
तरह राष्ट्रकी दुगुनी हानि होती है। जो विरासत वास्तवमें राष्ट्रकी
होनी चाहिये वह राष्ट्रको नहीं मिलती; दूसरे, राष्ट्रको इस दृष्टिसे

दुसरोंका महसूस किया है कि शिक्षाको हमें स्वावलम्बी बना देना चाहिये। फिर भले ही लोग मुझे यह कहें कि मेरे भीतर रचनात्मक कार्यकी कोई योग्यता नहीं है।

मंत्रि-मंडलोंके पक्षमें उनकी योजनाओंको सफल बनानेके लिए सिविल सर्विसकी सुसंगठित बुद्धि-चातुरी और संगठन-शक्ति भी है। सिविल सर्विसके अधिकारियोंको तो वह कला याद है जिसकी सहायतासे ऐसी ऐसी शासन-नीतियाँ भी वे अमलमें ले आते हैं, जो उनके लिए सरको गवर्नर या वाइसरॉय बनाकर दे देते हैं। मंत्री एक निश्चित और विचारपूर्ण नीति निश्चित कर दें। फिर उस पर अमल करना सिविल सर्विसका काम रहेगा। उनकी ओरसे जो वचन दिये गये हैं, उनका पालन करके सिविल सर्विसके अधिकारी उन लोगोंके प्रति उऋण हों, जिनका वे नमक खा रहे हैं।

जेलें

जेलोंको दण्डगृहोंके बजाय सुधार-गृह बना देनेवाली मेरी सलाह पर बहुत टीका-टिप्पणी नहीं हुई है। केवल एक टीका मैंने देखी है। अगर जेलें बेचने योग्य चीजें बनाने लगेंगी, तो वे बाजारके साथ अन्यायमूलक प्रतिस्पर्धामें पड़ जायगी। परन्तु इस कथनमें कोई सार नहीं है। इसकी कल्पना मुझे १९२२में ही थी, जब मैं यरवडा जेलमें कैद था। अपनी इस योजना पर मैंने तत्कालीन होम-मेम्बर, जेलोंके तत्कालीन इन्स्पेक्टर जनरल और दो सुपरिन्टेन्डेन्टोंके साथ भी, जिनके मातहत उन दिनों क्रमशः यरवडा जेल रही, बातचीत की थी। उनमें से एकने भी उस योजनामें कोई दोष नहीं बताया था। तत्कालीन होम-मेम्बरको उसमें विशेष दिलचस्पी हो गई थी। उन्होंने मुझसे अपनी योजना लिखकर देनेको भी कहा था। शायद उस पर वे गवर्नरकी मंजूरी भी लेना चाहते थे। परन्तु गवर्नर महोदय एक ऐसे कैदीकी बात सुनना कैसे गवारा कर सकते थे, जो कि जेलके ही प्रबन्धके विषयमें सूचनायें दे रहा हो? इसलिए मेरी वह योजना यों ही दाखिल-

दफ्तर कर दी गई। पर उसके कर्ताको तो आज भी उसमें उतना ही
विश्वास है जितना १९२२ में था, जब कि वह पहले-पहल बनाई ग
थी। मेरी योजना नीचे दी जाती है :

जेलोंके वे तमाम उद्योग बन्द कर दिये जायं, जिनसे आवश्य
आय न होती हो, और तमाम जेलोंको हाथ-कताई और हाथ-बुनाई
काम करनेवाली संस्थाओंमें बदल दिया जाय। जहां संभव हो व
कपासकी खेतीकी भी शुरुआत की जा सकती है; और ठेठ उस
कपड़े बनाने तककी सब क्रियायें उनमें हों। मैं यह सूचित करना चाह
हूं कि इस कार्यके लिए आवश्यक हर प्रकारका बुद्धि-कौशल जेलो
पहलेसे ही मौजूद है। केवल योजक बुद्धि और इच्छाकी जरूरत है
कैदियोंको अपराधी समझनेके बजाय उन्हें एक प्रकारके अपंग सम
जाय। वार्डर उनके लिए कोई भयंकर जीवके समान न हों। जेलो
अधिकारियोंको भी कैदियोंके मित्र और शिक्षक बन जाना चाहिये।
एक शर्त जरूर अनिवार्य हो कि जेलोंमें जो खादी बने उस सबको ला
मूल्य पर राज्य खरीद ले। राज्यकी जरूरतोंके बाद जो खादी ब
उसे कुछ अधिक कीमत पर जनतामें बेच दिया जाय, जिससे उ
नफेमें से एक बिक्री-भंडारका खर्च निकल जाय। इस सूचनाके स्वीका
जेलोंका गांवोंके साथ निकट सम्बन्ध स्थापित हो जायगा और
गांवोंमें खादीका संदेश पहुंचानेका काम करेंगी। साथ ही, जेलों
हुए कैदी राज्यके आदर्श नागरिक भी बन सकते हैं।

द्वारा ही क्यों न हो रहा हो। इसलिए मंत्रि-मण्डल अपने शासित क्षेत्रमें प्रांतीय प्रजाके साथ होनेवाले अन्यायोंके खिलाफ जब शिकायत करे, तो गवर्नरोंका यह कर्तव्य होगा कि वे अपने मन्त्रियोंका समर्थन करें। मन्त्रि-मंडल सावधानीसे काम ले, तो मैं निश्चयके साथ कह सकता हूं कि गरीब ग्रामीणोंके अपने लिए जरूरी नमक ले लेनेमें केन्द्रीय सरकार द्वारा कोई अनुचित रुकावट नहीं डाली जायगी। कमसे कम मुझे तो ऐसे अनुचित हस्तक्षेपका जरा भी भय नहीं है।

अन्तमें मैं इतना ही जोड़ना चाहता हूं कि दारूबन्दी, शिक्षा और जेलोंके विषयमें मैंने जो कुछ कहा है वह इसीलिए कहा है कि कांग्रेस-के मन्त्रीगण और इस विषयमें रस लेनेवाले प्रजाजन इस पर विचार करें। जो विचार दीर्घ कालसे मेरे मनमें बने रहे हैं, उन्हें — भले वे आलोचकोंको कितने ही विचित्र, काल्पनिक या अव्यावहारिक क्यों न लगें — जनतासे छिपाये रखना उचित नहीं होगा। १

२७

कांग्रेसी मंत्रियोंकी चौहरी जिम्मेदारी

कांग्रेसी मंत्रियोंकी चौहरी जिम्मेदारी है। व्यक्तिगत रूपमें तो मंत्री असलमें अपने मतदाताओंके प्रति जिम्मेदार है। अगर उसे यह विश्वास हो जाय कि वह अब उनका विश्वासपात्र नहीं रहा है या जिन विचारोंके लिए वह चुना गया था वे उसने बदल दिये हैं, तो वह इस्तीफा दे देगा। सामूहिक रूपसे मंत्री धारासभाके सदस्योंके बहु-मतके प्रति जिम्मेदार हैं, जो चाहें तो अविश्वासके प्रस्ताव या ऐसे ही किसी उपायसे उन्हें पदच्युत कर सकते हैं। लेकिन कांग्रेसी मंत्री अपने पद और जिम्मेदारीके लिए कांग्रेसकी प्रान्तीय समिति और महा-समितिके प्रति भी जिम्मेदार हैं। जब तक ये सारीकी सारी चारों

संस्थाएं मिलकर काम करती रहती हैं, तब तक मंत्रियोंको अपने कर्तव्य-पालनमें आसानी रहती है।

लेकिन महासमितिकी हालकी बैठकसे मालूम हुआ कि उसके कुछ सदस्य कांग्रेसी मंत्रि-मंडलोंसे और खासकर मद्रासके प्रधानमंत्री श्री राजगोपालाचार्यसे बिलकुल सहमत नहीं थे। स्वस्थ, पूरी जानकारीसे पूर्ण और संतुलित आलोचना सार्वजनिक जीवनका प्राण है। एक सर्वथा प्रजातन्त्रवादी मंत्री भी जनताकी सतत निगरानीके बिना पथसे विचलित हो सकता है। लेकिन कांग्रेसी मंत्रि-मंडलोंकी आलोचना करनेवाला महासमितिका प्रस्ताव और उससे भी अधिक उस पर हुए भाषण सीमासे बाहर थे। आलोचकोंने तथ्योंको जाननेकी परवाह नहीं की। श्री राजगोपालाचार्यका उत्तर उनके सामने नहीं था। वे जानते थे कि श्री राजगोपालाचार्य वहां आने और अपने आलोचकोंको उत्तर देनेके लिए बहुत उत्सुक थे, लेकिन गंभीर बीमारीके कारण वे आ नहीं सके। अपने प्रतिनिधिके प्रति आलोचकोंकी यह जिम्मेदारी थी कि वे इस प्रस्ताव पर विचार करना स्थगित कर देते। इस सम्बन्धमें पं० जवाहरलालने अपने विस्तृत वक्तव्यमें जो कुछ कहा है, उन्हें चाहिये कि वे उसका अध्ययन करें और उसे हृदयंगम करें। मेरा विश्वास है कि आलोचकोंने अपनी आलोचनाओंमें सत्य और अहिंसाकी सीमाको छोड़ दिया था। अगर उन्होंने महासमितिको अपने पक्षमें कर लिया होता, तो कमसे कम मद्रासके मंत्रियोंको तो — जाहिरा तौर पर धारासभाके सदस्योंके बहुमतका पूर्ण विश्वास प्राप्त होते हुए भी — इस्तीफा दे देना पड़ता। निश्चय ही यह कोई वांछनीय परिणाम न होता।

मेरी रायमें इससे भी कहीं अधिक हानिकर मैसूरवाला प्रस्ताव था और दुःखकी बात तो यह है कि किसीके जरा भी सत्य प्रकट किये बिना वह पास हो गया। मैं मैसूरकी हिमायत नहीं करता। वहां बहुतसी बातें ऐसी हैं, जिनमें मैं चाहता हूं कि महाराज सुधार करें। लेकिन कांग्रेसकी यह नीति है कि अपने विरोधीको भी उचित मौका दिया

जाय। मेरी रायमें मैसूरवाला प्रस्ताव (देशी राज्योंमें) हस्तक्षेप न करनेके प्रस्तावके खिलाफ था। जहां तक मैं जानता हूं, वह प्रस्ताव कभी रद नहीं हुआ। वस्तुस्थितिके लिहाजसे महासमितिके सामने मैसूरका मामला नहीं था। वह एक पूरी रियासतके रूपमें उस पर विचार करने नहीं जा रही थी। वह सिर्फ दमन-नीति पर विचार कर रही थी। प्रस्तावमें घटनाओंकी सही स्थितिका उल्लेख नहीं था, भाषण गुस्सेसे भरे हुए थे और उनमें मामलेके तथ्योंका विचार नहीं किया गया था। अगर महासमितिका ऐसा ही खयाल था, तो अपना फैसला सुनानेसे पहले उसे तथ्य मालूम करनेके लिए ज्यादा नहीं तो कमसे कम एक ही आदमीकी एक कमेटी नियुक्त करनी चाहिये थी। अगर उसे सत्य और अहिंसाका जरा भी खयाल है, तो ऐसे मामलोंमें वह कमसे कम जो कर सकती है वह यह है कि पहले वह कार्य-समितिको उन पर अपना निर्णय घोषित करने दे और बादमें अगर जरूरत हो तो न्यायाधीशके रूपमें उसकी जांच करे। अपनी बातको सिद्ध करनेके लिए मैंने जान-बूझकर दोनों प्रस्तावोंके सम्बन्धमें तफसीलमें जानेसे अपनेको रोका है। मैं अपनी परिमित शक्तिको बचा रहा हूं और साथ ही इस मामलेको महासमितिके, जिसने कि १९२० से ऐसा अपूर्व महत्त्व प्राप्त किया है और जो पद-ग्रहणके प्रस्तावके बाद दुगुना हो गया है, सदस्योंकी दूरदर्शिता पर छोड़ता हूं। १

२८

शराबबन्दी

शराबबन्दी और सरकारी आय

यों शराबबन्दीकी तारीफ तो हमेशा होती ही रही है। लेकिन सन् १९२० में उसे कांग्रेसके रचनात्मक कार्यका एक मुख्य अंग बनाया गया। इसलिए देशके किसी भी हिस्सेमें कांग्रेसके हाथमें सत्ता आते ही वह शराब वगैरा मादक वस्तुओंकी पूरी बन्दी नहीं करती तो कैसे काम चलता? कांग्रेसी शासनके छह प्रान्तोंमें मंत्रियोंको करीब ग्यारह करोड़ रुपयेका घाटा सहनेकी हिम्मत करनी पड़ी है। परन्तु कार्य-समितिने अपने वचनकी पूर्ति तथा शराब और अन्य नशीली चीजोंके आदी बने हुए लोगोंके नैतिक और भौतिक कल्याणकी दृष्टिसे यह खतरा भी उठानेका साहस किया है। . . .

मैं जानता हूं कि बहुतसे लोगोंको यह सन्देह है कि शराबकी पूरी बन्दी कैसे होगी। उनका खयाल है कि उनके लिए आयके लोभको रोकना बड़ा कठिन होगा। उनकी दलील यह है कि नशेबाज लोग तो किसी भी प्रकारसे शराब या मादक वस्तुएं प्राप्त कर ही लेंगे; और जब मंत्री लोग देखेंगे कि इस बन्दीके मानी तो केवल सरकारी आयकी कुरबानी ही है — इससे मादक वस्तुओंकी खपतमें, भले ही वह गैर-कानूनी हो, कोई उल्लेखनीय कमी नहीं हुई है — तो वे फिर पापकी कमाई करनेके मोहमें फंस जायेंगे और वह हालत आजसे भी बुरी होगी। . . .

अब सवाल यह है कि शराबसे होनेवाली आयका घाटा, जो कुछ प्रान्तोंमें आयका एक-तिहाई हिस्सा है, किस प्रकार पूरा किया जाय? मैंने तो बगैर किसी हिचकिचाहटके यह सुझाया है कि हम शिक्षा पर किये जानेवाले खर्चमें कमी कर दें, क्योंकि अकसर इसकी पूर्ति आव-

कारोंकी आयसे ही की जाती है। मैं अब भी यह कहता हूं कि शिक्षा स्वावलम्बी बनाई जा सकती है। . . . यह जरूर है कि यदि हम मान लें कि शिक्षा स्वावलम्बी हो सकती है, तो भी वह एक दिनमें नही हो जायगी। मौजूदा भार और जिम्मेदारियोंको तो निबाहना ही होगा। इसलिए आयके नये साधन ढूंढने होंगे। मृत्यु, तम्बाकू— जिसमें बीडी भी शामिल है—आदि पर कर लगानेकी बात कुछ लोगोंने सुझाई है। अगर यह तत्काल असम्भव हो, या ऐसा समझा जाय, तो फिलहाल खर्चकी पूर्तिके लिए थोड़ी मीयादवाले कर्ज निकाले जा सकते हैं। पर अगर यह भी सम्भव न हो, तो केन्द्रीय सरकारसे प्रार्थना की जा सकती है कि वह अपने फौजी खर्चमें कमी करके उस बचतमें से हर प्रान्तको उसके अनुपातमें सहायता दे। और केन्द्रीय सरकार इस प्रार्थनाको कभी अस्वीकार नही कर सकेगी, खास तौर पर जब प्रान्तीय सरकारें यह सिद्ध कर देंगी कि कमसे कम उनकी आन्तरिक सुरक्षा और शान्तिके लिए उन्हें फौजकी जरूरत नही है। १

शराबबंदी और बजट

हम देखते हैं कि मंत्री लोग शराबबन्दीका कार्यक्रम पूरे बनिये-पनकी भावनासे बना रहे हैं। उससे होनेवाले घाटेका उन्हें ध्यान रहता है। मुझे आश्चर्य होता है कि अगर सभी शराबी और अफीमची एकाएक शराब और अफीमका परित्याग कर दें, तो मंत्री क्या करेंगे? शायद यह उत्तर दिया जाय कि उस हालतमें कुछ-न-कुछ प्रबन्ध तो वे करेंगे ही। लेकिन स्वेच्छापूर्वक वे ऐसा क्यों नही कर डालते? अच्छाई तो निस्सन्देह किसी कामको स्वेच्छापूर्वक करनेमें ही है, मजबूर होकर करनेमें नहीं। यह याद रखना चाहिये कि भूकम्पके कारण प्रान्तकी सालाना आमदनीसे अधिक नुकसान हो जाने पर भी बिहार-सरकारका काम ठप नही हो गया था। और जब अकालों तथा बाढ़ोंसे लोगोंकी तबाही और बरबादी होनेके कारण सरकारी आमदनीमें कमी ५.

है, तब हिन्दुस्तान भरकी सरकारें क्या करती हैं? मैं तो यह मानता हूं कि कांग्रेसी सरकारें आयके खातिर शराबबन्दीके काममें देरी करके अपनी प्रतिज्ञाका शब्दोंमें चाहे भंग न कर रही हों, परन्तु उसकी भावनाका जरूर भंग कर रही हैं।

नये कर लगाकर वे आय प्राप्त कर सकती हैं और इसके लिए उन्हें ईमानदारीके साथ कोशिश भी करनी चाहिये। शराबखोरी शहरोंमें बहुत ज्यादा है, अतः इन क्षेत्रोंमें वे नये कर लगा सकती हैं। शराबबन्दीसे उन लोगोंको प्रत्यक्ष मदद मिलती है, जिनके कारखाने होते हैं और उनमें मजदूर काम करते हैं। ऐसे लोग यानी कारखानोंके मालिक निश्चय ही शराबबन्दीसे होनेवाली आमदनीकी कमी पूरी कर सकते हैं। अहमदाबादमें कुछ ही महीने शराबबन्दीका जो काम हुआ है, उससे मालिक-मजदूर दोनोंको आर्थिक लाभ हुआ है। इसलिए कोई वजह नहीं कि इस बहुमूल्य सेवाके लिए मालिकोंसे पैसा क्यों न वसूल किया जाय? इसी तरह आमदनीके और भी अनेक साधन आसानीसे ढूंढ़े जा सकते हैं।

मैंने तो यह सुझानेमें भी कोई पसोपेश नहीं किया कि जहां अतिरिक्त आयकी कोई अमली सूरत न हो, वहां भारत सरकारसे सहायता या कमसे कम बिना ब्याज कर्ज देनेकी मांग की जाय। २

शराबबंदी और अर्थमंत्री

बम्बईमें शराबबंदी होनेसे सरकारकी आय बहुत घट जायगी। लेकिन अर्थमंत्रीको तो अपना आय-व्यय संतुलित करना ही होगा। इसके लिए उन्हें आयके दूसरे जरिये खोजने पड़ेंगे और नये कर लगाने पड़ेंगे। अतः जिन्हें यह बोझ बरदाश्त करना पड़े, उन्हें इसकी शिकायत नहीं करनी चाहिये। यह सब कोई जानते हैं कि कर कितने ही उचित क्यों न हों, किन्तु कोई उन्हें पसन्द नहीं करता। पर मुझे मालूम हुआ है कि अर्थमंत्रीने इस सम्बन्धकी सभी उचित आपत्तियोंका निराकरण कर दिया है। अतः जिन लोगों पर यह बोझ पड़े, वे इस महान प्रयोगमें भागीदार होनेका विशेष अधिकार प्राप्त करनेका गर्व अनुभव

क्यों न करें? अगर सभी नागरिकोंके आनन्दके बीच शराबबन्दीकी शुरुआत हो, तो निश्चय ही वह दिन बम्बईके लिए बड़े गौरवका होगा। याद रहे कि यह शराबबंदी दूसरोंकी लादी हुई नहीं है। इसका आरंभ तो वे सरकारें कर रही हैं, जो जनताके प्रति जिम्मेदार हैं। १९२० से ही हमारे राष्ट्रीय कार्यक्रमका यह एक अंग रहा है। इसलिए २० वर्ष पहले राष्ट्रने निश्चित रूपसे जो इच्छा प्रकट की थी, उसकी ही अवसर मिलने पर यह पूर्ति हो रही है। ३

मंत्री और शराबबंदी

मन्त्रियोंका कर्तव्य स्पष्ट है। उन्हें अपने कार्यक्रम पर अबाधित रूपसे अमल करते चले जाना चाहिये, बशर्ते कि उनकी इसमें श्रद्धा हो। *मद्य-निषेध कांग्रेसके कार्यक्रमका एक सबसे बड़ा नैतिक सुधार है।* पहलेकी सरकारोंने भी इसका मौखिक समर्थन किया था, परन्तु गैर-जिम्मेदार होनेके कारण न तो उनमें ऐसा करनेका साहस था और न उनके भीतर उस पर अमल करनेकी प्रेरणा ही थी। वे उस आयको छोड़नेके लिए तैयार नहीं थीं, जिसे वे बिना किसी प्रयासके प्राप्त कर सकती थीं। इसके कलंकित स्रोतकी जांच करनेके लिए वे ठहर नहीं सकती थीं।

कांग्रेसी सरकारोंके पीछे लोकमत है। कार्यसमितिने बहुत सोच-विचारके बाद शराबबन्दीके सम्बन्धमें अपना आदेश निकाला है। इस पर अमल करनेका तरीका स्वाभाविक तौर पर मन्त्रि-मण्डलों पर छोड़ दिया गया है। बम्बईके मंत्री साहसपूर्वक पूरी सफलताकी आशासे अपने कार्यक्रमको अमलमें लानेका प्रयत्न कर रहे हैं। उनकी स्थिति बहुत कठिन है। किसी न किसी दिन उन्हें बम्बईका प्रश्न हाथमें लेना ही था। तब भी मन्त्रियोंको उन्हीं निहित स्वार्थोंकी तरफसे, जिन्हें शराबबन्दीकी नीतिसे सीधी हानि पहुंचनेका डर था, होनेवाले विरोधका सामना करना पड़ता, जैसा कि आज हो रहा है। कोई भी कांग्रेसजन मन्त्रियोंको परेशान नहीं कर सकता। ४

है, तब हिन्दुस्तान भरकी सरकारें क्या करती हैं? मैं तो यह मानता हूं कि कांग्रेसी सरकारें आयके खातिर शराबबन्दीके काममें देरी करके अपनी प्रतिज्ञाका शब्दोंमें चाहे भंग न कर रही हों, परन्तु उसकी भावनाका जरूर भंग कर रही हैं।

नये कर लगाकर वे आय प्राप्त कर सकती हैं और इसके लिए उन्हें ईमानदारीके साथ कोशिश भी करनी चाहिये। शराबखोरी शहरोंमें बहुत ज्यादा है, अतः इन क्षेत्रोंमें वे नये कर लगा सकती हैं। शराब-बन्दीसे उन लोगोंको प्रत्यक्ष मदद मिलती है, जिनके कारखाने होते हैं और उनमें मजदूर काम करते हैं। ऐसे लोग यानी कारखानोंके मालिक निश्चय ही शराबबन्दीसे होनेवाली आमदनीकी कमी पूरी कर सकते हैं। अहमदाबादमें कुछ ही महीने शराबबन्दीका जो काम हुआ है, उससे मालिक-मजदूर दोनोंको आर्थिक लाभ हुआ है। इसलिए कोई वजह नहीं कि इस बहुमूल्य सेवाके लिए मालिकोंसे पैसा क्यों न वसूल किया जाय? इसी तरह आमदनीके और भी अनेक साधन आसानीसे ढूंढ़े जा सकते हैं।

मैंने तो यह सुझानेमें भी कोई पसोपेश नहीं किया कि जहां अति-रिक्त आयकी कोई अमली सूरत न हो, वहां भारत सरकारसे सहायता या कमसे कम बिना व्याज कर्ज देनेकी मांग की जाय। २

शराबबंदी और अर्थमंत्री

बम्बईमें शराबबंदी होनेसे सरकारकी आय बहुत घट जायगी। लेकिन अर्थमंत्रीको तो अपना आय-व्यय संतुलित करना ही होगा। इसके लिए उन्हें आयके दूसरे जरिये खोजने पड़ेंगे और नये कर लगाने पड़ेंगे। अतः जिन्हें यह बोझ बरदाश्त करना पड़े, उन्हें इसकी शिका-यत नहीं करनी चाहिये। यह सब कोई जानते हैं कि कर कितने ही उचित क्यों न हों, किन्तु कोई उन्हें पसन्द नहीं करता। पर मुझे मालूम हुआ है कि अर्थमंत्रीने इस सम्बन्धकी सभी उचित आपत्तियोंका निरा-करण कर दिया है। अतः जिन लोगों पर यह बोझ पड़े, वे इस महान

क्यों न करें? अगर सभी नागरिकोंके आनन्दके बीच शराबबन्दीकी शुरुआत हो, तो निश्चय ही वह दिन बम्बईके लिए बड़े गौरवका होगा। याद रहे कि यह शराबबंदी दूसरोंकी लादी हुई नहीं है। इसका आरंभ तो वे सरकारें कर रही हैं, जो जनताके प्रति जिम्मेदार हैं। १९२० में ही हमारे राष्ट्रीय कार्यक्रमका यह एक अंग रहा है। इस-लिए २० वर्ष पहले राष्ट्रने निश्चित रूपसे जो इच्छा प्रकट की थी, उसकी ही अवसर मिलने पर यह पूर्ति हो रही है। ३

मंत्री और शराबबंदी

मंत्रियोंका कर्तव्य स्पष्ट है। उन्हें अपने कार्यक्रम पर अबाधित रूपसे अमल करते चले जाना चाहिये, बशर्ते कि उनकी इसमें श्रद्धा हो। मद्य-निषेध कांग्रेसके कार्यक्रमका एक सबसे बड़ा नैतिक सुधार है। पहलेकी सरकारोंने भी इसका मौखिक समर्थन किया था, परन्तु गैर-जिम्मेदार होनेके कारण न तो उनमें ऐसा करनेका साहस था और न उनके भीतर उस पर अमल करनेकी प्रेरणा ही थी। वे उस आयको छोड़नेके लिए तैयार नहीं थीं, जिसे वे बिना किसी प्रयासके प्राप्त कर सकती थीं। इसके कलंकित स्रोतकी जाच करनेके लिए वे ठहर नहीं सकती थीं।

कांग्रेसी सरकारोंके पीछे लोकमत है। कार्यसमितिने बहुत सोच-विचारके बाद शराबबन्दीके सम्बन्धमें अपना आदेश निकाला है। इस पर अमल करनेका तरीका स्वाभाविक तौर पर मंत्रि-मंडलों पर छोड़ दिया गया है। बम्बईके मंत्री साहसपूर्वक पूरी सफलताकी आशासे अपने कार्यक्रमको अमलमें लानेका प्रयत्न कर रहे हैं। उनकी स्थिति बहुत कठिन है। किसी न किसी दिन उन्हें बम्बईका प्रश्न हाथमें लेना ही था। तब भी मंत्रियोंको उन्हीं निहित स्वार्थोंकी तरफसे, जिन्हें शराब-बन्दीकी नीतिसे सीधी हानि पहुंचनेका डर था, होनेवाले विरोधका सामना करना पड़ता, जैसा कि आज हो रहा है। कोई भी कांग्रेसजन मंत्रियोंको परेशान नहीं कर सकता। ४

है, तब हिन्दुस्तान भरकी सरकारें क्या करती हैं? मैं तो यह मानता हूं कि कांग्रेसी सरकारें आयके खातिर शराववन्दीके काममें देरी करके अपनी प्रतिज्ञाका शब्दोंमें चाहे भंग न कर रही हों, परन्तु उसकी भावनाका जरूर भंग कर रही हैं।

नये कर लगाकर वे आय प्राप्त कर सकती हैं और इसके लिए उन्हें ईमानदारीके साथ कोशिश भी करनी चाहिये। शराबखोरी शहरोंमें वहुत ज्यादा है, अतः इन क्षेत्रोंमें वे नये कर लगा सकती हैं। शराववन्दीसे उन लोगोंको प्रत्यक्ष मदद मिलती है, जिनके कारखाने होते हैं और उनमें मजदूर काम करते हैं। ऐसे लोग यानी कारखानोंके मालिक निश्चय ही शराववन्दीसे होनेवाली आमदनीकी कमी पूरी कर सकते हैं। अहमदावादमें कुछ ही महीने शराववन्दीका जो काम हुआ है, उससे मालिक-मजदूर दोनोंको आर्थिक लाभ हुआ है। इसलिए कोई वजह नहीं कि इस वहुमूल्य सेवाके लिए मालिकोंसे पैसा क्यों न वसूल किया जाय? इसी तरह आमदनीके और भी अनेक साधन आसानीसे ढूंढ़े जा सकते हैं।

मैंने तो यह सुझानेमें भी कोई पसोपेश नहीं किया कि जहां अतिरिक्त आयकी कोई अमली सूरत न हो, वहां भारत सरकारसे सहायता या कमसे कम विना व्याज कर्ज देनेकी मांग की जाय। २

शराववंदी और अर्थमंत्री

वम्वईमें शराववंदी होनेसे सरकारकी आय वहुत घट जायगी। लेकिन अर्थमंत्रीको तो अपना आय-व्यय संतुलित करना ही होगा। इसके लिए उन्हें आयके दूसरे जरिये खोजने पड़ेंगे और नये कर लगाने पड़ेंगे। अतः जिन्हें यह वोझ वरदाश्त करना पड़े, उन्हें इसकी शिकायत नहीं करनी चाहिये। यह सव कोई जानते हैं कि कर कितने ही उचित क्यों न हों, किन्तु कोई उन्हें पसन्द नहीं करता। पर मुझे मालूम हुआ है कि अर्थमंत्रीने इस सम्वन्धकी सभी उचित आपत्तियोंका निराकरण कर दिया है। अतः जिन लोगों पर यह वोझ पड़े, वे इस महान प्रयोगमें भागीदार होनेका विशेष अधिकार प्राप्त करनेका गर्व अनुभव

क्यों न करें? अगर सभी नागरिकोंके आनन्दके बीच शराबबन्दीकी शुरुआत हो, तो निश्चय ही वह दिन बम्बईके लिए बड़े गौरवका होगा। याद रहे कि यह शराबबंदी दूसरोंकी लादी हुई नहीं है। इसका आरंभ तो वे *सरकारें कर रही हैं, जो जनताके प्रति जिम्मेदार हैं।* १९२० से ही हमारे राष्ट्रीय कार्यक्रमका यह एक अंग रहा है। इसलिए २० वर्ष पहले राष्ट्रने निश्चित रूपसे जो इच्छा प्रकट की थी, उसकी ही अवसर मिलने पर यह पूर्ति हो रही है। ३

मंत्री और शराबबंदी

मंत्रियोंका कर्तव्य स्पष्ट है। उन्हें अपने कार्यक्रम पर अबाधित रूपसे अमल करते चले जाना चाहिये, बशर्ते कि उनको इसमें श्रद्धा हो। मद्य-निषेध कांग्रेसके कार्यक्रमका एक सबसे बड़ा नैतिक सुधार है। पहलेकी सरकारोंने भी इसका मौखिक समर्थन किया था, परन्तु गैर-जिम्मेदार होनेके कारण न तो उनमें ऐसा करनेका साहस था और न उनके भीतर उस पर अमल करनेकी प्रेरणा ही थी। वे उस आयको छोड़नेके लिए तैयार नहीं थीं, जिसे वे बिना किसी प्रयासके प्राप्त कर सकती थीं। इसके कलंकित स्रोतकी जाच करनेके लिए वे ठहर नहीं सकती थीं।

कांग्रेसी सरकारोंके पीछे लोकमत है। कार्यसमितिने बहुत सोच-विचारके बाद शराबबन्दीके सम्बन्धमें अपना आदेश निकाला है। इस पर अमल करनेका तरीका स्वाभाविक तौर पर मंत्रि-मंडलों पर छोड़ दिया गया है। बम्बईके मंत्री साहसपूर्वक पूरी सफलताकी आशासे अपने कार्यक्रमको अमलमें लानेका प्रयत्न कर रहे हैं। उनकी स्थिति *बहुत कठिन है। किसी न किसी दिन उन्हें बम्बईका प्रश्न हाथमें लेना ही* था। तब भी मंत्रियोंको उन्हीं निहित स्वार्थोंकी तरफसे, जिन्हें शराब-बन्दीकी नीतिसे सीधी हानि पहुंचनेका डर था, होनेवाले विरोधका सामना करना पड़ता, जैसा कि आज हो रहा है। कोई भी कांग्रेसजन मंत्रियोंको परेशान नहीं कर सकता। ४

२९

खादी

मंत्री और खादी

ऐसा प्रतीत होता है कि खादीका मानो हम मजाक कर रहे हैं। २९ अगस्तको किसीने चरखेको याद नहीं किया। मेरा बस चले तो मैं मंत्रियोंसे शपथ-विधि करानेके पहले उनसे उसी हॉलमें आधा घंटा यज्ञार्थ कताई करवाऊं और प्रार्थना करवाऊं। इसके बाद ही शपथ-विधि पूरी होगी। ?

मैं यह जानता हूं कि खादीमें ऐसी जीवित श्रद्धा कांग्रेसजनोंमें से बहुत कमको है। मंत्रीगण कांग्रेसी हैं। वे आसपासकी परिस्थितिसे प्रेरणा लेते हैं। अगर उन्हें खादीमें सजीव श्रद्धा हो, तो वे उसे लोकप्रिय बनानेके लिए बहुत कुछ कर सकते हैं।

मैं बताऊं कि कांग्रेसी मंत्री और वैसे सभी मंत्री इस सम्बन्धमें क्या कर सकते हैं और उन्हें क्या करना चाहिये।

एक मंत्री ऐसा हो सकता है, जिसका एकमात्र काम खादी और ग्रामोद्योगोंकी देखभाल करना हो। अतः इस कामके लिए एक अलग विभाग होना चाहिये। दूसरे विभाग उसे सहयोग देंगे। उदाहरणके लिए, कृषि-विभाग कपासकी पैदावारके विकेन्द्रीकरणकी एक योजना बनायेगा, गांवोंके उद्योगके लिए कपासकी पैदावारके अनुकूल भूमिकी पैमाइश करेगा और पता लगायेगा कि उसके प्रान्तके लिए कितनी कपासकी जरूरत होगी। वह वितरणके लिए अनुकूल केन्द्रोंमें कपास जमा करके भी रखेगा। भंडार-विभाग प्रान्तमें उपलब्ध खादी खरीदेगा और अपनी जरूरतके कपड़ेके लिए मांग पेश करेगा। उद्योग-विज्ञानसे सम्बन्धित विभाग अपनी बुद्धिका उपयोग करके अधिक अच्छे चरखे और हाथके उत्पादनके अन्य औजार निकालेगा। ये सारे विभाग चरखा-संघ और

ग्रामोद्योग-संघके साथ सम्पर्क रखें और उनसे उत्तम कागज तैयार करा कर उसका उपयोग करें।

खाद्य-मंत्री मिलके उत्पादनसे चावलोंकी रक्षा करनेके साधन खोज निकालेगा। ८

एक मंत्रीका स्वप्न

"अगर आप प्रान्तीय सरकारों और लोगोंको इस आशय का संदेश या सूचना दे सकें कि तमाम स्कूलोंमें लड़कों और लड़कियोंके लिए कताई और बुनाई लाजिमी कर देनी चाहिये तो मेरा विश्वास है कि थोड़े ही समयमें स्कूलोंके बच्चे खुद अपना बनाया हुआ कपड़ा पहनने लग जायंगे। यह पहला कदम होगा। आपके आदर्शोंके विषयमें मेरी आज भी वैसी ही श्रद्धा है और मैं वह दिन देखनेकी आशा करता हूं, जब हरएक घर अपनी जरूरतका कपड़ा खुद बना लेगा और हरएक गांव भी अपनी ग्रामोद्योग तथा शिक्षाकी योजनाओंके अनुसार केवल कपड़ेमें ही नहीं, बल्कि हरएक जरूरी चीजके सम्बन्धमें स्वावलम्बी बन जायगा। आपकी तरह मैं भी यह मानता हूं कि इस देशमें सच्चा स्वराज्य तभी स्थापित हो सकता है, जब कि प्रान्तीय सरकार अथवा भारत सरकारका बजट — जिसके पास मिलानेके लिए चालबाजियां और करामातें करनी पड़ती हैं — ग्रामवासी जनताके बजटमें मिल जायगा।"

उपर्युक्त पत्र एक कांग्रेसी मंत्रीने लिखा है। मेरे पास यदि निरंकुश सत्ता हो, तो मैं कमसे कम प्राइमरी स्कूलोंमें तो कताईको अवश्य लाजिमी कर दूं। जिस मंत्रीमें श्रद्धा हो उसे ऐसा करना चाहिये। हमारे स्कूलोंमें कितनी ही बेकार चीजोंको लाजिमी बना दिया जाता है, तब इस अति उपयोगी कलाको लाजिमी क्यों न बना दिया जाय? लेकिन लोकतंत्रमें हम किसी चीजको, यदि वह विस्तृत रूपमें लोकप्रिय न हो, [illegible] नहीं बना सकते। इस तरह लोकतन्त्रमें अनिवार्यता नामकी,

ही होती है। वह आलस्यको तो उड़ा देती है, पर लोगोंकी इच्छा पर जोर-जबरदस्ती नहीं करती। इस प्रकारकी अनिवार्यता शिक्षणकी एक क्रिया है। मैं इससे एक हलका रास्ता सुझाता हूं। सबसे अच्छे कातनेवाले लड़के या लड़कीको इनाम दिलाना चाहिये। इस प्रतिस्पर्धासे सब नहीं तो अधिकांश इसमें भाग लेनेके लिए प्रेरित होंगे। किसी भी योजनामें यदि शिक्षकोंको खुद श्रद्धा न हो, तो वह सफल होनेकी नहीं। प्रांतीय सरकारें अगर बुनियादी तालीमको स्वीकार कर लें, तो कताई आदि शिक्षाक्रमके केवल अंग ही नहीं, बल्कि शिक्षाके वाहन बन जायंगे। बुनियादी तालीम अगर जड़ पकड़ ले, तो हमारी इस पीड़ित भूमिमें खादी अवश्य सार्वत्रिक और अपेक्षाकृत सस्ती हो सकती है। ३

मंत्रियोंका कर्तव्य

यह प्रश्न उचित ही है कि अब जब सत्ता कांग्रेसी मंत्रियोंके हाथमें आ गई है, तो वे खादी और अन्य देहाती उद्योगोंके लिए क्या करेंगे। मैं प्रश्नको व्यापक बना कर भारतकी सारी प्रान्तीय सरकारों पर लागू करना चाहूंगा। दरिद्रता सभी प्रान्तोंमें एकसी है और जनसाधारणकी दृष्टिसे कष्ट-निवारणके उपाय भी एकसे हैं। चरखा-संघ और ग्रामोद्योग-संघ दोनोंका यही अनुभव है। यह सुझाव दिया गया है कि इस कामके लिए एक अलग मंत्री होना चाहिये, क्योंकि इसका भलीभांति संगठन करनेके लिए एक मंत्रीका उसमें सारा समय लग जायगा। मुझे यह सुझाव देते हुए डर लगता है, क्योंकि हमने अंग्रेजी पैमाने पर खर्च करना अभी तक नहीं छोड़ा है। मंत्री अलगसे नियुक्त किया जाय या न किया जाय, पर एक अलग विभाग अवश्य ही इस कामके लिए जरूरी है। भोजन और वस्त्रकी कमीके इस कालमें यह विभाग बड़ीसे बड़ी सहायता कर सकता है। चरखा-संघ और ग्रामोद्योग-संघके मारफत मंत्रियोंको विशेषज्ञ तो उपलब्ध हो ही जायेंगे। इस समय कमसे कम पूंजी और समय लगा कर भारतको खादीका

कपड़ा पहुना देना संभव है। प्रत्येक प्रान्तीय सरकारको अपने ग्राम-वासियोंसे यह कहना होगा कि उन्हें अपने उपयोगके लिए अपनी खादी आप तैयार करनी है। इसमें स्थानीय उत्पत्ति और वितरणकी बात अपने आप आ जाती है। और कमसे कम कुछ माल निःसन्देह शहरोंके लिए बच रहेगा, जिससे स्थानीय मिलों पर भी दबाव घट जायगा। फिर तो हमारी मिलें संसारके दूसरे भागोंमें कपड़ेकी कमी पूरी करनेमें भाग ले सकेंगी।

यह परिणाम कैसे लाया जा सकता है?

सरकारको ग्रामवासियोंको सूचना देनी चाहिये कि उनसे एक निश्चित तारीखके भीतर अपने गांवोंकी जरूरतका खद्दर तैयार कर लेनेकी आशा रखी जायगी। उस तारीखके बाद उन्हें कपड़ा मुहैया नहीं किया जायगा। सरकार अपनी तरफसे ग्रामवासियोंको जहां जरूरत होगी लागत कीमत पर कपास या कपासका बीज देगी और माल तैयार करनेके औजार भी लागत कीमत पर देगी, जो पांच या अधिक वर्षोंमें आसान किस्तोंमें वसूल की जा सकती है। जहां आवश्यकता होगी, सरकार उन्हें शिक्षक देगी और खादीका बचा हुआ माल खरीद लेनेका वचन देगी। शर्त यह होगी कि संबंधित ग्रामवासी अपनी कपड़ेकी जरूरत अपने ही तैयार किये हुए मालसे पूरी करें। इससे कपड़ेकी कमी शोरगुल मचाये बिना और बहुत थोड़े व्यवस्था-खर्चमें दूर हो जायगी।

गांवोंकी जांच-पड़ताल की जायगी और ऐसी चीजोंकी एक सूची तैयार की जायगी, जो किसी मददके बिना या बहुत थोड़ी मददसे गांवोंमें तैयार हो सकती हैं और जिनकी जरूरत गांवोंमें बरतनेके लिए या बाहर बेचनेके लिए हो। जैसे, घानीका तेल, घानीकी खली, घानीसे निकला हुआ जलानेका तेल, हाथका कुटा हुआ चावल, ताड़का गुड़, शहद, खिलौने, मिठाइयां, चटाइयां, हाथसे बना हुआ कागज, गांवका साबुन आदि। अगर इस तरह काफी ध्यान दिया जाय, तो

उन गांवोंमें—जिनमें से ज्यादातर उजड़ चुके हैं या उजड़ रहे हैं—जीवनकी चहल-पहल पैदा हो जाय और उनमें अपनी और हिन्दुस्तानके शहरों और कस्बोंकी बहुत ज्यादा जरूरतोंको पूरा करनेकी जो ज्यादासे ज्यादा शक्ति है वह दिखाई पड़ने लगे।

फिर हिन्दुस्तानमें अनगिनत पशु-धन है, जिसकी तरफ हमने ध्यान न देकर बड़ा अपराध किया है। गोसेवा-संघको अभी तक ठीक अनुभव नहीं है, फिर भी वह इस कार्यमें कीमती मदद दे सकता है।

बुनियादी शिक्षाके बिना गांववाले विद्यासे खाली ही रहे हैं। यह जरूरी बात हिन्दुस्तानी तालीमी संघ पूरी कर सकता है। यह प्रयोग पहले ही कांग्रेसी सरकारोंने आरंभ किया था, पर कांग्रेसी मंत्रि-मंडलोंके इस्तीफा देनेसे इस काममें गड़बड़ी हो गई थी। अब वह तार फिर आसानीसे जोड़ा जा सकता है। ४

अगर मैं मंत्री होता

ता० २९ से ३१ जुलाई (१९४६) तक पूनामें ग्रामोद्योगों और नई तालीमसे सम्बन्ध रखनेवाले मंत्रियोंके साथ हुई बातचीतके कारण बहुतसा पत्र-व्यवहार और निजी वाद-विवाद चल पड़ा है। यह बहुत कुछ तो एक खादीको लेकर खड़ा हुआ है। इसलिए मैं इस सम्बन्धमें अपने विचार प्रान्तीय सरकारों और खादीके प्रश्नमें दिलचस्पी लेनेवाले दूसरे लोगोंके मार्गदर्शनके लिए नीचे देता हूं।

२८ अप्रैल, १९४६ के 'हरिजन' में मैंने 'मंत्रियोंका कर्तव्य' नामक एक लेख लिखा था। उसमें मैंने जो विचार प्रगट किये थे, उनमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। एक बातसे कुछ गलतफहमी पैदा हुई है। कुछ भाइयोंको उसमें जबरदस्ती दिखाई दी है। मुझे इस अस्पष्टताके लिए खेद है। उसमें मैंने इस प्रश्नका उत्तर दिया था कि आम लोगोंकी प्रतिनिधि-सरकारें यदि चाहें तो क्या क्या कर सकती हैं। मैंने मान लिया था—आशा है मेरी वह मान्यता क्षम्य थी—कि इन सरकारोंकी नोटिसोंको भी कोई जोर-जबरदस्ती नहीं

सकेगा। कारण, किसी सच्चे प्रतिनिधि-सरकारके प्रत्येक कार्यमें जिन निर्वाचकोंकी वह प्रतिनिधि है उनकी अनुमति मान ली जायगी। निर्वाचकोंका अर्थ होगा सारी जनता, चाहे उनका नाम निर्वाचक-सूचीमें हो या न हो। इस पृष्ठभूमिको ध्यानमें रखकर मैंने लिखा था कि सरकार ग्रामवासियोंको ऐसी सूचना दे दे कि एक निश्चित तारीखके बाद ग्रामवासियोंको मिलका कपड़ा नहीं दिया जायगा, ताकि वे अपनी ही तैयार की हुई खादी पहन सकें।

मेरे पिछले लेखका (२८-४-'४६) कुछ भी अर्थ हो, मैं इतना कह देना चाहता हूं कि सम्बन्धित लोगोंके स्वेच्छापूर्ण सहयोगके बिना खादी-सम्बन्धी कोई भी लादी हुई योजना व्यर्थ सिद्ध होगी और वह उस खादीको मार डालेगी जिसे हम स्वराज्य प्राप्त करनेका साधन बनाना चाहते हैं। फिर भी खादीके बारेमें लोगोंका यह मानना सही होगा कि खादी हमें मध्यकालीन गुलामी और अज्ञानकी ओर ले जाती है। परन्तु मेरा विचार इसके विपरीत रहा है। जहां जबरन पैदा की जानेवाली या पहनी जानेवाली खादी हमारी गुलामीकी निशानी थी, वहां सोच-समझकर और स्वेच्छासे तैयार की जानेवाली खादी, जो मुख्यतः अपने ही उपयोगके लिए हो, हमारी आजादीकी निशानी है। स्वतन्त्रता अगर सर्वांगीण स्वावलम्बनका विकास न करे, तो उसका कोई अर्थ नहीं है। अगर खादी स्वतन्त्र मनुष्यके अपने अधिकार और कर्तव्यकी निशानी न हो, तो कमसे कम मुझे उसमें कोई दिलचस्पी न रहेगी।

मित्रभावसे टीका करनेवाले एक भाई पूछते हैं कि इस योजनाके अनुसार तैयार की गई खादी क्या बेची भी जा सकती है? मेरा उत्तर यह है कि यदि बिक्री उसका गौण उद्देश्य हो, तो ऐसा किया जा सकता है; लेकिन अगर बिक्री ही उसका एकमात्र या मुख्य लक्ष्य हो, तो वह हरगिज नहीं बेची जा सकती। हमने बिक्रीके लिए खादी उत्पन्न करके अपना काम शुरू किया, उसका कारण यह था कि उसके बारेमें तब हम दूर तक सोच नहीं पाये थे और यह भी था कि उस समय

हमें उनकी जरूरत थी। अनुभव एक महान शिक्षक है। उसने हमें अनेक बातें सिखाई हैं। उनमें से एक बड़ी बात यह है कि खादीका मुख्य उपयोग स्वयं अपने लिए उसका व्यवहार करना है। परन्तु यह भी उसका अन्तिम उपयोग नहीं है। खैर, मुझे कल्पनाके मनोहर क्षेत्रको छोड़कर शीर्षकमें पूछे गये प्रश्नका निश्चित उत्तर देना चाहिये।

संपूर्ण शासन-कार्यके केन्द्रके रूपमें गांवोंके पुनरुद्धारकी जिम्मेदारी संभालनेवाले मंत्रीकी हैसियतसे मेरा पहला काम यह होगा कि स्थायी राज्य-कर्मचारियोंमें से इस कामके लिए मैं ईमानदार और निष्ठावान आदमी ढूंढ़ निकालूं। मैं उनमें से उत्तम लोगोंका चरखा-संघ और ग्रामोद्योग-संघसे, जो कांग्रेसके बनाये हुए हैं, संपर्क कराकर गांवोंके हाथ-उद्योगोंको अधिकसे अधिक प्रोत्साहन देनेके लिए एक योजना प्रस्तुत करूंगा। मैं यह शर्त रखूंगा कि ग्रामवासियों पर कोई जबरदस्ती नहीं की जायगी। उन्हें दूसरोंकी बेगार करनेके लिए मजबूर नहीं किया जायगा। और उन्हें अपनी मदद आप करना तथा भोजन, वस्त्र और अन्य आवश्यक वस्तुओंके उत्पादनके लिए अपनी ही मेहनत और कुशलता पर भरोसा करना सिखाया जायगा। इस प्रकारकी योजनाको व्यापक बनाना होगा। इसलिए मैं अपने पहले आदमीको यह आदेश दूंगा कि वह हिन्दुस्तानी तालीमी संघका काम देखे, उसके अधिकारियोंसे मिले और समझे कि इस विषयमें उनका क्या कहना है।

मैं मान लेता हूं कि इस प्रकार तैयार की हुई योजनामें एक धारा यह होगी: ग्रामवासी स्वयं यह घोषणा करें कि उन्हें एक निश्चित तारीखसे एक वर्षके बाद मिलके कपड़ेकी जरूरत नहीं होगी, और यह कि अपना कपड़ा तैयार करनेके लिए उन्हें रुई, ऊन और आवश्यक औजार तथा शिक्षाकी जरूरत है। ये चीजें वे दानके रूपमें नहीं लेंगे, बल्कि आसान किस्तोंमें उनकी कीमत चुकानेकी शर्त पर लेंगे। इस योजनामें यह बात भी होगी कि वह किसी पूरे प्रान्त पर एकदम लागू नहीं होगी, परन्तु शुरूमें उसके एक हिस्से पर ही लागू होगी। योजनामें

यह भी कहा जायगा कि चरखा-संघ इस योजनाको अमलमें लानेके लिए पथ-प्रदर्शन करेगा और आवश्यक सहायता देगा।

इस योजनाके लाभप्रद होनेका विश्वास हो जाने पर मैं कानून-विभागकी सलाहसे उसे कानूनी रूप दूंगा और एक विज्ञप्ति निकालूंगा, जिसमें योजनाकी बुनियादी बातोंका पूरा वर्णन होगा। ग्रामवासी, मिल-मालिक और अन्य लोग इसमें शरीक रहेंगे। विज्ञप्तिमें साफ बताया जायगा कि यह जनताका काम है, भले ही उस पर सरकारकी मुहर लगी हो। सरकारी पैसा गरीबसे गरीब ग्रामवासियोंके कल्याणके लिए खर्च किया जायगा, ताकि संबंधित लोगोंको उसका अधिकसे अधिक लाभ पहुंचे। इसलिए वह शायद पूंजीका सबसे लाभप्रद नियोजन होगा, जिसमें विशेषज्ञोंकी सहायता स्वेच्छापूर्ण होगी और व्यवस्था-खर्च कमसे कम होगा। विज्ञप्तिमें देश पर पड़नेवाले सारे खर्च और लोगोंको मिलनेवाले लाभका पूरा ब्योरा दिया जायगा।

मंत्रीके नाते मेरे लिए एकमात्र प्रश्न यह है कि चरखा-संघमें वह दृढ़ विश्वास और क्षमता है या नहीं, जिससे संघ खादीकी एक योजना तैयार करके उसे सफलता तक पहुंचा देनेका भार उठा सके। अगर उसमें यह दृढ़ विश्वास और क्षमता है, तो मैं पूरे विश्वासके साथ अपनी छोटी नैयाको समुद्रमें उतार दूंगा। ५

सरकारी मालिकी बनाम सरकारी कंट्रोल

८, ९ और १० अक्तूबर (१९४६) को हरिजन कालोनी, किंग्सवे, नई दिल्लीमें अ० भा० चरखा-संघकी वार्षिक बैठक हुई। उसमें करीब ८० सदस्य हाजिर थे। चर्चाओंके फलस्वरूप एक बात यह सामने आई कि आज तक जिन बातोंकी चर्चा केवल सैद्धान्तिक दृष्टिसे की जाती थी, वे अब हमारी सरकारोंके आनेसे व्यावहारिक रूप ले रही हैं। चर्चाका एक विषय यह था कि मिलका कपड़ा खादीके साथ स्पर्धा न करे। इसलिए कुछ चुने हुए स्थानों पर मिलका कपड़ा न जाने दिया जाय और वहां कपड़ेकी नई मिलें खड़ी न की जायं,

मिलकी स्पर्धामें खादी जिन्दा नहीं रह सकती। गांधीजीने सुझाया कि जहां लोग वस्त्र-स्वावलम्बनका प्रयोग करनेको तैयार हों वहां सरकार मिलका कपड़ा न जाने दे। इसी तरह अगर प्रांतीय सरकारें नई मिलें खड़ी करनेमें करोड़ों रुपये खर्च करेंगी, तो ग्रामवासी खादीके बारेमें उनकी बात नहीं सुनेंगे। वे समझ जायंगे कि असली चीज तो मिल ही है। इसलिए यदि सरकारें सचमुच ही खादीको बढ़ाना चाहती हैं, तो उन्हें अपने प्रान्तमें नई मिलें न खड़ी करनेका फैसला करना ही होगा।

एक सदस्यने यह भी सुझाव रखा कि कपड़ेकी नई मिलों पर सरकारका अधिकार हो और यथासंभव जल्दीसे जल्दी सरकार पुरानी मिलों पर भी अधिकार कर ले, ताकि उनका मुनाफा पूंजीपतियोंकी जेबमें जानेके बजाय देशकी जेबमें जाये और मिलोंकी नीति पर भी जनताका नियंत्रण रहे। इस पर गांधीजीने समझाया कि जब एक ओर हम सरकारसे यह कहते हैं कि खादीका प्रचार करना हो तो कपड़ेकी नई मिलें खड़ी ही न करनी चाहियें, तब दूसरी ओर उससे नई और पुरानी मिलोंका राष्ट्रीयकरण करनेकी बात कहना ठीक नहीं। मद्रासके प्रधानमंत्री श्री टी० प्रकाशम्‌ने यह घोषणा भी कर दी है कि उनके प्रान्तमें कपड़ेकी कोई नई मिलें खड़ी नहीं की जायंगी। अब रही बात पुरानी मिलों पर सरकारी अधिकारकी। तो मुझे तो मिलों पर अधिकार करनेके बजाय सरकारकी कड़ी देखरेखमें मिलोंका चलना ही अधिक अच्छा लगता है। आज मिलों पर अधिकार करनेके लिए सरकारोंके पास पर्याप्त साधन नहीं हैं। हम तो सब काम शांतिसे करना चाहते हैं। अगर हम मिल-मालिकोंको अपने ट्रस्टी बना लें, तो वे और उनके कर्मचारी अपने आप समाजके नियंत्रणमें आ जायंगे। मिल-मालिक मिल चलायेंगे, लेकिन मुनाफेका उतना ही हिस्सा उनकी जेबमें जायगा जो उनकी मेहनतके बदलेमें लोग उन्हें देना उचित समझेंगे। सच्चे मालिक मिलोंमें मजदूर बनेंगे। मैंने सुना है कि श्री टाटाकी एक मिलमें मजदूरोंको मुनाफेमें साझा मिला है। श्री जे० आर० डी० टाटाने मुनाफा बांटनेके

मौके पर जो भाषण दिया, वह पढ़ने लायक है। इससे अधिक मिलाकर और क्या अधिकार दिया जा सकता है? इससे आगे जानेकी बात मेरे दिमागमें नहीं आती। अनेक मिल-मालिकोंने मुझसे कहा है कि अगर हम ऐसी योजना बनायें, तो वे हमारे साथ सहयोग करेंगे तथा अपनी मिलोंके अधिक विस्तारको टाल देंगे। मिलों पर सरकार, चरखा-संघ और मिल-मालिकोंका संयुक्त नियंत्रण होनेकी बात मेरे गले नहीं उतरती। "हमारा काम चरखा चलाना है, मिल चलाना नहीं। जो चीज हमारे कार्यक्षेत्रकी नहीं है, उसकी चर्चामें हम इतना समय क्यों दें? अगर आज सारी मिलें जल कर राख हो जाय, तो मुझे जरा भी दुःख नहीं होगा। उसके बाद तो खादीको बढ़ना ही है। लेकिन अगर मिलें बढ़ेंगी, तो खादीको मरना ही होगा। गरीबोंकी अन्नपूर्णाके नाते थोड़ी बहुत खादी तब भी चल सकती है। पर उसके लिए चरखा-संघ जैसी बड़ी संस्थाकी जरूरत नहीं रहेगी।" मेरे लिए तो इतना ही काफी है कि प्रान्तोंकी सरकारें मिलोंके बारेमें अपनी नीति निश्चित करते समय हमारी सलाह ले लिया करें। ६

हाथकता बनाम मिलका कपड़ा

मद्रासकी चैम्बर ऑफ कॉमर्स जैसी पूंजीपतियोंको लाभ पहुंचाने-वाली बड़ी संस्थायें और वहांके कुछ कांग्रेसी भी प्रान्तके प्रधानमंत्रीके खिलाफ हो गये हैं। मद्रासके अखबारोंकी कई कतरनें मेरे पास भेजी गई हैं। मुझे यह कहते दुःख होता है कि यह टीका मुझे स्वार्थ और अज्ञानसे भरी मालूम होती है।

इस झगड़ेमें मेरा नाम भी घसीटा गया है। चूंकि मैं प्रकाशम्‌जी-की योजनाका समर्थक हूं, इसलिए इस सीधे-सादे प्रश्नकी निष्पक्ष चर्चा पर कोई असर नहीं पड़ना चाहिये।

सादा-सा प्रश्न केवल यह है: अगर मद्रास सरकार नई मिलोंके खुलनेमें बढ़ावा दे, या पुरानी मिलोंको अपनी मशीनें बढ़ाकर दुगना माल पैदा करनेमें मदद दे, तो क्या खादी सामान्य जनतामें फैल

सकेगी? क्या गांववालोंको इतना भोला समझ लिया गया है कि एक खास लम्बाईका कपड़ा बुननेके लिए जितनी कीमतकी कपासकी जरूरत होती है, उससे भी कम कीमत पर उन्हें मिलका कपड़ा देना जाय, तो वे इतनीसी बात भी नहीं समझेंगे कि यह गांवोंके साथ केवल खिलवाड़ किया जा रहा है? जब जापानने अपना कपड़ा भारतमें भेजा था तब ऐसा ही हुआ था।

इसमें कोई शक नहीं कि मद्रासवाली योजना इसी गरजसे बनाई गई है कि किसान अपने खाली समयमें कताई करके अपने पहनने लायक कपड़ा खुद तैयार कर लिया करें। लोग अपने खाली समयको उपयोगी, राष्ट्रीय और प्रामाणिक श्रममें खर्च करें, इसके लिए उन्हें समझाना क्या निरा शेखचिल्लीपन है?

जब बेकारोंके लिए कोई उपयोगी और ज्यादा लाभप्रद कामकी अमली योजना सामने आयेगी, उस समय मद्रास सरकारके खिलाफ आवाज उठाना उचित होगा। जो लोग सचाईके साथ देशकी सेवा कर रहे हैं, उन्हें आदर्शवादी, स्वप्नदर्शी, पागल या धुनी कहकर उनकी बात पर ध्यान देनेसे इनकार करना मनोरंजनका कोई अच्छा साधन नहीं है।

पूंजीपतियोंको और समाजमें अपनी जगह बनाकर बैठे हुए लोगोंको चाहिये कि वे गरीब ग्रामवासियोंके खिलाफ खड़े न हों और उन्हें इज्जतके साथ मेहनत करके अपनी दुर्दशाको सुधारनेसे न रोकें।

मद्रासवाली योजनामें नई मिलोंके बारेमें जो एक भारी दोष रह गया था, उसे मैंने पकड़ लिया है। जब टेक्सटाइल कमिश्नरको दोनों चीजें (चरखा और मिल) एक साथ चलानेकी गलती समझमें आ गई और चरखा-संघकी तैयार की हुई योजनाकी व्यावहारिकता उन्होंने समझ ली, तो उन्होंने मद्रास सरकारसे उसकी सिफारिश की। अगर यह योजना व्यावहारिक या उपयोगी सिद्ध न हुई, तो उससे टेक्सटाइल कमिश्नरकी नेकनामीको धक्का लगेगा — टीका करनेवालोंको नहीं।

यह एक लोकतांत्रिक सरकार द्वारा आम जनताकी भलाईके लिए उठाया गया कदम है।

इसलिए जहां यह योजना अमलमें लाई जाय कमसे कम वहाके लोगोंको तो इसे जरूर अपनाना चाहिये।

यह एक आदमीकी योजना नहीं, परन्तु पूरी सरकारकी योजना होनी चाहिये।

उसके पीछे धारासभाका पूरा समर्थन होना चाहिये।

उसमें जबरदस्तीकी बू भी नहीं आनी चाहिये।

वह वास्तवमें अमलमें आने लायक और आम जनताके लिए लाभकारी होनी चाहिये।

योजनाकी सफलताकी ये सब शर्तें लिखित रूपमें रखी गई हैं। मैं समझता हूं कि विशेषज्ञोंसे और आपसमें पूरी चर्चा करनेके बाद ही मद्रास सरकारने इन सबको ज्योंका त्यों मान लिया है।

याद रहे कि मद्रासकी वर्तमान मिलोंको अभी छुआ नहीं जायगा। अगर एक दिन यह योजना जंगलकी आगकी तरह फैली — और मुझे आशा है कि ऐसी चीज एक दिन जरूर सब जगह फैल जायगी — तो इसमें कोई शंका नहीं कि समूचे मिल-उद्योग पर उसका असर होगा। अगर ऐसा दिन कभी आये तो बड़ेसे बड़े पूंजीपतिको भी उसके न आनेकी इच्छा नहीं करनी चाहिये।

तब सोचने योग्य प्रश्न केवल यही रह जाता है कि मद्रास सरकार ईमानदार और योग्य है या नहीं। अगर वह ऐसी नहीं है, तो सारी योजना गड़बड़में पड़ जायगी। और अगर सरकार ईमानदार और योग्य होगी, तो इसे सबके आशीर्वाद मिलेंगे और यह योजना जरूर सफल होगी। ७

३०

कांग्रेस सरकारें और ग्राम-सुधार

अवकी कांग्रेसके मंत्रियोंने प्रान्तोंके शासनकी वागडोर जो अपने हाथमें ली है, वह कोई वैधानिक प्रयोग नहीं है। वह राष्ट्रको खड़ा करनेकी एक कोशिश है। उनका काम तो यह है कि जनताके लिए जिस आजादीकी कल्पना कांग्रेसने की है उसको वे अमली रूप दें। ३१ जुलाई (१९४६) को जव अलग अलग प्रान्तोंके उद्योग-विभागके मंत्री पूनाके कौंसिल हॉलमें मिले, तो उनके सामने ये प्रश्न थे: आर्थिक नीतिका अन्त क्या होना चाहिये? जो समाज-रचना हम करना चाहते हैं उसका स्वरूप क्या होना चाहिये? और आज-कलके आर्थिक और प्रशासनिक संगठनमें ऐसी क्या क्या बातें हैं, जो ग्राम-सुधारके मार्गमें रुकावट डालती हैं?

गांधीजी ३० मिनिट वोले। उन्होंने ग्रामोद्योगोंके वारेमें अपनी दृष्टि समझाई। उन्होंने कहा, नई तालीम और ग्रामोद्योगोंके कार्यक्रम —जिसमें खादी भी शामिल है—के पीछे जो कल्पना है, उसकी जड़ एक ही है। अर्थात् वड़े शहरोंके मुकावलेमें गांवोंकी और यंत्रके मुकावलेमें व्यक्तिकी प्रतिष्ठा और दरजेकी चिन्ता। इस वातने इस चिन्ताको और भी वढ़ा दिया है कि हिन्दुस्तान थोड़ेसे बड़े शहरोंमें नहीं वसता, परन्तु अपने सात लाख गांवोंमें बसता है। समस्या गांवों और शहरोंके सम्वन्धोंमें फिरसे न्याय स्थापित करनेकी है। आजकल गांवोंके मुकावले शहरोंका पलड़ा वहुत भारी है, जो गांवोंको नुकसान पहुंचानेवाला है।

यंत्रोंका युग

गांधीजीने कहा: "हमारे युगको यंत्रयुग कहा गया है, क्योंकि हमारे आर्थिक जीवन पर यंत्रका शासन चलता है। कोई पूछ सकता

है—'यंत्र क्या है? 'एक अर्थमें मनुष्य एक उत्तम यंत्र है। न उसकी कोई मिसाल ही मिलती है, न नकल हो सकती है।" लेकिन गांधीजीने यंत्र शब्दका उपयोग उसके व्यापक अर्थमें नहीं किया। उनका मतलब तो केवल ऐसे साधनसे था, जो मनुष्य और पशुकी शक्तियोंकी कमियोंको दूर करने या केवल उसे अधिक उपयोगी बनानेके बजाय उसकी जगह ही ले लेता है। यह यंत्रकी पहली विशेषता है। यंत्रकी दूसरी विशेषता यह है कि इसकी शक्तिकी वृद्धि या विस्तारकी कोई हद ही नहीं है। आदमीकी मेहनतके बारेमें यह नहीं कहा जा सकता। उसकी कुछ मर्यादा होती है, जिसके आगे उसकी शक्ति या यांत्रिक कार्यक्षमता नहीं जा सकती। इसमें से यंत्रकी तीसरी विशेषता पैदा हुई है। ऐसा मालूम होता है, मानो यंत्रका अपना कोई निश्चय-बल या आत्मा हो। यंत्र मानवके श्रमका शत्रु है। यह ज्यादासे ज्यादा आदमियोंकी जगह ले लेता है, क्योंकि एक यंत्र अगर हजार नहीं तो सौ आदमियोंका काम तो करता ही है। नतीजा यह होता है कि बेकारी और अर्ध-बेकारीकी फौज बढ़ती ही जाती है। इसलिए नहीं कि यह वाञ्छनीय है, बल्कि इसलिए कि यह यंत्रका नियम है। अमेरिकामें तो शायद यह चीज चरम सीमा तक पहुंच गई है। गांधीजीने कहा "मैं आजसे नहीं परन्तु १९०८ के भी पहलेसे यंत्रके खिलाफ रहा हूं। तब मैं दक्षिण अफ्रीकामें था और मेरे चारों तरफ यंत्र ही यंत्र थे। लेकिन यंत्रोंकी प्रगतिने मुझ पर कोई असर नहीं डाला, बल्कि यंत्रोंके प्रति मेरे मनमें घृणा ही पैदा की। "तब मैंने यह जाना कि यंत्र करोड़ोंको दबाने और लूटनेका एक उत्तम साधन है। अगर समाजके घटकोंके नाते सब मनुष्योंको समान होना है, तो मानवकी अर्थ-रचनामें यंत्रका कोई स्थान नहीं हो सकता। मैं कहता हूं कि यंत्रने मनुष्यको जरा भी ऊंचा नहीं उठाया है। और अगर यंत्रको उसके उचित स्थान पर नहीं बैठाया गया, तो वह लाभ पहुंचानेके बजाय मनुष्यको बिलकुल तबाह कर देगा। उसके बाद

मैंने रस्किनकी 'अन्टु दिस लास्ट' (सर्वोदय) नामक पुस्तक पढ़ी। और उसने तत्काल मुझे अपने वशमें कर लिया। मैंने स्पष्ट समझ लिया कि अगर मानव-जातिको प्रगति करनी है और अगर उसका यह आदर्श हो कि सब मानव समान हों, सब मानव भाई-भाईकी तरह रहें, तो उसे गूंगों और लूले-लंगड़ोंको भी अपने साथ लेकर चलना होगा। क्या युधिष्ठिरने, जो सत्यके देवता थे, अपने वफादार कुत्तेको छोड़कर स्वर्ग जानेसे इनकार नहीं कर दिया था?"

मंत्रि-मंडल और ग्रामोद्योग-संघ

यंत्रयुगमें इन लंगड़े-लूलोंके लिए कोई स्थान नहीं है। इसमें तो सबसे बलवान ही टिकता है, और वह भी निर्बलोंको छोड़कर और उनकी गर्दन पर सवार होकर। गांधीजीने कहा: "आजादीकी मेरी यह कल्पना नहीं है। उसमें तो निर्बलसे निर्बलके लिए भी जगह है। इसके लिए यह जरूरी है कि जितने मनुष्य हैं उनकी मेहनतका हम पहले पूरा पूरा उपयोग कर लें और फिर जरूरत हो तो यंत्र-शक्तिका उपयोग करें।"

इसी पृष्ठभूमिको सामने रखकर मैंने तालीमी संघ और अ० भा० ग्रामोद्योग-संघकी नींव डाली थी। इनका उद्देश्य है: कांग्रेसको मजबूत बनाना, जो वास्तवमें आम जनताकी संस्था है। कांग्रेसने इन स्वायत्त संस्थाओंकी रचना की है। कांग्रेसी मंत्रि-मंडल हमेशा और बिना किसी संकोचके इन संस्थाओंकी सेवा मांग सकते हैं। उनका अस्तित्व ग्रामवासियोंके लिए है और उन्हींकी सेवाके लिए वे परिश्रम करती हैं। ग्रामवासी ही कांग्रेसके मुख्य आधार हैं। कांग्रेसी मंत्रि-मंडलों पर किसी तरहका दबाव नहीं है। अगर वे इन संस्थाओंके सिद्धान्तोंमें विश्वास नहीं रखते, तो उन्हें कांग्रेस कार्य-समितिके द्वारा ऐसा स्पष्ट कह देना चाहिये। अगर किसी काममें दिल न लगे, तो उसके साथ खिलवाड़ करना सबसे बुरी बात होगी। इस कार्यको उन्हें तभी हाथमें लेना चाहिये जब वे मेरे साथ यह मानते हों कि इसीमें देशकी आर्थिक

और राजनीतिक भलाई समाई हुई है। उन्हें सुदको या दूसरोंको धोखा नहीं देना चाहिये।

धरती माता

खेती ग्रामोद्योगोंका आधार और उनकी बुनियाद है। "कई साल हुए मैंने एक कविता पढ़ी थी, जिसमें किसानको दुनियाका पिता कहा गया है। अगर ईश्वर दाता है, तो किसान उसका हाथ है। हम पर उसका जो ऋण है, उसे चुकानेके लिए हम क्या करनेवाले हैं? अभी तक तो हम उसकी गाढ़े पसीनेकी कमाई ही खाते रहे हैं। हमें खेतीसे अपना काम शुरू करना चाहिये था, लेकिन हम ऐसा कर न सके। इस दोषमें अंशतः मेरा भी हाथ है।"

गांधीजीने कहा कि कई लोग यह कहते हैं कि जब तक राजनीतिक सत्ता हमारे हाथमें न आ जाय, तब तक खेतीमें कोई बुनियादी सुधार नहीं हो सकता। इन लोगोंका स्वप्न यह है कि भाप और बिजलीका व्यापक पैमाने पर उपयोग करके यंत्रकी शक्तिसे खेती की जाय। मेरी इन लोगोंको यह चेतावनी है कि अगर वे जल्दी जल्दी उत्पादन लेनेके प्रलोभनमें पड़ कर जमीनके उपजाऊपनका सौदा करेंगे, तो यह विनाशक और अल्पदृष्टिकी नीति होगी। इसका परिणाम यह होगा कि जमीनका उपजाऊपन कम होता जायगा। अच्छी जमीनमें अन्न पैदा करनेके लिए पसीना बहाना पड़ता है।

लोग शायद इस दृष्टिकी टीका करें और यह कहें कि इससे काम धीमा होगा और प्रगतिके मार्ग पर ले जानेवाला नहीं होगा; और न इसमें जल्दी कोई बहुत बड़ा नतीजा निकलनेकी आशा रखी जा सकती है। फिर भी मैं कहता हूं कि जमीन और उस पर रहनेवाले मनुष्योंकी खुशहालीकी कुंजी इसी दृष्टिमें है। स्वास्थ्य और शक्ति देनेवाला भोजन ग्राम्य अर्थ-व्यवस्थाका केन्द्र है। "किसानकी आयका ज्यादा भाग उसके और उसके परिवारके भोजन पर ही खर्च होता है। बाकी सब चीजें उसके बाद आती हैं। खेती करनेवालेको अच्छा ...

चाहिये। उसे ताजे और शुद्ध घी, दूध और तेल काफी मात्रामें मिल[ने]
चाहिये। और अगर वह मांस खाता हो, तो उसे मछली, अंडे और मां[स]
भी मिलने चाहिये। अगर उसे पेटभर अच्छा पोषक भोजन न मिले
तो उसके पास अच्छे कपड़े होनेका क्या अर्थ है?" इसके बाद पीनेक[ा]
पानी मुहैया करनेका प्रश्न और दूसरे प्रश्न आयेंगे। इन प्रश्नोंका विचा[र]
करते हुए स्वभावतः ऐसे प्रश्न भी निकल आयेंगे कि ट्रैक्टरसे जमीनमे[ं]
हल चलाने और यंत्रसे जमीनको पानी देनेकी तुलनामें कृषिके अर्थशास्त्रमे[ं]
बैलका क्या स्थान है। इस तरह एक एक करके ग्राम्य व्यवस्थाकी
पूरी तसवीर हमारे सामने उभर आयेगी। इस तसवीरमें शहरोंका भी
उचित स्थान होगा और वे आजकी तरह राज्यसंस्था पर उठे हुए
फोड़ोंकी तरह या अस्वाभाविक घने धब्बोंकी तरह नहीं दिखाई देंगे।
अंतमें गांधीजीने कहा: "आज इस बातका खतरा पैदा हो गया है
कि कहीं हम हाथोंका उपयोग करना ही न भूल जायं। मिट्टी खोदना
और जमीनकी देखभाल करना भूलनेका अर्थ होगा स्वयंको भूल जाना।
अगर आप यह समझें कि केवल शहरोंकी सेवा करके आपने मंत्रीपदका
कर्तव्य पूरा कर दिया, तो आप इस बातको भूल जाते हैं कि हिन्दुस्तान
असलमें अपने सात लाख गांवोंमें बसा हुआ है। अगर किसी आदमीने
सारी दुनिया पा ली, लेकिन इस सौदेमें अपनी आत्मा खो दी, तो उसे
क्या लाभ हुआ?"

इसके बाद गांधीजीसे प्रश्न पूछे गये।

उपाय

प्र० — आपने शहरोंको राज्यसंस्थाके फोड़े कहा है। इन फोड़ोंका क्या किया जाय?

उ० — अगर आप किसी डाक्टरसे पूछेंगे, तो वह आपको यह इलाज बतायेगा कि फोड़ेको चीरकर या पलस्तर और पुलटिस बांधकर अच्छा करना होगा। एडवर्ड कारपेन्टरने सभ्यताको ऐसा रोग कहा है, जिसका इलाज किया जाना चाहिये। बड़े बड़े शहरोंकी बढ़ती इस

रोगका ही चिह्न है। कुदरती उपचारमें विश्वास रखनेवाला होनेके कारण मैं तो इसी बातके पक्षमें हूं कि संपूर्ण व्यवस्थाकी सामान्य शुद्धि की जाय और कुदरती मार्गसे इस रोगका भी इलाज किया जाय। अगर शहरवालोंके हृदय गांवोंमें रम गये और वे वास्तवमें ग्राम्य मानसवाले बन गये, तो बाकी सब बातें अपने आप हो जायगी और फोड़ा जल्दी ही भरकर अच्छा हो जायगा।

प्र० — आजकी परिस्थितियोंमें ग्रामोद्योगोंको विदेशी और देशी कारखानोंके मालके आक्रमणसे बचानेके लिए क्या क्या व्यावहारिक कदम उठाये जा सकते हैं?

उ० — मैं सिर्फ मोटी मोटी बातें बता सकता हूं। अगर आपको अपने हृदयमें ऐसा लगा हो कि आपने शासनकी बागडोर इसलिए हाथमें ली है कि आप आम जनताके हितका प्रतिनिधित्व और रक्षा करें, तो आप जो कुछ भी करेंगे — चाहे कानून बनायें, आदेश निकालें, हिदायतें दें — उसमें गांववालोंकी चिन्ता ही नजर आयेगी। उनके हितोंकी रक्षा करनेके लिए आपको वाइसरॉयकी स्वीकृतिकी जरूरत नहीं है। मान लीजिये कि आप कतवैयों और बुनकरोंको मिलोंकी स्पर्धासे बचाना चाहते हैं और आप लोगोंकी कपड़ेकी तंगीकी समस्या हल करना चाहते हैं, तो आप लाल फीताशाहीको अलग हटाकर मिल-मालिकोंको बुलायेंगे और समझायेंगे कि अगर वे यह नहीं चाहते कि आप शासनकी बागडोर छोड़ दें, तो उन्हें उत्पादनकी अपनी नीतिका मेल जनताकी जरूरतोंके साथ बैठाना होगा। आप जनताके रक्षक और प्रतिनिधि हैं। आप मिल-मालिकोंसे कहेंगे कि वे ऐसे क्षेत्रोंमें मिलका कपड़ा न भेजें, जहां हाथसे कपड़ा तैयार किया जाता है; या उनसे कहेंगे कि वे उन खास अंकोंके बीचका सूत और कपड़ा न बनायें, जो हाथ-करघेके बुनकरोंके क्षेत्रमें आता है। अगर आप यह बात उनसे सच्चे मनसे कहेंगे, तो उन पर आपके कहनेका प्रभाव पड़ेगा और वे आपके साथ सहयोग करेंगे — जैसे उन्होंने कुछ समय पहले किया था, जब

भारतको अकालसे बचानेके लिए उन्होंने अतिरिक्त चावलके बदलेमें इंडोनेशियाको भेजनेके लिए कपड़ा दिया था। परन्तु पहले आपका यह विश्वास पक्का होना चाहिये; फिर तो सभी बातें ठीक हो जायंगी। १

३१

कांग्रेसी मंत्रि-मंडल और नई तालीम

सन् १९४० में जब सात प्रान्तोंके कांग्रेसी मंत्रि-मंडलोंने इस्तीफा दिया, तो वहां १९३५ के भारतीय शासन विधानकी ९३ वीं धाराका गवर्नरी राज्य कायम हुआ। उन राज्योंमें कांग्रेसी मंत्रि-मंडलों द्वारा शुरु की गई नई तालीमकी योजनाओं और शराबबन्दी, ग्राम-सुधार तथा देहातके बुनियादी उद्योगोंको फिरसे जिलानेके कार्यक्रमको सबसे बड़ा धक्का पहुंचा। कांग्रेसी मंत्रि-मंडलोंने जब फिरसे शासनकी बागडोर अपने हाथमें ली, तो कुदरती तौर पर सबसे पहले उन्होंने अपने प्रयोगोंकी बची-खुची निशानियोंको बरबादीसे बचानेके लिए १९४० में छोड़े हुए कामोंको फिरसे हाथमें लेनेकी तरफ ध्यान दिया।

श्री बालासाहब खेरका न्यौता पाकर कांग्रेसी प्रांतोंसे आये हुए शिक्षा-विभागके मंत्रियोंकी एक कान्फरेन्स श्री खेरकी अध्यक्षतामें पूनाके कौंसिल हॉलमें २९ और ३० जुलाई, १९४६ को हुई। न्यौता तो सभी प्रांतोंके मंत्रियोंको दिया गया था, लेकिन उनमें से दो प्रांतके मंत्री कान्फरेन्समें शरीक न हो सके। २९ जुलाईको तीसरे पहर गांधीजी एक घंटेसे भी ज्यादा कान्फरेन्समें बैठे थे। सरकारी और उनसे जुड़ी हुई संस्थाओंमें नई तालीमके प्रयोगको जरूर धक्का लगा था। लेकिन तालीमी संघमें, जो गांधीजीकी दूरंदेशीसे हर मुसीबतका सामना करनेके लिए पूरी तरह तैयार था, वह प्रयोग उसी तरह चलता रहा। पहले सात साल पूरे हो जानेसे नई तालीमकी उमर पुख्ता हो चुकी है।

नजरबन्दीसे छूटनेके बाद सन् १९४४ में जब गांधीजी तालीमी संघके सदस्योंसे पहले-पहल मिले, तो उन्होंने समझाया कि अब आपका प्रयोग इस हद तक पहुंच गया है जब कि नई तालीमका क्षेत्र बढ़ाया जाना चाहिये। अब आपको अपने क्षेत्रमें पोस्ट-बेसिक यानी नई तालीमके बादकी और प्री-बेसिक यानी नई तालीमके पहलेकी ट्रेनिंग भी शामिल करनी चाहिये। नई तालीमको सच्चे अर्थमें जीवनकी तालीम बन जाना चाहिये। इसी दलीलको आगे बढ़ाते हुए गांधीजीने कान्फरेन्सके लोगोंको यह समझाया कि किस लाइन पर नई तालीमका क्षेत्र बढ़ाना चाहिये और मंत्रियोंका इस बारेमें क्या कर्तव्य है। गांधीजी डॉ० जाकिर हुसैनके प्रश्नके उत्तरमें बोल रहे थे। डॉक्टर साहबको यह डर था कि जरूरतसे ज्यादा जोशमें आकर कोई ऐसी जिम्मेदारी सिर पर न ले ली जाय, जिसे पूरा न किया जा सके। ऐसा जोशभरा कार्यक्रम, जिसे अमली रूप देनेके साधन हमारे पास न हों, हमें झंझटमें फसानेवाला और खतरनाक साबित होगा।

'अगर मैं मंत्री होता'

गांधीजीने कहा . "हमें क्या करना चाहिये, यह तो मैं अच्छी तरह जानता हू, लेकिन वह किस तरह किया जाय, यह मैं ठीक ठीक नहीं जानता। अभी तक जो रास्ता आपने तय किया है, उसकी सही जानकारी आपको थी। लेकिन अब आपको ऐसे रास्ते पर आगे बढ़ना है, जिस पर कभी कोई चला नही। मैं आपकी मुश्किलोंको खूब समझता हूं। जो लोग (शिक्षाकी) पुरानी परम्परामें पले हैं, उनके लिए उसे एकबारगी ठुकरा देना आसान काम नहीं है। अगर मैं मंत्री होता तो मैं इस तरहकी खास सूचनायें जारी करता कि आगेसे शिक्षासे सम्बन्ध रखनेवाला सरकारका समूचा काम नई तालीमकी लाइन पर चलेगा। कई प्रान्तोंमें प्रौढ़ शिक्षाका आन्दोलन शुरू किया गया था। अगर मेरी चले तो मैं उसे भी किसी बुनियादी हाथ-उद्योगके जरिये ही चलाऊं। मेरे खयालसे कताई और उससे जुड़े हुए काम इसके लिए

सबसे अच्छे हाथ-उद्योग हैं। लेकिन किस जगह कौनसे हाथ-उद्योगके जरिये तालीम दी जाय, यह बात मैं काम करनेवालों पर ही छोड़ दूंगा। क्योंकि मेरा यह पूरा विश्वास है कि जिसके भीतर जरूरी खूबियां होंगी, वही हाथ-उद्योग आखिरमें जिन्दा रहेगा। इन्स्पेक्टरों और शिक्षा-विभागके दूसरे अधिकारियोंका यह कर्तव्य है कि वे लोगों और स्कूलोंके शिक्षकोंके पास जायं और प्रेमसे दलीलें दे-देकर सरकारके शिक्षा-विभागकी नई नीतिकी कीमत और उससे होनेवाले लाभ उन्हें समझायें। ऐसा करनेमें जबरदस्ती कभी न की जाय। अगर इस नीतिमें उनकी श्रद्धा नहीं है, या वे ईमानदारीसे इस पर अमल करना नहीं चाहते, तो मैं उन्हें इस्तीफा देकर चले जानेकी छूट दूंगा। लेकिन अगर मंत्री अपना कर्तव्य समझ लें और इस नीतिको अमली रूप देनेकी कोशिश करें, तो यह नौबत ही न आये। सिर्फ आदेश निकाल देनेसे काम नहीं चलेगा।"

युनिवर्सिटी-शिक्षाकी कायापलट

"प्रौढ़-शिक्षाके बारेमें मैंने जो कहा, वह युनिवर्सिटी-शिक्षा पर भी उसी तरह लागू होता है। उसका हिन्दुस्तानकी जरूरतोंके साथ पूरा-

लोगोंको लूट-पाटके लिए भड़काकर अपनी कुढ़न मिटाते हैं। लोगोंसे भीख मांगने या उनके टुकड़ोंके मोहताज बननेमें भी वे शर्म महसूस नहीं करते। उनकी दुर्दशाकी भी कोई हद है! आज युनिवर्सिटियोंको चाहिये कि वे देशको आजादीके लिए जीने और मरनेवाले जनताके सेवक तैयार करें। इसलिए मेरी राय है कि तालीमी संघके शिक्षकोंको मदरसे युनिवर्सिटी-शिक्षाको नई तालीमके साथ जोड़कर उसकी लाइनमें ले आना चाहिये।

"आपने लोगोंके प्रतिनिधियोंके नाते शासनकी बागडोर संभाली है। इसलिए अगर आप लोगोंको अपने साथ नहीं ले सके, तो आपके आदेश कौंसिल हॉलकी चहारदीवारीके आगे नहीं बढ़ पायेंगे। आज बम्बई और अहमदाबादमें जो कुछ हो रहा है उससे अगर यह जाहिर होता है कि लोगों परसे कांग्रेसका प्रभाव उठ गया है, तो वह बुरा शकुन ही कहा जायगा। नई तालीम आज भी एक कमजोर पौधा ही है, फिर भी वह भविष्यमें बड़े भारी वृक्षका रूप लेगी। लेकिन अगर जनता उसे पसन्द न करे, तो मंत्रियोंके आदेशोंके सहारे वह पनप नहीं सकती। इसलिए अगर आप जनताको अपनी रायकी नहीं बना सकते, तो मैं आपको सलाह दूंगा कि आप इस्तीफा दे दें। आपको अराजकतासे डरना नहीं चाहिये। आप लोग अपनी बुद्धिके कहे अनुसार अपना कर्तव्य पूरा करें और बाकी सब भगवानके भरोसे छोड़ दें। उस अनुभवसे भी लोग सच्ची आजादीका सबक सीखेंगे।"

इसके बाद गांधीजीने लोगोंसे प्रश्न पूछनेके लिए कहा। पहला प्रश्न था. "क्या स्वावलम्बनके सिद्धान्तके बिना भी नई तालीम दी जा सकती है?"

गांधीजीने उत्तर दिया: "आप बेशक इसकी कोशिश कर सकते हैं। लेकिन अगर आप मेरी सलाह पूछेंगे, तो मैं यही कहूंगा कि वैसी हालतमें आपका नई तालीमको पूरी तरह भूल जाना ही बेहतर होगा। स्वावलम्बन मेरे लिए नई तालीमकी पहली शर्त नहीं, बल्कि उसके

सच्ची कसौटी है। इसका मतलब यह नहीं कि नई तालीम शुरूसे ही स्वावलम्बी बन जायगी। नई तालीमकी योजनाके अनुसार सात सालके पूरे अरसेमें आय और खर्चका हिसाब बराबर बैठना चाहिये। नहीं तो विद्यार्थियोंकी ट्रेनिंग पूरी होनेके बाद यही साबित होगा कि नई तालीम उन्हें जीवनकी तालीम नहीं दे सकती। स्वावलम्बनके बिना नई तालीम वैसी ही मानी जायगी, जैसे बिना प्राणका शरीर।"

इसके बाद और भी प्रश्नोत्तर हुए।

प्र० — हमने बुनियादी हाथ-उद्योगके जरिये शिक्षा देनेके सिद्धान्तको मान लिया है। लेकिन मुसलमान किसी वजहसे चरखेके खिलाफ हैं। जिन जगहोंमें कपास पैदा होती है, वहां तो आपका कताई पर जोर देना ठीक मालूम होता है। लेकिन क्या आप इस बातको नहीं मानते कि जहां कपास पैदा नहीं होती, वहां चरखे और कताईके लिए कोई जगह नहीं है? क्या ऐसी जगहोंमें कताईके बजाय कोई दूसरा हाथ-उद्योग नहीं लिया जा सकता, उदाहरणके लिए खेती?

उ० — यह बहुत पुराना प्रश्न है। कोई भी बुनियादी हाथ-उद्योग, जिसके जरिये शिक्षा दी जाय, सब जगहके लिए उपयुक्त होना चाहिये। सन् १९०८ में ही मैं इस नतीजे पर पहुंच गया था कि हिन्दुस्तानको आजाद करने और उसको अपने पांव पर खड़ा होने लायक बनानेके लिए उसके हर घरमें चरखा चलना चाहिये। कपासकी एक डोंड़ी भी पैदा न करके अगर इंग्लैंड सारी दुनियाको और हिन्दुस्तानको कपड़ा भेज सकता है, तो सिर्फ पड़ोसके प्रांत या जिलेसे कपास मंगाकर भी क्या हम अपने घरोंमें कताई शुरू नहीं कर सकते? सच पूछा जाय तो पुराने जमानेमें हिन्दुस्तानका एक भी ऐसा हिस्सा नहीं था, जहां कपास न पैदा की जाती हो। सिर्फ 'कपास पैदा कर सकनेवाली धरती' में ही कपास पैदा की जाय, यह हानिकारक बात तो हाल ही सूती माल तैयार करनेवाले ब्रिटिश स्वार्थोंने हिन्दुस्तान पर जबरन् लादी है। ऐसा करनेमें उन्होंने गरीब टैक्स देनेवालों और सूत कातनेवालोंके

हिकी जरा भी परवाह नहीं की। आज भी पेड़की कपास हिन्दुस्तानमें हर जगह मिलती है। ऐसी लचर दलीलें यह साबित करती हैं कि कोई कठिन काम हाथमें लेनेकी और मौका आने पर नये-नये साधन खोज निकालनेकी हममें योग्यता नहीं है। अगर कच्चे मालको एक जगहसे दूसरी जगह ले जानेके कामको दूर न की जा सकनेवाली अड़चन मान लिया जाय, तो सारे कारखाने बन्द हो जाय।

इसके अलावा, किसी आदमीको उसकी कोशिशोंसे अपना तन ढंकने लायक बना देना — जब कि ऐसा न किये जाने पर उसे नंगा रहना होगा — अपने आपमें एक शिक्षा है। और कताईसे संबंध रखनेवाले अलग-अलग कामोंकी बुद्धिपूर्वक छान-बीन की जाय, तो उससे कई बातें सीखी जा सकती हैं। सच पूछा जाय तो कताईमें मनुष्यकी सारी शिक्षा समाई हुई है, जो दूसरे किसी हाथ-उद्योगमें नहीं मिलेगी। हो सकता है कि आज हम मुसलमानोंका शक दूर न कर सकें, क्योंकि उसकी जड़में उनका भ्रम है। और जब तक मनुष्य पर भ्रमका जादू बना रहता है, तब तक भ्रम ही उसे सच्चा मालूम होता है। लेकिन अगर हमारी श्रद्धा शुद्ध और दृढ़ है और हम अपनी इस पद्धतिकी सफलता उन्हें दिखा सकें, तो मुसलमान खुद होकर हमारे पास आयेंगे और हमारी सफलताका रहस्य हमसे जानना चाहेंगे। अभी तक उन्होंने यह महसूस नहीं किया है कि मुस्लिम लीग या दूसरी मुस्लिम संस्थाओंके बनिस्बत चरखेने ही गरीबसे गरीब मुसलमानोंकी अधिक सच्ची सेवा की है, मुसीबतमें उन्हें ज्यादासे ज्यादा राहत पहुंचाई है। बंगालके सबसे ज्यादा कतवैये और कतिनें मुसलमान ही हैं। मुसलमानोंको यह भी नहीं भूलना चाहिये कि ढाकाकी शबनमकी प्रसिद्धिको सारी दुनियामें फैलानेवाले कुशल मुसलमान जुलाहे ही थे और सफाईके साथ बारीकसे बारीक सूत कातनेवाली मुसलमान कत्तिनें ही थीं।

यही बात महाराष्ट्र पर भी लागू होती है। इस भ्रमका सबसे अच्छा इलाज यह है कि हम अपना कर्तव्य पूरा करनेका ही ध्यान रखें। अकेली सचाई ही कायम रहेगी, बाकी सब समयके बहावमें बह जायगा। सारी दुनिया मुझे छोड़ दे, तो भी मुझे अकेले ही अपनी सच्ची बात पर डटे रहना चाहिये। हो सकता है कि आज मेरी आवाज कोई न सुने। लेकिन अगर वह सच्ची है, तो दूसरी आवाजोंके शांत हो जाने पर लोग उसे जरूर सुनेंगे।

बुराइयोंका घेरा

अविनाशलिंगम् चेट्टियरने अंग्रेजीमें पूछा: "नई तालीमके लिए योग्य शिक्षक तैयार करनेमें समय लगेगा। इस बीच स्कूलोंकी शिक्षामें प्रगति करनेके लिए क्या किया जाना चाहिये?" गांधीजीने उन्हें अंग्रेजीमें प्रश्न करनेके लिए चिढ़ाते हुए हंसीके फव्वारोंके बीच सुझाया: "अगर आप हिन्दुस्तानीमें नहीं बोल सकते थे, तो आपको अपने पड़ोसीके कानमें धीरेसे यह बात कह देनी थी और वे मुझे हिन्दुस्तानीमें उसे कह सुनाते!"

गांधीजीने आगे चलकर कहा: "अगर आप यह महसूस करते हैं कि आजकी शिक्षा हिन्दुस्तानको आजाद बनानेके बजाय उसकी गुलामीको और ज्यादा बढ़ाती है, तो आप उसे प्रोत्साहन देनेसे इनकार कर दें, भले ही उसकी जगह कोई दूसरी शिक्षा ले या न ले। आप नई तालीमकी चहारदीवारीके भीतर जितना कर सकें उतना करें और उससे सन्तोष मानें। अगर लोग इस शर्त पर मंत्रियोंको उनकी जगह रखना नहीं चाहते, तो वे इस्तीफा दे दें। वे लोगोंको जीवन देनेवाला खाना नहीं दे सकते या लोग ऐसा खाना पसन्द नहीं करते, इस कारणसे लोगोंको जहर खिलानेमें तो वे कभी हाथ नहीं बंटायेंगे।"

प्र० — आप कहते हैं कि नई तालीमके लिए हमें पैसेकी नहीं, बल्कि आदमियोंकी जरूरत है। लेकिन लोगोंको सिखानेके लिए हमें संस्थाओंकी जरूरत होगी और संस्थाओंके लिए पैसेकी भी। हम बुराइयोंके इस घेरेसे कैसे बाहर निकलें?

उ० — इसका इलाज आपके ही हाथोंमें है। अपने-आपसे यह काम शुरू कीजिये। अंग्रेजोंकी एक अच्छी कहावत है 'दान घरसे शुरू होता है।' लेकिन आप गुरु साहब बनकर आराम-कुर्सी पर बैठें और दूसरे 'कम योग्यतावालों' से आशा करें कि वे इस कामके लिए तैयार हों, तो आपको सफलता नहीं मिल सकती। काम करनेका मेरा ढंग इससे अलग है। बचपनसे मेरी यह आदत रही है कि मैंने अपने-आपसे और आसपासके लोगोंसे ही किसी कामकी शुरुआत की है — फिर वह कितने ही छोटे रूपमें क्यों न हो। इस बारेमें हम ब्रिटिश लोगोंसे सीख लें। पहले-पहल सिर्फ मुट्ठीभर अंग्रेज हिन्दुस्तानमें आकर बसे और धीरे-धीरे उन्होंने अपना एक साम्राज्य खड़ा कर लिया। यह साम्राज्य राजनीतिक दृष्टिसे उतना डरावना नहीं है जितना कि सांस्कृतिक दृष्टिसे। उसने हम पर ऐसा जादू डाला है कि हम अपनी मातृभाषाको भी भूल गये हैं और अंग्रेजोंके वशमें होकर उनसे वैसे ही चिपटे रहते हैं, जैसे एक गुलाम अपनी बेड़ियोंसे चिपटा रहता है। लेकिन इस साम्राज्य-निर्माणके पीछे कितनी श्रद्धा, कितनी भक्ति, कितनी कुरबानी और कितनी मेहनत छिपी हुई है! यह इस बातका प्रमाण है कि इच्छा होने पर रास्ता भी निकल ही आता है। इसलिए हम उठें और दृढ़ निश्चयके साथ अपने काममें लग जायं। यदि रास्तेमें आनेवाले बड़ेसे बड़े खतरोंकी भी हम परवाह न करें, तो हमारी सारी मुश्किलें दूर हो जायंगी।

अंग्रेजीका स्थान

प्र० — इस कार्यक्रममें अंग्रेजीका क्या स्थान रहेगा? क्या उसे अनिवार्य बनाया जाना चाहिये या दूसरी भाषाकी तरह पढ़ाया जाना चाहिये?

उ० — मेरी मातृभाषामें कितनी ही खामियां क्यों न हों, मैं उससे उसी तरह चिपटा रहूंगा जैसे अपनी माकी छातीसे। वही मुझे जीवन देनेवाला दूध दे सकती है। मैं अंग्रेजीको उसकी जगह

हूं। लेकिन अगर वह उस जगहको हड़पना चाहती है, जिसकी वह अधिकारिणी नहीं है, तो मैं उसका कड़ा विरोध करूंगा। यह बात मानी हुई है कि अंग्रेजी आज सारी दुनियाकी भाषा बन गई है। इसलिए मैं उसे दूसरी भाषाके रूपमें स्थान दूंगा — लेकिन युनिवर्सिटीके पाठचक्रममें, स्कूलोंमें नहीं। वह कुछ लोगोंके सीखनेकी चीज हो सकती है, लाखों-करोड़ोंकी नहीं। आज जब हमारे पास प्राथमिक शिक्षाको भी देशमें अनिवार्य बनानेके साधन नहीं हैं, तो हम अंग्रेजी सिखानेके साधन कहांसे जुटा सकते हैं? रूसने बिना अंग्रेजीके ही विज्ञानमें इतनी प्रगति की है। आज अपनी मानसिक गुलामीकी वजहसे ही हम यह मानने लगे हैं कि अंग्रेजीके बिना हमारा काम चल ही नहीं सकता। मैं इस बातको नहीं मानता। १

३२

विदेशी माध्यम

विदेशी माध्यमसे हमारे विद्यार्थी दिमागी थकावटके शिकार हुए हैं, उनके ज्ञानतंतुओं पर अनुचित भार पड़ा है, वे रट्टू और नकलची बन गये हैं, मौलिक कार्य और विचारके लिए वे अयोग्य हो गये हैं और अपनी विद्याको परिवार अथवा जन-साधारण तक पहुंचानेमें असमर्थ हो गये हैं। विदेशी माध्यमने हमारे बालकोंको अपने ही देशमें लगभग विदेशी बना डाला है। वर्तमान पद्धतिका यह सबसे बड़ा दुःखद परिणाम है। विदेशी माध्यमने हमारी देशी भाषाओंके विकासको रोक दिया है। अगर मेरे पास एक निरंकुश शासककी सत्ता हो, तो मैं विदेशी माध्यमके द्वारा हमारे लड़कों और लड़कियोंकी पढ़ाई आज ही रोक दूं और तमाम शिक्षकों और अध्यापकोंसे कह दूं कि अगर बरखास्त नहीं होना है तो इसे फौरन ही बदल दें। मैं पाठ्य-पुस्तकोंके तैयार होनेकी प्रतीक्षा नहीं करूंगा। वे इस परिवर्तनके बाद तैयार

हो सकती। यह एक ऐसी बुराई है, जिसका इलाज एकदम हो जाना चाहिये। १

विदेशी भाषाके माध्यमने, जिसके जरिये भारतमें उच्च शिक्षा दी जाती है हमारे राष्ट्रको हदसे ज्यादा बौद्धिक और नैतिक हानि पहुंचाई है। अभी हम अपने इस जमानेके इतने नजदीक हैं कि इस हानिका निर्णय नहीं कर सकते। और, फिर ऐसी शिक्षा पानेवाले हमीं लोगोंको इसका शिकार और न्यायाधीश दोनों बनना है, जो कि लगभग असम्भव काम है।...

इस झूठी और हमें अराष्ट्रीय बनानेवाली शिक्षा द्वारा हमारे करोड़ों लोगोंके साथ लगातार और दिन-दिन बढ़ता हुआ जो अन्याय हो रहा है, उसका प्रमाण मुझे रोज-रोज मिलता है। जो ग्रेजुएट मेरे साथी हैं वे खुद अटक जाते हैं, जब उन्हें अपने आन्तरिक विचार प्रकट करने होते हैं। वे अपने ही घरोंमें अजनबी हैं। मातृभाषाके शब्दोंका उनका ज्ञान इतना सीमित है कि वे अंग्रेजी शब्दों और वाक्योंका आश्रय लिये बिना अपनी बात हमेशा पूरी नहीं कर सकते। न वे अंग्रेजी पुस्तकोंके बिना रह सकते हैं। वे बहुधा एक-दूसरेको अंग्रेजीमें पत्र लिखते हैं। अपने साथियोंकी बात मैं यह दिखानेको कह रहा हूं कि यह बुराई कितनी गहरी पैठ गई है, क्योंकि हमने तो अपना सुधार करनेकी जान-बूझकर कोशिश की है।

यह बुराई इतनी गहरी पैठी हुई है कि कोई साहसपूर्ण उपाय ग्रहण किये बिना काम नहीं चल सकता। हां, कांग्रेसी मंत्री चाहें तो इस बुराईको कम तो कर ही सकते हैं, भले वे इसे दूर न कर सकें।

विश्वविद्यालयोंको स्वावलम्बी जरूर बनाना चाहिये। राज्यको तो साधारणतः उन्हींको शिक्षा देनी चाहिये, जिनकी सेवाओंकी उसे आवश्यकता हो। अन्य सब दिशाओंके अध्ययनके लिए उसे खानगी प्रयत्नको प्रोत्साहन देना चाहिये। शिक्षाका माध्यम तुरन्त और

भी कीमत पर बदला जाना चाहिये और प्रान्तीय भाषाओंको उनका उचित स्थान मिलना चाहिये। जो दण्डनीय बरबादी नित्य बढ़ती जा रही है, उसके बजाय मैं यह ज्यादा पसन्द करूंगा कि थोड़े अरसेके लिए उच्च शिक्षामें अव्यवस्था फैल जाय।

प्रान्तीय भाषाओंका दर्जा और व्यावहारिक मूल्य बढ़ानेके लिए मैं चाहूंगा कि अदालतोंकी भाषा उस प्रान्तकी भाषा हो जहां अदालतें स्थित हों। प्रान्तीय विधानसभाकी कार्रवाई प्रान्तकी भाषामें होनी चाहिये; और यदि किसी प्रान्तकी सीमाके भीतर अनेक भाषायें हों, तो उन सारी भाषाओंमें होनी चाहिये। विधानसभाओंके सदस्योंसे मेरा कहना है कि वे काफी मेहनत करें, तो एक मासके भीतर अपने प्रान्तोंकी भाषायें समझ सकते हैं। एक तामिल निवासीके लिए ऐसी कोई रुकावट नहीं है कि वह तामिल भाषासे सम्बन्धित तेलगु, मलयालम और कन्नड़ भाषाओंका मामूली व्याकरण और कुछ सौ शब्द आसानीसे न सीख सके। केन्द्रमें हिन्दुस्तानीका ही राज्य होना चाहिये। २

अब जब कि शिक्षा-पद्धतिमें सुधार करनेका समय आ गया है, तो कांग्रेसजनोंको अधीर हो जाना चाहिये। यदि शिक्षाका माध्यम धीरे-धीरे बदलनेके बजाय एकदम बदल दिया जाय, तो बहुत ही शीघ्र हम देख सकेंगे कि आवश्यकताको पूरा करनेके लिए पाठ्य-पुस्तकें भी प्राप्त हो रही हैं और अध्यापक भी। और यदि हम प्रामाणिकता और सच्ची लगनसे काम करना चाहते हैं, तो एक ही सालमें हमें यह मालूम हो जायेगा कि हमें विदेशी माध्यम द्वारा सभ्यताका पाठ पढ़नेके प्रयत्नमें राष्ट्रका समय और शक्ति नष्ट करनेकी जरूरत नहीं है। सफलताकी शर्त यही है कि सरकारी दफ्तरोंमें और अगर प्रान्तीय सरकारोंका अपनी अदालतों पर अधिकार हो तो उन अदालतोंमें भी प्रान्तीय भाषायें तुरन्त जारी कर दी जायें। यदि सुधारकी आवश्यकतामें हमारा विश्वास हो, तो हम उसमें तुरन्त सफल हो सकते हैं। ३

३४

साहित्यमें गंदगी

लाहौरके 'यूथ्स वेल्फेयर एसोसियेशन' के अवैतनिक मंत्रीका मुझे एक पत्र मिला है। इस पत्रमें अश्लीलता और कामुकतासे भरे काफी नमूने पाठ्य-पुस्तकोंसे उद्धृत किये गये हैं, जिन्हें विभिन्न विश्वविद्यालयोंने अपने पाठ्यक्रमोंमें रखा है। ये ऐसे गंदे अवतरण हैं कि पढ़नेमें घिन मालूम होती है। हालांकि ये पाठ्यक्रमकी पुस्तकोंमें से लिये गये हैं, फिर भी इन्हें उद्धृत करके मैं 'हरिजन' के पृष्ठोंको गंदा नहीं करूंगा। मैंने जितना भी साहित्य पढ़ा है, उसमें इतनी गंदगी कभी मेरी नजरसे नहीं गुजरी है। इन अवतरणोंको निष्पक्ष रीतिसे संस्कृत, फारसी और हिन्दीके कवियोंकी रचनाओंमें से लिया गया है। . . . लेकिन यह एक ऐसा प्रसंग है, जो विद्यार्थियों द्वारा की गई हड़तालको न सिर्फ उचित ही ठहराता है, वल्कि मेरी रायमें उनका यह फर्ज हो जाता है कि ऐसा साहित्य अगर उनके ऊपर जवरन् लादा जाय, तो उसके खिलाफ वे विद्रोह भी करें।

किसीको चाहे जो पढ़नेकी स्वतंत्रता देनेका वचाव करना, यह एक वात है। लेकिन यह विलकुल जुदी वात है कि नौजवान लड़कों-लड़कियोंको ऐसे साहित्यका परिचय कराया जाय, जिससे निश्चय ही उनके काम-विकारोंको उत्तेजन मिलता हो और ऐसी चीजोंके वारेमें वाहियात कुतूहल मनमें पैदा हो जिनका ज्ञान आगे चलकर उचित समय पर और जरूरी हद तक उन्हें जरूर हो जायेगा। बुरा साहित्य तव कहीं अधिक हानि पहुंचाता है जव कि वह निर्दोष साहित्यके रूपमें हमारे सामने आता है और उस पर वड़े वड़े विश्वविद्यालयोंके प्रकाशनकी छाप लगी होती है।

उक्त एसोसियेशनने मुझे लिखा है कि मैं कांग्रेसी मंत्रियोंसे यह अपील करूं कि वे पाठ्यक्रममें से ऐसी पुस्तकों या उन अंशोंको, जो कि

आपत्तिजनक है, हटवा देनेके लिए जो भी उपाय सभव हो वह करे। मैं इस लेख द्वारा सहर्ष ऐसी अपील न केवल कांग्रेसी मंत्रियोसे बल्कि सभी प्रान्तोंके शिक्षामंत्रियोंसे करता हू । निश्चय ही, विद्यार्थियोकी बुद्धिके स्वस्थ विकासमें तो सभी एकसी दिलचस्पी रखते हैं। १

३५

जुआ, वेश्यागृह और घुड़दौड़

जिन प्रान्तोंमें कांग्रेसको बहुमत प्राप्त हुआ है, वहाके लोगोमें तरह तरहकी आशाए पैदा हुई हैं। उनमें से कुछ बेशक उचित हैं और उन्हें निश्चित रूपसे पूरा किया जायगा। कुछ आशायें पूरी नही की जा सकती। उदाहरणके लिए, जो लोग जुआ खेलते हैं — दुर्भाग्यसे बम्बई प्रदेशमें यह बुराई बढती जा रही है — वे मानते हैं कि जुएको कानूनी मान्यता मिल जायगी और बम्बईमें जो जगह जगह चोरी-छिपे जुआघर चलते हैं उनकी अब जरूरत नही रह जायगी। आज जहा जहा जुआ चलता है वहां सबको उसे चलानेकी कानूनी मंजूरी — आज जिस प्रकार मर्यादित रूपमें है उसी प्रकार — दे दी जाय, तब भी चोरी-छिपे चलनेवाले गैर-कानूनी जुआघर नही रहेंगे, इसका मुझे पूरा विश्वास नहीं है। एक सुझाव यह दिया गया है कि टर्फ क्लबको, जिसके पास आज रेसकोर्सका जुएका ठेका है, एक अतिरिक्त दरवाजा खोलनेकी छूट दी जानी चाहिये, ताकि गरीब लोगोंको जुआ खेलनेकी अधिक सुविधा हो जाये। इसके लिए अतिरिक्त आयका लालच बतलाया जाता है।

इसी प्रकारका दूसरा सुझाव यह है कि वेश्यागृहों पर नियन्त्रण लगाना चाहिये और उसके लिए परवाने दिये जाने चाहिये। सब मामलोंमें, जैसा कि अक्सर होता है, दलील यह की जाती इस दुराचारको कानूनी मान्यता दी जाये या नहीं।

रेसकोर्सके जुएके बारेमें मैं तो यही कहूंगा कि जहां तक मैं जानता हूं यह और बहुतसी दूसरी बुराइयोंकी तरह पश्चिमसे ही यहां आई है। और मेरा मत है कि रेसकोर्सके जुएको आजकल जो कानूनी संरक्षण मिला हुआ है उसे भी मैं जानता हूं। १९२० के प्रस्तावमें स्पष्ट शब्दोंमें कहा गया है कि कांग्रेसका कार्यक्रम आत्म-शुद्धिका है, इसलिए कांग्रेस किसी भी प्रकारके दुराचारसे आय प्राप्त करनेका विचार तक ही नहीं करती। इसलिए मंत्रियोंको जो सत्ता प्राप्त हुई है उसका उपयोग वे लोकमतको सही दिशामें मोड़ने और प्रतिष्ठित वर्गोंमें चल रहे जुएको रोकनेके लिए करेंगे। यह उम्मीद करना व्यर्थ है कि भोले अनजान लोग प्रतिष्ठित माने जानेवाले लोगोंका अनुकरण नहीं करेंगे। मैंने यह दलील सुनी है कि अच्छे नस्लके घोड़े-की औलाद तैयार करनेके लिए घुड़दौड़ जरूरी है। शायद इसमें सत्य हो सकता है। लेकिन क्या घुड़दौड़ जुएके विना सम्भव नहीं है? या जुआ भी घोड़ेकी नस्ल सुधारनेमें मददगार है? १

घुड़दौड़में होनेवाली लोगोंकी और पैसेकी बरबादीके बारेमें पहले मैं लिख चुका हूं। लेकिन एक मित्र कड़ा पत्र लिखते हुए कहते हैं कि घुड़दौड़में खेला जानेवाला जुआ शराबखोरीसे कम बुरा नहीं है।

हूं। लेकिन उसकी मूलभूत कल्पना इतनी निर्दोष और आवश्यक है कि यही आश्चर्य होता है कि इस दक्षिणी प्रान्तके कानूनकी पुस्तकमें अब तक उसे कोई स्थान नहीं मिला। डॉ० मुथुलक्ष्मीसे मैं इस विषयमें पूर्ण सहमत हूं कि यह सुधार भी उतना ही जरूरी है जितना शराव-वन्दी। उन्होंने इस वातकी भी याद दिलाई है कि वर्तमान प्रधान-मंत्रीने वरसों पहले इस वुराईकी वड़े कड़े शब्दोंमें निन्दा की थी। मैं जानता हूं कि इस वुराईको दूर करनेकी कुछ सत्ता उनके हाथोंमें आने पर प्रधानमंत्रीकी यह उत्सुकता जरा भी कम नहीं हुई है। डॉ० मुथुलक्ष्मीके साथ साथ मैं भी यह आशा कर रहा हूं कि चन्द महीनोंमें ही इस वुराईका कानूनी पृष्ठवल हट जायगा। १

३७

मंत्रि-मंडल और हरिजनोंकी समस्यायें

भुसावल तालुकेमें हरिजन-कार्य

श्री ठक्करवापा लिखते हैं:

"भुसावल तालुकेमें वड़े पैमाने पर सुन्दर हरिजन-कार्य करनेका निश्चय किया गया है। इसके लिए पिछली १४ मईको दो सभाएं रखी गई थीं। श्री वैकुंठभाई मेहता, श्री गणपतराव तपासे, श्री वर्वे, श्री दास्ताने और मैं — इतने लोग उन सभाओंमें उपस्थित थे। आशा है कि गांवोंमें हरिजनोंके लिए कुएं खुल जायंगे। ग्रामवासियोंने अच्छा उत्साह दिखाया है। इससे सफलता-की आशा रखी जाती है। लक्षण अच्छे मालूम होते हैं।

यह अच्छी वात है। अच्छे लक्षणोंमें सवसे पहला तो शायद कांग्रेसी मंत्रि-मंडलका होना ही है। इसका यह अर्थ नहीं है कि अव जवरदस्तीसे काम लिया जायगा। ऐसे कामोंमें जवरदस्तीकी कमसे कम गुंजाइश होती है। जो वात लोगोंकी रग-रगमें घुस गई है और जिसने

ऐसा बाना पहन रखा है, जो जबरदस्तीसे नहीं निकाला जा सकता। परन्तु जब राज्य विदेशी होता है, तो उसकी शक्ति दबे हुए लोगोंको अधिक दबानेमें खर्च होती है; और अगर दबी हुई प्रजाकी मदद भी की जाती है, तो वह भी या तो शक्तिके जोर पर की जाती है या अपना स्वार्थ साधनेके लिए की जाती है। ऐसी सरकार जो कुछ करती है, वह जबरदस्तीसे ही करती है। कांग्रेसने यहाँ जोर आजमा कर नहीं पाई है। उसकी बुनियाद लोकमत पर टिकी हुई है। इसलिए हम आशा रखें कि कांग्रेसी मंत्री लोगोंको समझा-बुझा कर उनकी मददसे ही यह काम आगे बढ़ायेंगे। इसका नतीजा यह होना चाहिये कि उनके क्षेत्रमें हरिजन-सेवा और ऐसे अन्य काम ज्यादा जोरसे चलें और उनमें रुकावट डालनेवाली ताकतें अपने आप शांत हो जायें। भुसावल जैसे छोटेसे तालुकेमें भी काम स्थिर रूपमें चले, तो उसका फल अधिक अच्छा निकलेगा। सारे देशमें एक ही साथ सब जगह काम हाथमें नहीं लिया जा सकता। जहां कार्यकर्ता अधिक बुद्धिमान और प्रभावशाली होंगे, वहां यह काम अधिक तेजीसे चलेगा। इस छोटेसे क्षेत्रमें भी खूब अच्छा काम हो सके, तो दूसरे भी उसकी नकल करने लग जायंगे और सफलता जल्दी मिलेगी। हम आशा रखें कि भुसावल तालुकेमें ऐसा ही होगा। १

हरिजन और कुएं

श्री हरदेव सहाय लिखते हैं :

"कल शामके (४–९–'४६) अपने प्रवचनमें हरिजनोंके कष्टोंकी ओर ध्यान दिलाते हुए आपने यह कहा था कि उनको कुओंसे पानी नहीं भरने दिया जाता। पिछले २५ वर्षोंकी सतत कोशिशोंके बावजूद हरिजनोंका यह कष्ट अभी तक दूर नहीं हो सका है। हरिजनोंके कष्टोंको आपसे अधिक जाननेवाला दूसरा कोई नहीं है।

"सेवककी तुच्छ रायमें अब कांग्रेसी सरकारोंको हरिजनों-के सम्बन्धमें अपनी नीति शीघ्र ही घोषित करके इस तरहके

कष्टोंको कानूनन् दूर करना चाहिये। सेवक आपका ध्यान इस सम्बन्धमें पंजावके हरिजनोंकी ओर दिलाना चाहता है। वहां कुओंसे पानी भरना तो दूर रहा, कुएं वनानेके लिए जमीन भी नहीं मिलती। इसलिए आपसे निवेदन है कि पंजाव सरकार द्वारा हरिजनोंको यह अधिकार मिलना चाहिये कि जहां उनको सार्वजनिक कुओंसे पानी भरनेकी मनाही हो — जैसी कि है — वहां सरकार अपने खर्चसे हरिजनोंकी आवादीके खयालसे कुएं वनवा दे, या कमसे कम हरिजनोंको अपने कुएं वनानेके लिए जमीन दिलाने या देनेका नियम वनाये। वहुतेरे गांव ऐसे हैं जहां चाहते हुए भी हरिजन अपने खर्चसे कुएं नहीं वना सकते।

"कहीं कहीं सरकारने कुएं वनाने शुरू भी किये हैं, पर वे वहुत कम हैं। हरएक प्रान्तीय सरकारका यह कर्तव्य होना चाहिये कि वह अपने सारे नागरिकोंके लिए पीनेके पानीकी व्यवस्था अवश्य करे।"

इन भाईने जो लिखा है वह ठीक ही है। हरिजनोंके लिए पानीकी व्यवस्था सरकारकी तरफसे होनी ही चाहिये। इसके लिए सिर्फ कुएं खोदनेकी जगह देना ही काफी नहीं है, उसमें कुएं खुदवा देना भी जरूरी है। २

एक बुद्धिमानीका काम

पिछड़ी हुई जातियोंके मंत्री श्री जी० डी० तपासे (बम्बई)ने बम्बईकी धारासभा द्वारा हालमें ही पास किये गये बम्बई हरिजन (रिमूवल ऑफ सोशियल डिसएबिलिटीज) एक्टकी एक प्रति मेरे पास भेजी है। उनमें से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाग मैं नीचे देता हूं:

"३. उसके विरुद्ध किसी पुराने कायदे-कानून, रीति-रिवाज अथवा परम्पराके होते हुए भी किसी हरिजनको सिर्फ हरिजन होनेके कारण —

(अ) किसी भी कानूनके मातहत किसी सरकारी नौकरीमें जगह पानेसे वंचित नहीं रखा जायगा; अथवा

(आ) (१) ऐसे किसी नदी-नाले, झरने, कुएं, तालाब, हौज, नल या पानी लेनेकी अथवा नहानेकी दूसरी जगह, मरघट या कब्रस्तान, पाखाने जैसे सार्वजनिक उपयोगके साधन, सड़क या पगडंडी तक जाने या उसका उपयोग करनेसे रोका नहीं जायगा, जिन पर पहुंचने या जिनका उपयोग करनेका अधिकार दूसरी हिन्दू जातियों और वर्गोंको प्राप्त है,

(२) प्रान्तीय सरकार या किसी स्थानीय सत्तासे परवाना पाकर किरायें पर चलनेवाली सार्वजनिक सवारी तक पहुंचनेसे या उस पर चढ़नेसे रोका नहीं जायगा;

(३) प्रान्तकी आयसे या स्थानीय सत्ताके फंडसे पूरी या आंशिक सहायता देकर बनाये गये मकान, कुए, हौज या आम लोगोंके उपयोगके वास्ते वगैरा स्थानों तक पहुंचने या उनका उपयोग करनेसे रोका नहीं जायगा,

(४) आम लोगोंके मनबहलाव या खेल-कूद वगैराके लिए बनाये गये स्थानों पर जानेसे रोका नहीं जायगा;

(५) ऐसी किसी दुकान पर जानेसे रोका नहीं जायगा, जहां दूसरी हिन्दू जातियोंको जानेका अधिकार है;

(६) ऐसे किसी स्थान पर जानेसे या उसके उपयोगसे रोका नहीं जायगा, जो हिन्दुओंके किसी खास वर्ग या समूहके लिए नहीं बल्कि सारे हिन्दुओंके लिए अलग कर दिया गया है या अलग रखा गया है;

(७) किसी खास वर्ग या समूहके लिए नहीं बल्कि आम हिन्दू जनताके भलेके लिए स्थापित किये गये धर्मादा ट्रस्टका लाभ उठानेसे रोका नहीं जायगा।

"३ अ. तीसरे विभागकी उपधारा – १, ३, ४, ५, ६ में बताये गये स्थानोंमें काम करनेवाला कोई व्यक्ति, या उपधारा-२ में बताई गई कोई सवारी रखनेवाला कोई व्यक्ति, या विभाग – ३ की धारा-ब में बताये गये स्थानोंमें काम करनेवाला कोई व्यक्ति किसी हरिजन पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगा सकता अथवा ऐसा कोई काम नहीं कर सकता, जिससे यह मालूम हो कि हरिजनोंके खिलाफ कोई भेदभाव किया जा रहा है।

"४. किसी बात पर निर्णय देने या किसी आदेश पर अमल करनेमें कोई अदालत किसी हरिजनके विरुद्ध, सिर्फ उसके हरिजन होनेके कारण, ऐसी किसी प्रथा या चलनको नहीं मान सकती, जो उस पर किसी तरहकी सामाजिक अयोग्यता लादता हो।

"५. किसी कानूनके मातहत अपना कामकाज या फर्ज अदा करनेवाली कोई स्थानीय सत्ता विभाग – ४ में कहे गये किसी रीति-रिवाजको नहीं मानेगी।

"६. जो भी कोई —

(क) हरिजन होनेके नाते किसी आदमीको तीसरे विभागकी (आ) धाराकी दूसरी उपधारामें बताई गई सवारी अथवा पहली, तीसरी, चौथी, पांचवीं और छठी उपधाराओंमें बताये गये किसी स्थान पर जानेसे या उसका उपयोग करनेसे रोकता है अथवा उसी विभागकी (आ) धाराकी सातवीं उपधारामें बताये गये किसी धर्मादा ट्रस्टका लाभ उठानेसे रोकता है, या रोकनेके लिए किसीको उकसाता है; अथवा

(ख) किसी हरिजन पर किसी प्रकारकी कोई रोक लगाता है, या उसके खिलाफ कोई भेदभाव प्रकट करनेवाला कोई काम करता है, या किसी व्यक्तिको ऐसा प्रतिबन्ध लगानेके लिए उकसाता है, या इसी तरहका और कोई काम करता

है, तो उसे अपराध सिद्ध हो जाने पर तीन माहकी कैदकी सजा दी जायगी, या उस पर २०० रु० जुर्माना किया जायगा, या दोनों सजायें दी जायंगी।

"७. अगर ऐसा कोई आदमी, जिसे इस एक्टके मातहत एक बार अपराध करने पर सजा मिल चुकी है, दुबारा वही अपराध करेगा, तो अपराध सिद्ध होने पर उसे ६ महीनेकी कैदकी सजा या ५०० रु० जुर्मानेकी सजा या दोनों सजायें दी जायगी। और अगर वही आदमी तीसरी बार या इससे अधिक बार अपराधी सिद्ध होगा, तो उसे १ सालकी कैदकी सजा दी जायगी या उससे १००० रु० जुर्मानेके वसूल किये जायगे।"

इस बिलको तैयार करनेवाले मित्रने कृपा करके अपने उस भाषणकी एक प्रति भी मेरे पास भेजी है, जो उन्होंने धारासभामें बिल पेश करते समय दिया था। उसके कुछ अत्यधिक दर्दभरे हिस्से मैं नीचे देता हूं:

"यह छुआछूत एक प्रकारका घोर अज्ञान है। जैसे ही एक हरिजन उत्पन्न होता है, वह अछूत मान लिया जाता है। . . . वह अछूत पैदा होता है, जीवन भर अछूत बना रहता है और अंतमें अछूतके रूपमें ही मर जाता है। . . . वह चाहे कितना ही साफ-सुथरा हो, कितना ही बुद्धिमान हो, दूसरोंसे कितना ही श्रेष्ठ हो, लेकिन नामधारी कट्टर हिन्दुओंके लिए वह कभी श्रेष्ठ नहीं होता। सबसे बुरी बात तो यह है कि मर जाने पर भी हरिजनकी मिट्टी और राखको दूसरोंकी मिट्टी और राखसे मिलने नहीं दिया जाता। अछूतोंके कष्ट इस बातसे और ज्यादा बढ़ गये हैं कि सिर्फ सवर्ण हिन्दू ही नहीं, ईसाई, मुसलमान और दूसरे लोग भी उनसे अछूतों जैसा ही व्यवहार करते हैं। . . . मेरे मत यह बिल हरिजनोंको कुछ बुनियादी,

सामाजिक और नागरिक अधिकारोंके उपयोगके लिए एक सनद या अधिकार-पत्र देता है।"

यह ध्यान देनेकी बात है कि उपरोक्त बिल हिन्दुओंकी ओरसे बिना किसी विरोधके पास हो गया। कानूनको सफलतासे अमलमें लानेके लिए यह एक शुभ आरंभ है। परन्तु उसके बारेमें बहुत बड़ी आशा बना लेना भी ठीक नहीं होगा। हमारा दुर्भाग्य यह है कि हम जोरोंसे ताली बजाकर प्रस्ताव पास कर देते हैं और फिर उन्हें रद्दीकी टोकनीमें फेंक देते हैं। इस कानूनको पूरी तरह अमलमें लानेके लिए सरकार और सुधारकोंको ज्यादासे ज्यादा सावधानी रखनी होगी।

इस सचाईकी ओरसे आंख मूंद लेनेमें कोई लाभ नहीं कि जिस घोर अज्ञानकी ओर बिल बनानेवाले मित्रने इशारा किया है, उसका आज भी हिन्दुस्तानमें बोलबाला है। सिर्फ अछूतपनके मामलेमें ही नहीं, परन्तु दूसरी बातोंमें भी यही स्थिति है। सुधारकोंको चाहिये कि वे इस भूत पर नजर रखें और जिन पर वह सवार है उनके साथ सावधानी, सज्जनता और चतुराईसे काम लें। ३

३८

आरोग्यके नियम

श्री ब्रजलाल नेहरू मेरे जैसे ही खब्ती हैं। उन्होंने दैनिक अख-बारोंमें एक पत्र लिखा है, जिसमें आरोग्य-मंत्री राजकुमारी अमृतकुंवरके इस कथनकी तारीफ की है कि हमारी बीमारियां अपने अज्ञान और लापरवाहीसे पैदा होती हैं। उन्होंने यह सूचना की है कि आज तक आरोग्य-विभागका ध्यान अस्पताल वगैरा खोलने पर ही रहा है। उसके बदले राजकुमारीने जिस अज्ञानका उल्लेख किया है, उसे दूर करनेकी ओर इस विभागको ध्यान देना चाहिये। उन्होंने यह भी सुझाया है कि इसके लिए एक नया विभाग खोलना चाहिये। [illegible] यह

एक बुरी आदत थी कि उसे जो सुधार करना होता उसके लिए वह एक नया विभाग और नया खर्च खड़ा कर देती थी। लेकिन हम क्यों इस बुरी आदतकी नकल करें? बीमारियोंका इलाज करनेके लिए अस्पताल भले रहें, लेकिन उन पर इतना वजन क्यों दिया जाय? घर बैठे आरोग्यकी रक्षा कैसे की जा सकती है, इसकी तालीम लोगोंको देना आरोग्य-विभागका पहला काम होना चाहिये। इसलिए आरोग्य-मंत्रीको यह समझना चाहिये कि उनके अधीन जो डॉक्टर और कर्मचारी काम करते हैं, उनका पहला कर्तव्य है जनताके आरोग्यकी रक्षा और उसकी संभाल करना।

श्री ब्रजलाल नेहरूकी एक सूचना ध्यान देने योग्य है। वे लिखते हैं कि बीमारियोंके इलाजके बारेमें ढेरों पुस्तकें देखनेमें आती हैं, लेकिन कुदरती इलाज करनेवालोंके सिवा डिग्रीधारी डॉक्टरोंने आरोग्यके नियमोंके बारेमें कोई पुस्तक लिखी हो ऐसा कभी सुना नहीं गया। इसलिए श्री नेहरू यह सूचना करते हैं कि आरोग्य-मंत्री प्रसिद्ध डॉक्टरोंसे *ऐसी पुस्तकें लिखवायें। ये पुस्तकें लोगोंकी समझमें आने लायक भाषामें* लिखी जायं, तो जरूर उपयोगी सिद्ध होंगी। शर्त यही है कि ऐसी पुस्तकोंमें तरह तरहके टीके लगानेकी बातें नहीं होनी चाहिये। आरोग्यके नियम ऐसे होने चाहिये जिनका पालन डॉक्टरों और वैद्योंकी मददके बिना घर बैठे हो सके। अगर ऐसा न हो तो कुएमें से निकल कर खाईमें गिरने जैसी बात होना संभव है। १

लाल फीताशाही

मंत्री दफ्तरी घिसविसमें इस तरह जकड़े हुए हैं कि उन्हें सोचने-विचारनेका समय ही नहीं मिलता। उन्हें तो इतनी भी फुरसत नहीं कि वे मुझसे मुलाकात और विचार-विनिमय करें कि क्या अच्छा है और क्या बुरा। उनकी स्थिति जानते हुए मुझे भी यह हिम्मत नहीं होती कि उन्हें पत्र ही लिख दूं। 'हरिजन' के स्तंभों द्वारा तो मुझे उनसे बात ही नहीं करनी चाहिये। . . .

अगर मंत्री अपनी नई जिम्मेदारियोंसे निबटना चाहते हैं, तो उन्हें दफ्तरी तरीकों — लाल फीताशाही — को खतम करनेकी कला खोजनी चाहिये। पुरानी शासन-व्यवस्था लाल फीताशाहीके द्वारा और उस पर ही जीवित रह सकती थी। लेकिन वह नई व्यवस्थाका गला घोंट देगी। मंत्रियोंको लोगोंसे जरूर मिलना चाहिये, जिनकी सद्भावनासे ही वे इन पदों पर आसीन रह सकते हैं। उन्हें छोटीसे छोटी और बड़ीसे बड़ी शिकायतें जरूर सुननी चाहिये। लेकिन उनके पास जितनी शिकायतें और चिट्ठियां आती हैं, उन सबका और अपने फैसलोंका रेकार्ड रखनेकी उन्हें जरूरत नहीं। उन्हें अपने पास केवल उतने ही कागजात रखने चाहिये, जिनसे उनकी याददाश्त ताजी रहे और कामका सिलसिला बना रहे। विभागीय पत्र-व्यवहार बहुत कम हो जाना चाहिये। . . . वे अपने उन लाखों मालिकोंके प्रति जवाबदार हैं, जो न तो यह जानते हैं कि दफ्तरी कार्रवाईका ढंग क्या है और न जिन्हें उसके जाननेकी चिंता है। उनमें से कितने ही लोग तो लिख और पढ़ भी नहीं सकते। पर वे चाहते हैं कि उनकी प्राथमिक आवश्यकतायें पूरी हों। कांग्रेसजनोंने उन्हें यह सोचना सिखाया है कि शासन-सूत्र कांग्रेसके हाथमें आते ही हिन्दुस्तान भरमें न कोई भूखा रहेगा और न तन ढंकनेकी इच्छा रखनेवाला कोई नंगा रहेगा। यदि मंत्री उस विश्वासके साथ न्याय करना चाहते हैं, जिसका

उन्होंने अपने ऊपर भार लिया है, तो उन्हें इन प्रकारकी समस्याएं सुलझानेके लिए सोचने-विचारनेमें समय देना चाहिये।

अगर वे तथाकथित गांधीवादको मानते हों, तो उन्हें जानना चाहिये कि वह वाद क्या है, इसका पता उन्हें मुझसे नहीं बल्कि आत्म-निरीक्षण करके लगाना चाहिये। शायद मैं भी हमेशा यह नहीं जान सकता कि वह क्या है। लेकिन मैं इतना जरूर मानता हूं कि अगर उसकी उचित रूपमें खोज की जाय और उसका अनुसरण किया जाय, तो वह इतना मौलिक और क्रान्तिकारी है कि भारतकी सभी वास्तविक आवश्यकताओंको पूरा कर सकता है।

कांग्रेस एक क्रान्तिकारी संस्था है। लेकिन उसकी क्रांति संसारकी उन सभी राजनीतिक क्रांतियोंसे अलग है, जिनका हाल इतिहासमें लेखबद्ध है। जहां पहली क्रांतियोंका आधार हिंसा थी, वहां कांग्रेसकी क्रान्तिका आधार जान-बूझकर अहिंसात्मक रखा गया है। अगर यह भी हिंसात्मक होती, तो शायद क्रांतिका पुराना रूप और रिवाज बहुत-कुछ उसी तरह कायम रह जाता। लेकिन कांग्रेसने बहुतसे पुराने तरीकोंको निषिद्ध मान लिया है। सबसे बड़ा परिवर्तन पुलिस और सेनाका है। मैंने यह स्वीकार किया है कि जब तक कांग्रेसजन पदासीन हैं और वे व्यवस्थाकी सुरक्षाके लिए शांतिपूर्ण उपाय नहीं खोज लेते, तब तक इन दोनोंका प्रयोग उन्हें करना ही होगा। लेकिन मंत्रियोंके सामने सदा ही यह प्रश्न रहना चाहिये कि क्या इन दोनों चीजोंके प्रयोगका परित्याग नहीं किया जा सकता? अगर नहीं तो क्यों? यदि जांच करने पर भी — यह जांच पुराने तरीकोंसे नहीं की जानी चाहिये, जो कि खर्चीले और प्रायः व्यर्थ सिद्ध होते हैं, बल्कि बिना खर्चके और साथ ही पूर्ण तथा परिणामकारी ढंगसे होनी चाहिये — उन्हें पता चले कि पुलिस और सेनाका प्रयोग किये बिना वे राजकाज नहीं चला सकते, तो अहिंसाका यह तकाजा है कि कांग्रेसको मंत्रीपद त्याग देना चाहिये और पुन: वनवासमें जाकर उस दुर्लभ 'अमृत' की खोज करनी चाहिये। १

४०

व्यक्तिगत लाभकी आशा न रखें

कांग्रेस सरकारमें जो भी पद ग्रहण किया जाय, सेवाकी भावनासे ही ग्रहण किया जाय; व्यक्तिगत लाभकी उसमें जरा भी आशा नहीं रखनी चाहिये। अगर कोई २५ रु० मासिक लेकर साधारण जीवन-यापनमें सन्तुष्ट है, तो मंत्री बनकर या कोई भी सरकारी पद पाकर २५० रु० पानेकी आशा रखनेका उसे कोई अधिकार नहीं। और ऐसे बहुतसे कांग्रेसजन हैं, जो सेवा-संस्थाओंसे सिर्फ २५ रु० मासिक ले रहे हैं और वे किसी भी मंत्रीपदकी जिम्मेदारी बड़ी योग्यताके साथ उठा सकते हैं। बंगाल और महाराष्ट्रमें ऐसे योग्य आदमी बहुत मिलेंगे, जिन्होंने सार्वजनिक सेवाके लिए अपने आपको अर्पण कर दिया है। सिर्फ गुजारे भरके लिए लेकर ये लोग देशकी सेवा कर रहे हैं। उन्हें कहीं भी रखा जाय, वे अपनेको हर जगह सुयोग्य साबित कर सकते हैं। लेकिन उन्होंने अपने लिए जो सेवाक्षेत्र चुन लिये हैं, उनका त्याग करनेके लिए उन्हें प्रलोभन नहीं दिया जायगा और उन्हें स्वेच्छासे चुने हुए अपने अमूल्य अज्ञातवाससे घसीट कर बाहर लाना गलत होगा। यह सारे संसारके लिए सत्य है, और इस देशके लिए शायद और भी ज्यादा सत्य है, कि आम तौर पर अच्छेसे अच्छे और सबसे उत्तम दिमागके आदमी मंत्री नहीं बनते, न वे सरकारी पद ही स्वीकार करते हैं।

हो सकता है कि अच्छेसे अच्छे और सबसे ऊंचे दिमागके आदमी ऐसी सरकारें चलानेके लिए हमेशा न मिलें; परन्तु मंत्री और दूसरे पर आसीन कांग्रेसजन स्वार्थरहित, योग्य और निर्दोष चरित्रके

न हुआ, तो स्वराज्य हमारे लिए बहुत दूरका स्वप्न हो जायेगा। अगर कांग्रेस कमेटियां नौकरियां प्राप्त करनेके अखाड़े बन जायें, जिनमें सबसे अधिक हिंसक आदमी ही बाजी मार सकें, तब तो ऐसे व्यक्तियोंके मिलनेकी संभावना कम ही रहेगी। १

४१

वेतनोंका स्तर

प्रान्तीय धारासभाओंके सदस्य और मंत्री सच्चे लोकसेवकोंकी तरह अपनी अपनी जगह काम करने पहुंच गये हैं। अंग्रेज सरकारने अब तक इन जगहोंके लिए जो वेतन दिये हैं, वैसे ही वेतन वे लोग नहीं ले सकते। अगर उन्होंने लिये तो इसकी कीमत उन्हें चुकानी पड़ेगी। यह भी कोई जरूरी नहीं कि अमुक वेतन उन्हें देना तय किया गया है, इसलिए उनमें से हर कोई वेतन ले ही। वेतनका जो पैमाना निश्चित होता है, उससे तो वेतनकी मर्यादा ही बंधती है — यानी उससे अधिक वेतन कोई नहीं ले सकता। लेकिन पैसेदार लोगोंके लिए तो यह एक हंसीकी बात होगी कि वे पूरा या थोड़ा भी वेतन लें। वेतन तो उन्हीं लोगोंके लिए है, जो बिना कुछ लिये आसानीके साथ अर्थात् सेवाभावसे काम नहीं कर सकते। वे दुनियाके गरीबसे गरीब लोगोंके प्रतिनिधि हैं। उन्हें मिलनेवाली पाई पाई गरीबोंकी कमाईसे आती है। वे इस महत्त्वकी बातको ध्यानमें रखें और उसके अनुसार रहें और व्यवहार करें। १

मंत्रियोंका वेतन

प्र० —— इस बार कांग्रेसके बहुमतवाले प्रान्तोंमें मंत्रियोंकी वेतन-वृद्धि किन सिद्धान्तों पर की जा रही है? क्या कराचीवाला कांग्रेस-प्रस्ताव आजकी परिस्थितिमें लागू नहीं होता? यदि महंगाईके प्रभावमें आकर ऐसा किया गया है, तो क्या प्रान्तोंके बजटमें ऐसी गुंजाइश है कि प्रत्येक सरकारी नौकरका वेतन तिगुना किया जा सके? यदि नहीं, तो क्या यह उचित है कि मंत्री ५०० रुपयेसे १५०० कर लें और एक अध्यापक और चपरासीको यह उपदेश किया जाये कि वह अपना निर्वाह १२ और १५ रुपये माहवारमें करे और शासन-प्रबन्धमें कोई अस्थिरता इसलिए उत्पन्न न करे कि कांग्रेस शासन चला रही है?

उ० —— प्रश्न बिलकुल ठीक है कि मंत्रियोंको ५०० रुपये क्यों और चपरासी या शिक्षकोंको १५ रुपये क्यों? लेकिन प्रश्न उठानेसे ही वह हल नहीं हो जाता। ऐसे अन्तरका सिलसिला सनातन जैसा है। हाथीको मन क्यों और चींटीको कण क्यों? इस प्रश्नमें ही इसका उत्तर समाया हुआ है। जितनी जिसकी जरूरत है, ईश्वर उसे उतना दे देता है। मनुष्यकी जरूरत हाथी और चींटीकी तरह स्पष्ट हो सके, तो कोई शंका ही न उठे। अनुभव तो हमें यही बताता है कि सब मनुष्योंकी आवश्यकता एकसी नहीं हो सकती, जैसे सब चींटियोंकी या सब हाथियोंकी एकसी होती है। भिन्न भिन्न लोगों और भिन्न भिन्न जातियोंकी आवश्यकताएं अलग अलग रहती हैं। इसलिए आज तो जो अंतर है उसे कमसे कम करनेका शांतिसे आन्दोलन करें, लोकमत बनावें और एक आदर्श सामने रखकर उसकी ओर कूच करें। जबरदस्तीसे या सत्याग्रहके नाम पर दुराग्रह करके हम परिवर्तन नहीं करा सकेंगे। मंत्रीगण हम लोगोंमें से हैं। मंत्री बननेसे पहले भी उनकी आवश्यकताएं

चपरासियों जैसी नहीं थी। मैं चाहूंगा कि चपरासी मंत्रीपदके लायक बनें और तब भी अपनी आवश्यकताएं चपरासी जितनी ही रखें। इतना समझ लें कि कोई मंत्री निश्चित मर्यादा तक वेतन लेनेके लिए बंधा हुआ नहीं है।

प्रश्नकारकी एक बात मानने लायक जरूर है। क्या चपरासी १५ रुपयेमें बिना रिश्वत लिये अपना और कुटुम्बका निर्वाह कर सकता है? यदि नहीं, तो उसको ज्यादा मिलना ही चाहिये। इलाज यह है कि यथासंभव हम सब अपने अपने चपरासी बनें और इतने पर भी जो चपरासी आवश्यक हों उन्हें उनकी जरूरतके अनुसार वेतन दें और इस तरह मंत्री और चपरासीके जीवनमें जो बड़ा अंतर है उसे मिटायें।

मंत्रियोंका वेतन ५०० से १५०० रुपये क्यों हुआ, यह भिन्न प्रश्न है। लेकिन मूल प्रश्नकी तुलनामें यह छोटा है। मूल प्रश्न यदि हल हो सके, तो छोटा प्रश्न अपने आप हल हो जायेगा। १

४३

मंत्रियोंके वेतनमें वृद्धि

थोड़े दिन हुए मैंने 'हरिजन' में दबी कलमसे एक पैरा मंत्रियोंकी वेतन-वृद्धिके बारेमें लिखा था। उसका मुझे बहुत बड़ा मूल्य चुकाना पड़ा है। बहुत लम्बे लम्बे पत्र मुझे पढ़ने पड़ते हैं, जिनमें मेरी सावधानी पर दुःख प्रकट किया जाता है, और मुझे समझाया जाता है कि मैं अपनी राय बदल दूं। मंत्रियोंके वेतन पहलेसे ही बहुत ज्यादा हैं। इनको और भी बढ़ाना कहां तक उचित है, जब कि गरीब चपरासियों और क्लर्कोंको सिर्फ इतनी तरक्की मिली है, जिसमें उनका गुजारा भी नहीं हो पाता। मैंने अपनी टिप्पणीको फिर पढ़ा है और मेरा दावा है कि जो कुछ पत्रलेखक चाहते हैं वह सब उस छोटीसी टिप्पणीमें आ गया है। पर कोई गलतफहमी न हो, इसलिए उसका अर्थ मैं और स्पष्ट कर देता हूं।

मुझे ताना मिला है कि मैंने कराचीवाले प्रस्तावके बारेमें सोचा ही नहीं। मंत्रियोंको जो कम वेतन लेने चाहिये वह सिर्फ इसलिए नहीं कि कांग्रेसने एक प्रस्ताव पास करके ऐसा आदेश दिया है, बल्कि उसके लिए इससे बहुत ऊंचा कारण है। खैर, कुछ भी हो, जहां तक मैं जानता हूं, कांग्रेसने उस प्रस्तावको कभी बदला नहीं, और वह आज भी उतना ही लागू होता है जितना कि पास होनेके समय लागू होता था।

मैं यह नहीं कहता कि वेतनोंमें की गई वृद्धि ठीक है। लेकिन मैं मंत्रियोंकी बात सुने बिना इसको बुरा-भला नहीं कह सकता। टीका करनेवालोंको यह समझ लेना चाहिये कि मेरा उन पर या अपने सिवा किसी पर भी कोई अधिकार नहीं है। न ही मैं कार्यसमितिकी सारी बैठकोंमें हाजिर होता हूं। जब सभापति चाहते हैं तभी मैं वहां जाता हूं। मैं तो सिर्फ अपनी राय दे सकता हूं, फिर उसकी कीमत जो कुछ भी हो। और उसकी कीमत तभी हो सकती है जब सोच-विचार कर हकीकतों पर आधार रखकर राय दी जाय।

अमीर और गरीबमें, ऊंची नौकरियों और छोटी नौकरियोंमें भयानक अन्तरका प्रश्न एक अलग विषय है। इसके लिए बहुत सोच-विचारकी जरूरत है और परिवर्तन जड़से करना पड़ेगा। थोड़े मंत्रियों और उनके सचिवोंके वेतनके सिलसिलेमें लगे हाथ इसका निपटारा नहीं हो सकता। दोनों बातोंका अपने अपने महत्त्वके अनुसार निर्णय होना चाहिये। मंत्रियोंके वेतनका प्रश्न तो मंत्री आप ही हल कर सकते हैं। दूसरा प्रश्न इससे कहीं अधिक व्यापक है और उसमें बहुत बारीकीसे जांच-पड़ताल करनेकी जरूरत होगी। मैं तो हमेशा यह माननेको तैयार हूं कि मंत्रियोंको फौरन ही अपने अपने प्रान्तमें इस कामको अपने हाथमें लेना चाहिये और सबसे पहले नीची नौकरीवालोंके वेतनों पर विचार करके, जहां जरूरी हो, न बढ़ा देने चाहिये। १

४४

हम ब्रिटिश हुकूमतकी नकल न करें

१५ अगस्तका दिन आया और चला गया। सारे हिन्दुस्तानके लोगोंने बडी धूमधामसे और अनोखे उत्साहसे स्वतंत्रता-दिवस मनाया। उनका यह सोचना ठीक ही था कि साम्राज्यवादी हुकूमतके नीचे उन्हें जितने भी भयंकर कष्ट और यातनायें सहनी पडी, वे सब अब पुराने जमानेकी निशानियां बन जायगी। जीवनमें पहली बार गावके गरीबसे गरीब किसानोंकी निराशापूर्ण आखें खुशीसे चमक उठी। इस मौके पर शहरके मजदूरोंके उदास दिल भी खुशीसे उछलने लगे। इस विशाल देशके हरएक दबे और कुचले हुए पुरुष और स्त्रीने हार्दिक उत्साह और उमंगके साथ स्वतन्त्रता-दिवस मनाया, क्योंकि बरसोंके दु ख-दर्द और कुरबानियोंके बाद आखिर हिन्दुस्तानके पराधीन मानवको आशाकी झलक दिखाई दी — उसे अधिक अच्छे दिनोंकी और अपना बोझ हलका होनेकी भनक सुनाई पडी।

लेकिन स्वतंत्रता-दिवसकी खुशियोंके बाद ही नई दिल्लीसे एक सरकारी सूचना निकली, जिसमें प्रान्तोंके गवर्नरोंके निश्चित किये हुए वेतनों और भत्तोंकी घोषणा की गई है। भोलीभाली जनताने यह आशा लगा रखी थी कि साम्राज्यवादी हुकूमतके साथ ही ऊचे अधिकारियोंके बडे बडे वेतनोंके भारसे दबा हुआ शासन-तंत्र भी खतम हो जायगा, जो गुलाम हिन्दुस्तानको साम्राज्यवादके फंदेमें फंसाये रखनेके लिए ही पैदा किया गया था। आजसे पहले देशके प्रत्येक राजनीतिक नेताने, प्रत्येक प्रसिद्ध अर्थशास्त्रीने वाइसरॉय, केन्द्रीय मंत्रियो और प्रान्तीय गवर्नरों आदि सरकारी अधिकारियोंको दिये जानेवाले बड़े बड़े वेतनों और उनके भत्तोंकी स्पष्ट शब्दोंमें कड़ी निन्दा की थी। इस बारेमें कांग्रेसने कई प्रस्ताव पास किये थे।

कराची-कांग्रेसके प्रसिद्ध प्रस्तावमें सरकारके ऊंचेसे ऊंचे अधिकारीका वेतन ५०० रु० माहवार निश्चित किया गया था। लेकिन आज शायद वह सब भुला दिया गया है और गवर्नरोंका वेतन ५५०० रु० माहवार निश्चित किया गया है।

सबसे पहले हम यह देखें कि दूसरे देशोंमें ऐसे ऊंचे अधिकारियोंको क्या वेतन दिया जाता है। दुनियाके सबसे धनी राष्ट्रके सबसे धनी राज्य न्यूयार्कमें गवर्नरको १० हजार डालर वार्षिक दिये जाते हैं, जो हमारे हिसाबसे तीन हजार रुपये माहवारसे भी कम होते हैं। अमेरिकाके आइडाहो नामक राज्यके गवर्नरका वेतन १५०० रु० माहवारसे भी कम होता है। अमेरिकाका एक दूसरा राज्य मैरीलैण्ड अपने गवर्नरको १००० रु० माहवारसे कुछ ही ज्यादा वेतन देता है। इलिनोइसका, जिसकी आबादी उड़ीसा या आसामके बराबर है, गवर्नर ३ हजार रुपयेसे कुछ ही ज्यादा पाता है। दक्षिण अफ्रीकाके यूनियनमें प्रान्तोंके शासकोंको, जो हमारे हिन्दुस्तानी गवर्नरोंके दरजेके होते हैं, हर माह २२०० से २७०० रु० के बीच वेतन दिया जाता है। आस्ट्रेलियामें क्वीन्सलैण्डके गवर्नरको ३ हजार रुपये माहवारसे कुछ ही ऊपर वेतन मिलता है। इसे सब कोई जानते हैं कि स्टेलिनको ३५० रु० माहवार वेतन दिया जाता था। ग्रेट ब्रिटेनके मंत्रि-मंडलके मंत्रियोंके वेतनकी तुलना हमारे गवर्नरोंके वेतनोंसे नहीं की जा सकती, क्योंकि वे लोग अपने पूरे देश पर शासन करते हैं। फिर भी उनका वेतन हिन्दुस्तानी गवर्नरके वेतनसे ज्यादा नहीं होता। यह [illegible]में रखना चाहिये कि ऊपर बताये देशोंके इन अधिकारियोंको [illegible]तनोंमें से इन्कम टैक्स और दूसरे टैक्स भी देने होते हैं। बिना किसी विरोधके यह कहा जा सकता है कि हिन्दुस्तानी वेतन दुनियामें सबसे ऊंचा है।

[illegible] हम इन बातों पर दूसरे पहलूसे विचार करें। हिन्दुस्तानका [illegible]पने प्रान्तका प्रथम श्रेणीका सेवक है। इसलिए हम इस सेवककी

आयकी उसकी स्वामिनी (जनता) की आयसे तुलना करे। दूसरे विश्वयुद्धसे पहले प्रत्येक हिन्दुस्तानीकी औसत सालाना आय ६५ रु० कूती गई थी। अगर हम एक सामान्य किसान या मजदूरकी औसत सालाना आयका हिसाब लगायें, तो वह इससे बहुत कम होगी। प्रो० कुमारप्पाके हिसाबसे यह आय केवल १२ रु० थी और प्रिन्सिपाल अग्रवालने यह सालाना रकम १८ रु० निश्चित की है। इन सारे औसतोंका हिसाब लगाने पर हम इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि एक हिन्दुस्तानी गवर्नरकी आय अपने स्वामियोंकी आयसे हजार गुना ज्यादा होती है। और अगर हम नीचेसे नीचे वर्गके लोगोंकी, जिनकी हिन्दुस्तानमें बहुत ही बड़ी संख्या है, सालाना आयको लें, तो सेवक और स्वामियोंकी आयके बीचका यह भेद ४ हजार गुना तक पहुंच जाता है। अमेरिकामें भी, जिसे सबसे बड़ा पूंजीवादी देश कहा जाता है और जहां सबसे अधिक आर्थिक असमानता पाई जाती है, एक गवर्नरकी आय किसी अमेरिकन नागरिककी औसत आयसे केवल २० गुना ज्यादा होती है।

दूसरे प्रकारकी तुलना इस समस्या पर और अधिक प्रकाश डालेगी। प्रान्तोंके शासन-प्रबन्धमें चपरासियोंका नंबर सरकारी दफ्तरोंमें सबसे नीचा होता है। मध्यप्रान्तमें एक चपरासीका मासिक वेतन ११ रु० है। दूसरे प्रान्तोंमें वह कुछ कम या ज्यादा हो सकता है। जब एक गवर्नर और चपरासीके वेतनमें इतना बड़ा फर्क हो, तब प्रान्तका पूरा शासन-तंत्र आम जनताके भलेके लिए सामाजिक कल्याण और उन्नत व्यवस्था स्थापित करनेमें उत्साहसे एक व्यक्तिकी तरह कैसे काम कर सकता है? थोड़ेमें, हम चाहे अपनी नीचीसे नीची राष्ट्रीय आयको लें, नीचेसे नीचे चपरासीके वेतनको लें या चोटी पर खड़े गवर्नरके वेतनको लें, हमें दुनियामें हिन्दुस्तानकी मिसाल कहीं नहीं मिलेगी।

जब प्रान्तके गवर्नरोंको इतनी बड़ी बड़ी रकमें दी जाती हैं तब हम दूसरे ऊंचे वेतन पानेवाले सरकारी अधिकारियोंके वेतन घटानेके बारेमें कैसे सोच सकते हैं? अगर ऊंचे वेतन घटाये नहीं जा सकते और नीचे वेतन बढ़ाये नहीं जा सकते, तो प्रान्तोंके अर्थमंत्री सारी प्रजाको शिक्षा देने या डॉक्टरी सुविधायें देने वगैराकी योजनाओंको अमलमें लानेके लिए पैसे कहांसे लायें? हम इस भ्रममें न रहें कि आजादीके आते ही कलकी भयंकर गरीबीवाला राष्ट्र थोड़े ही समयमें धनी और उन्नत राष्ट्र बन जायगा, ताकि वह अपने गवर्नरों और दूसरे ऊंचे अधिकारियोंको ऊंचे ऊंचे वेतन दे सके। सोवियट यूनियनको अपनी राष्ट्रीय आय बढ़ानेके लिए तीन पंचवर्षीय योजनायें बनानेकी जरूरत पड़ी। बम्बई-योजना बनानेवाले लोगोंने भी १०० अरब रुपयेकी पूंजी लगाने पर १५ वर्षके अंतमें हर हिन्दुस्तानीकी औसत सालाना आय १३० रुपये ही कूती है। इसलिए एक ही दिनमें हिन्दुस्तानके धनी बन जानेके सुनहले सपने जितनी जल्दी छोड़ दिये जायं उतना ही हम सबके लिए अच्छा होगा। सत्य बड़ा कठोर है और हमें ईमानदारीके साथ उसका पूरा सामना करना चाहिये। हम अपने शासकों और अधिकारियोंको इतनी बड़ी बड़ी रकमें नहीं दे सकते।

टी० के० वंग

[यद्यपि मैं प्रो० वंग द्वारा दिये हुए आंकड़ोंके बारेमें निश्चित रूपसे कुछ नहीं कह सकता, फिर भी उन्होंने हिन्दुस्तानके गवर्नरों और दूसरे ऊंचे अधिकारियोंके बड़े बड़े वेतनोंके बारेमें और हमारी सरकारों द्वारा अपने नौकरोंको दिये जानेवाले ऊंचेसे ऊंचे और नीचेसे नीचे वेतनोंकी भयंकर विषमताके बारेमें जो कुछ लिखा है, उसका समर्थन करनेमें मुझे कोई हिचकिचाहट नहीं है। —मो० क० गांधी] १

४५

स्वतंत्र भारतके मंत्रियोंसे

[ता. १५–८–'४७ के दिन बंगालके मंत्रीगण गांधीजीको प्रणाम करने आये थे। उनसे गांधीजीने कहा :]

आप सब आजसे कांटोंका ताज सिर पर रखते हैं। सत्ताका पद बुरी चीज है। इसलिए आप शासनमें विवेकपूर्ण व्यवहार करना। आप सबको ज्यादासे ज्यादा सत्य-परायण, अहिंसा-परायण, नम्र और सहनशील होना चाहिये। अंग्रेजोंकी हुकूमत चलती थी, तब भी आपकी कसौटी हुई थी; फिर भी वह इतनी कड़ी नहीं थी। परन्तु अब तो लगातार आपकी कसौटी ही कसौटी है। वैभवके जालमें न फसना। ईश्वर आपकी मदद करे! आपको गांवों और गरीबोंका उद्धार करना है। १

४६

मंत्रियों तथा गवर्नरोंके लिए विधि-निषेध

स्वतंत्र भारतमें मंत्रियों और गवर्नरोंको कैसे रहना चाहिये, इस पर गांधीजीने कुछ बातें कहीं :

(१) मंत्रियोंको अथवा गवर्नरोंको जहां तक हो सके वहां तक अपने देशमें उत्पन्न होनेवाली वस्तुयें ही काममें लेनी चाहिये, करोड़ों गरीबोंको रोटी मिले इसके लिए उन्हें तथा उनके कुटुम्बको खादी ही पहननी चाहिये और अहिंसाके प्रतीक चरखेको हमेशा घूमता हुआ रखना चाहिये।

(२) उन्हें दोनों लिपियां (नागरी और उर्दू) सीख लेनी चाहिये। जहां तक हो सके आपसकी बातचीतमें भी उन्हें अंग्रेजीका व्यवहार नहीं करना चाहिये। सार्वजनिक रूपमें तो उन्हें हिन्दुस्तानी ही बोलनी चाहिये और अपने प्रान्तकी भाषाका खुलकर उपयोग करना चाहिये। आफिसमें भी जहां तक हो सके हिन्दुस्तानीमें ही पत्र-व्यवहार होना चाहिये; आदेश या सर्क्यूलर भी हिन्दुस्तानीमें ही निकाले जाने चाहिये। ऐसा होनेसे लोगोंमें व्यापक रूपसे हिन्दुस्तानी सीखनेका उत्साह बढ़ेगा और धीरे धीरे हिन्दुस्तानी भाषा अपने-आप देशकी राष्ट्रभाषा बन जायगी।

(३) उनके दिलमें अस्पृश्यता, जाति-पांति या मेरे-तेरेके भेदभाव नहीं होने चाहिये। किसीका थोड़ा भी असर कहीं चलना नहीं चाहिये। सत्ताधारीकी दृष्टिमें अपना सगा बेटा, सगा भाई या एक सामान्य माना जानेवाला नागरिक, कारीगर या मजदूर सभी एकसे होने चाहिये।

(४) इसी तरह उनका व्यक्तिगत जीवन भी इतना सादा होना चाहिये कि लोगों पर उसका प्रभाव पड़े। उन्हें हर रोज देशके लिए एक घंटा शारीरिक श्रम करना ही चाहिये। भले वे चरखा कातें या अपने घरके आसपास अन्न, फल या सागभाजी उगाकर देशके खाद्य उत्पादनको बढ़ायें।

(५) मोटर और बंगला तो होना ही नहीं चाहिये। आवश्यक हो वैसा और उतना बड़ा साधारण मकान उन्हें काममें लेना चाहिये। हां, अगर दूर जाना हो या किसी खास कामसे जाना हो, तो वे जरूर मोटरका उपयोग कर सकते हैं। लेकिन मोटरका उपयोग मर्यादित होना चाहिये। मोटरकी थोड़ी बहुत जरूरत तो कभी कभी रहेगी ही।

(६) मेरी तो यह इच्छा है कि मंत्रियों और गवर्नरके मकान पास पास हों, जिससे वे एक-दूसरेके विचारोंमें, कुटुम्बोंमें और काम-काजमें ओतप्रोत हो सकें।

(७) घरके दूसरे सदस्य और बच्चे घरमें हाथसे ही काम करें। नौकरोंका उपयोग कमसे कम होना चाहिये।

(८) आज जब देशके करोड़ों मनुष्योंको बैठनेके लिए चटाई तो क्या ढकनेके लिए कपड़े भी नहीं मिलते, तब किसीको महंगा फर्नीचर — सोफासेट, आलमारियां या चमड़ेकी कुर्सियां बैठनेके लिए नहीं रखी जानी चाहिये।

(९) भांग, मदिरा और तम्बाकूका किसी प्रकारका व्यसन तो होना ही नहीं चाहिये। १

४७

दो शब्द मंत्रियोंसे

[ता० २५-९-'३७ के 'हरिजनसेवक' में छपे 'उड़ीसाका संकट' नामक लेखमें गांधीजीने मंत्रियोंके भी सलाहके दो शब्द कहे थे, जो नीचे दिये जाते हैं।]

दो शब्द मंत्रियोंसे भी। उन्हें जो कुछ भी आर्थिक दान मिलेगा, उससे तो संकटका आंशिक निवारण ही होगा। इसलिए उन्हें दो बातें करनी चाहिये। पहली बात तो यह है कि जो भी आदमी संकटग्रस्त दिखाई दे, उसके लिए यह कोशिश की जाय कि वह किसी उत्पादक काममें लगकर अपनी सहायता खुद करना सीखे। बिहारमें कताई वगैराका काम अपनाया गया था। उड़ीसामें अगर लोग चरखेके कामको न चाहते हों, तो वे और कोई उद्योग ले सकते हैं। असल बात है श्रमधर्मका गौरव सीख लेनेकी। खुद मंत्री भी थोड़ी देरके लिए अपना कुर्ता उतार कर रख दें और साधारण मजदूरोंकी तरह काम करें। इससे उन लोगोंको प्रोत्साहन मिलेगा, जिन्हें काम और उससे प्राप्त होनेवाली मजदूरीकी जरूरत है। दूसरे, मंत्री कुशल इंजी-

नियरोंकी तलाश करके उनके कौशलको इस प्रकार काममें लायें, जिससे वर्षाके मौसममें नदियोंके प्रलयकारी प्रवाहको ऐसा मार्ग दिया जा सके कि वह उपयोगी बन जाय। १

४८

मंत्रियोंको मानपत्र और उनका सत्कार

एक सज्जनकी बातचीतका, जो मुझसे मुलाकात करने आये थे, संक्षेपमें यह निचोड़ है :

> "आपको शायद यह पता न हो कि मंत्रियोंकी आज क्या दशा हो रही है। कांग्रेसजन सत्रह साल तक सरकारी पदोंसे अलग रहे हैं। अब वे देखते हैं कि जिस सत्ताका उन्होंने पहले अपनी इच्छासे परित्याग कर दिया था, वह सत्ता उनके चुने हुए प्रतिनिधियोंके हाथमें आ गई है। उन्हें यह नहीं समझमें आता कि अपने इन प्रतिनिधियोंके साथ किस तरह बरताव करना चाहिये। वे उनका मानपत्रों और स्वागत-सत्कारोंसे नाकमें दम कर देते हैं; और चाहते हैं कि वे उनसे मुलाकात करें, क्योंकि यह उनका हक है। उनके सामने वे तरह तरहके सुझाव रखते हैं और कभी कभी छोटी मोटी मेहरबानियां भी उनसे कराना चाहते हैं।"

मंत्रियोंको देशकी सेवा करनेके लिए अशक्त बना देनेका यह सबसे अच्छा तरीका है। इन मंत्रियोंके लिए यह काम अभी नया नया है। शुद्ध न्यायबुद्धिसे काम करनेवाले मंत्रीके पास मानपत्र तथा स्वागत-सत्कार ग्रहण करने अथवा अतिशयोक्तिपूर्ण या उचित प्रशंसात्मक भाषण देनेके लिए समय ही नहीं होता; न ऐसे मुलाकातियोंके साथ बैठकर बातें करनेका ही उनके पास समय होता है, जिन्हें उन्होंने मिलनेके लिए बुलाया न हो या जिनसे उन्हें अपने काममें कोई

मदद मिलनी मालूम न होती हो। सिद्धान्तकी दृष्टिसे देखते हुए तो प्रजातन्त्रका नेता हमेशा प्रजाके बुलाने पर उससे मिलने या चाहे जहां जानेके लिए तैयार रहेगा। वे अगर ऐसा करें, तो उचित ही है। किन्तु प्रजाने उनको जो कर्तव्य सौंप रखा है, उसे क्षति पहुचाकर वे ऐसा करनेकी धृष्टता नही करेगे। मंत्रियोंको जो काम सौंपा गया है उसमें अगर वे पारगत नही होते या प्रजा उन्हे पारगत नही होने देती, तो मंत्रियोंकी फजीहत हो होनेवाली है। शिक्षामंत्रीको अगर ऐसी नीति ढूढ़ निकालनी है, जो देशकी आवश्यकताओंको पूरा कर सके, तो उसे अपना सारा बुद्धिबल इस काममें लगा देना पडेगा। आबकारी-विभागका मंत्री यदि मद्य-निषेधके रचनात्मक अंगके प्रति ध्यान न देगा, तो वह अपने कर्तव्य-पालनमें बिलकुल असफल रहेगा। यही बात अर्थमंत्रीके बारेमें है। विधानने जो अडचनें पैदा कर रखी है उनके बावजूद तथा सरकारने खुद अपनी इच्छासे शराबकी आमदनी त्याग देनेका जो निश्चय किया है उसके होते हुए भी अगर वह आय-व्ययकी दोनों बाजुओंका मेल ठीक ठीक नही बिठा सकता, तो उसे असफलता ही मिलेगी। इस कामको करनेके लिए तो आकडोंके जादूगरकी जरूरत है। ये तो केवल उदाहरण है। जिन तीन विभागोंके मन्त्रियोंका मैंने उल्लेख किया है, उनके जितनी ही जागृति, सावधानी और अध्ययन-परायणताकी हरएक मंत्रीको जरूरत है।

स्थायी अधिकारी मंत्रियोंके आगे जो कागज-पत्र रख दें उन्हे पढकर उन पर दस्तखत कर देनेका ही काम अगर इन मंत्रियोंके पास होता, तो यह आसान काम था। पर हरएक कागज-पत्रका अध्ययन करना और सोच सोचकर नई नई कार्य-प्रणालियां निकालना और उन पर अमल कराना कोई आसान काम नही। मंत्रियोंने जो सादगी अख्तियार की वह प्रारम्भिक रूपमें आवश्यक थी। परन्तु यदि सादगीके साथ वे आवश्यक उद्योगशीलता, योग्यता, प्रामाणिकता, निष्पक्षता और एक एक ब्योरे पर अधिकार रखनेकी अगाध शक्तिका परिचय नही देंगे, तो

[illegible] इस बारेमें [illegible] कुछ दिलचस्पी नहीं। इसलिए अगर इसके लोग अपने झगड़ोंको [illegible] [illegible] [illegible] मानने या उन्हें [illegible] पर [illegible] [illegible] कर लें, तो इससे [illegible] लाभ ही होगा। १

४२

मानपत्र और फूलोंके हार

प्र० — एक भाई शिकायत करते हैं: "बहुतसे प्रान्तोंमें कांग्रेसी मंत्रि-मंडल स्थापित हो गये हैं और आम जनताको उन पर गर्व है। इसलिए जब कोई मंत्री किसी जगह जाता है तो वहांकी स्थानीय कमेटियां या दूसरी संस्थाएं उसे कीमती मानपत्र देकर उसके प्रति अपना आदर-भाव प्रकट करती हैं। करीब करीब सभी मामलोंमें इस तरह दी जानेवाली चीजें मंत्रीकी अपनी संपत्ति बन जाती है। मेरी रायमें यह प्रथा ठीक नहीं है। या तो इस तरह मानपत्र लेनेका यह सिलसिला बन्द किया जाना चाहिये या इस तरह दी गई चीजें स्थानीय कांग्रेस कमेटीको मिलनी चाहिये। मंत्रियों या कांग्रेसके नेताओंको फूलोंके हार वगैरा पहनानेके बारेमें भी कोई निश्चित नीति होनी चाहिये। मैंने कई जगह यह देखा है कि मंत्रियोंका स्वागत करते समय उन्हें ऐसे हार पहनाये जाते हैं, जिनकी कीमत ३००–४०० रुपयेसे कम नहीं होती। यह पैसेकी निरी बरबादी है।"

उ० — यह एक उचित शिकायत है। आम जनताकी सेवा करनेवाले किसी भी सेवकको अपने कामके लिए न तो कीमती मानपत्र लेने चाहिये और न बहुमूल्य फूलोंके हार वगैरा लेने चाहिये। यह बहुत बुरी बात भले न हो, मगर एक दुःखदायक बात तो बन ही गई है। इसके बचावमें अकसर यह दलील दी जाती है कि मान-पत्रकी कीमती चौखटों और फूलोंके बहुमूल्य हारों व गुलदस्तोंकी

दौलत इन चीज़ोंके बनानेवाले कारीगरोंको पैसा मिलता है। लेकिन साधारण तो मंत्रियों और उनके जैसे दूसरोंकी मददके बिना भी अपना काम अच्छी तरह चला सकते हैं। मंत्री वगैरा अपने मौज-शौकके लिए दौरा नहीं करते। उनके दौरे शासनके सिलसिलेमें होते हैं और उनके पीछे अक्सर यह ख्याल रहता है कि वे लोगोंसे प्रत्यक्ष मिलकर उनकी बातें सुन सकें। उन्हें दिये जानेवाले मानपत्रोंमें उनके गुणोंकी प्रशंसा करना जरूरी नहीं, क्योंकि गुण तो स्वयं ही अपने पारितोषिक हैं। मानपत्रोंमें तो स्थानीय जरूरतों और शिकायतोंका, यदि वैसी कोई शिकायतें हों, उल्लेख किया जाना चाहिये। मंत्रियों और उनके सचिवोंके सामने बड़े बड़े काम पड़े हैं। लोगोंकी खुशामदभरी तारीफोंसे मंत्रियोंके काममें मदद पहुंचनेके बजाय रुकावटें पैदा होंगी।

५०

मंत्रियोंको चेतावनी

मेरे पास आकर कई लोगोंने यह कहा है कि जनताके मंत्री पुराने अंग्रेज अधिकारियोंकी तरह ही मनमाने ढंगसे काम करते हैं। इस पर प्रकाश डालनेवाले कुछ कागजात भी वे लोग मेरे पास छोड़ गये हैं। इस सम्बन्धमें मैंने मंत्रियोंसे बातचीत नहीं की। लेकिन इस मामलेमें मेरी यह स्पष्ट राय है कि जिन बातोंके लिए हम अंग्रेज सरकारकी आलोचना करते रहे हैं, उनमें से कोई भी बात जिम्मेदार मंत्रियोंके शासनमें नहीं होनी चाहिये। अंग्रेजी शासनके दिनोंमें वाइसरॉय कानून बनाने और उन पर अमल करानेके लिए आर्डिनेन्स निकाल सकते थे। तब न्याय और शासनके काम एक ही व्यक्तिके हाथमें रखनेका काफी विरोध किया गया था। तबसे आज तक ऐसी कोई बात नहीं हुई, जिससे हम विषयमें राय बदलनेकी जरूरत हो। देशमें आर्डि-

नेन्सका शासन विलकुल नहीं होना चाहिये। कानून वनानेका अधिकार सिर्फ आपकी धारासभाओंको रहे। मंत्रियोंको जव जनता चाहे तव उनके पदोंसे हटाया जा सकता है। उनके कामोंकी जांच करनेका अधिकार आपकी अदालतोंको रहे। उन्हें न्यायको सस्ता, सरल और निर्दोष वनानेकी भरसक कोशिश करनी चाहिये। इस ध्येयको पूरा करनेके लिए 'पंचायत राज' का सुझाव रखा गया है। उच्च न्यायालयके लिए यह संभव नहीं कि वह लाखों लोगोंके झगड़े निपटा सके। सिर्फ असाधारण परिस्थितियोंमें ही आकस्मिक कानून वनानेकी जरूरत पड़ती है। कानून वनानेमें कुछ ज्यादा देर भले लगे, लेकिन व्यवस्थापिका सभा (एक्जिक्यूटिव) को धारासभा पर हावी नहीं होने दिया जाय। इस समय कोई उदाहरण तो मेरे दिमागमें नहीं है। लेकिन अलग-अलग प्रान्तोंसे मेरे पास जो पत्र आये हैं, उनके ही आधार पर मैंने ये वातें कही हैं। इसलिए जव मैं जनतासे यह अपील करता हूं कि वह कानूनको अपने हाथमें न ले, तव जनताके मंत्रियोंसे भी मैं अपील करता हूं कि जिन पुराने तरीकोंकी उन्होंने निन्दा की है, उन्हींको शुद्ध अपनानेके वारेमें वे सावधानी रखें। १

५१

गरीवी लज्जाकी वात नहीं

इंग्लैंडके साथ मुकाबला करें तो कर सकते हैं। पर यहां एक आदमीकी जो आमदनी है उससे यहां बहुत कम है। ऐसा गरीब देश दूसरे देशोंके साथ पैसेका मुकाबला करे तो वह मर जायगा। दूसरे देशोंमें हमारे प्रतिनिधि भी यह बात समझें। अमेरिकाका मुकाबला रहने दो। खानेमें, पीनेमें और पार्टियां देनेमें वे जो दावा करते थे कि हमारी हुकूमत आवेगी तो हमारा भी रंग-ढंग बदल जायगा, वह उन्हें झुठला देना चाहिये। हमारे त्यागी कांग्रेसवाले भी ऐसी गलती करें, तो वह सोचनेकी बात है।

फिर लोग कहते हैं कि मंत्री लोग इतने पैसे लेते हैं, तब हम सरकारकी नौकरी करें तो हमें भी ज्यादा पैसे मिलने चाहिये। सरदार पटेलको अगर १५०० रुपये मिलें, तो हमें ५०० तो मिलने ही चाहिये। यह हिन्दुस्तानमें रहनेका तरीका नहीं है। जब हरएक आदमी आत्मशुद्धिका प्रयत्न करता हो, तब यह सब सोचना कैसा? पैसेने किसीकी कीमत नहीं होती। १

५२
अनाप-शनाप सरकारी खर्च और बिगाड़

जब करोड़ों मनुष्य पारावार कठिनाइयां झेल रहे थे उस समय गांधीजी व्याकुल होकर सरकारी तंत्रमें होनेवाला अनाप-शनाप खर्च और बिगाड़ देख रहे थे। और उनकी यह व्याकुलता उत्तरोत्तर बढ़ती ही जा रही थी। उनकी चौकस निगाहसे कोई भी चीज बाहर नहीं रह सकती थी — विदेशोंमें राजदूतावासोंका खर्च, मंत्रियोंके निवास-स्थानोंमें लाया जानेवाला साज-सामान, विदेशोंकी राजधानियोंमें रहनेवाले राष्ट्रके प्रतिनिधियोंका रहन-सहन आदि। समय समय पर वे चेतावनी देते रहते थे। हमारे एक विदेशमें रहनेवाले राजदूतको उन्होंने लिखा, "आपके बारेमें जो खबरें मुझे मिल रही हैं उन परसे मालूम

लगता है कि भारत सरकारें जैसी आशा रखता है वैसा जीवन आज नहीं जी रही है। क्या यह सच नहीं है?"

१९४७ में मद्रासके दिनोंमें उन्होंने दिल्लीमें एक मित्रसे कहा कि हमारे मंत्री यदि ईमानदारीसे सादगीका आदर्श अपना लें, तो वे सारी दुनियाको मंत्रमुग्ध कर देंगे और प्रजाका विश्वास संपादन कर सकेंगे। बादमें प्रजाका यह विश्वास कोई भी चीज या व्यक्ति छिना नहीं सकेगा और न कोई उसका नाश ही कर सकेगा। लेकिन यह बात तो अलग रही, यहां तो उल्टे गवर्नरों तथा मंत्रियोंको महल जैसे मकान चाहिये, अंगरक्षकोंकी बड़ी पलटन चाहिये और भड़कीली पोशाक पहने हुए खिदमतगार चाहिये। भोजन-समारंभोंको गवर्नर-पदकी नीति-रीतिका एक महत्त्वपूर्ण अंग माना जाता है। "यह सब मैं किसी भी तरह समझ नहीं पा रहा हूं। देशकी प्रतिष्ठाके लिए अधिक हानिकारक कौनसी चीज है — भारतके असंख्य मनुष्योंका अन्न-वस्त्र और मकानकी तंगीकी स्थितिमें रहना या हमारे मंत्रियों तथा गवर्नरोंका अपने आसपासकी परिस्थितिसे बिलकुल मेल न खानेवाले शानदार और बेहद खर्चवाले मकानोंमें रहनेके बदले सादे और छोटे मकानोंमें सादगीसे रहना?"

उन्होंने आगे कहा कि मेरा बस चले तो "लोग जब भारी तंगी बरदाश्त कर रहे हैं ऐसे समय" में सरकारी भोजन-समारंभ तत्काल बन्द कर दूं। मैं मंत्रियोंके रहनेके लिए सादे छोटे घर तो दूंगा, लेकिन कांग्रेसी गवर्नरों या मंत्रियोंको सशस्त्र अंगरक्षक नहीं दूंगा। "उन्होंने नीतिके रूपमें अहिंसाको अपनाया है और इसके परिणाम-स्वरूप यदि उनमें से कुछको मार भी डाला जाये, तो मैं इस बातकी परवाह नहीं करूंगा।" १

५३
क्या मंत्री अपना अनाज-कपड़ा राशनकी दुकानोंसे ही खरीदेंगे?

प्र० — जब अन्न-विभाग गवर्नरोंके सलाहकारोंके हाथमें था तब उन पर नियंत्रण रखनेकी कोई असरकारक पद्धति नहीं थी। परन्तु अब तो प्रान्तोंमें लोगोंकी जिम्मेदार सरकारें कायम हो गई हैं। इसलिए अब स्थिति बदल गई है। कांग्रेसी मंत्रियोंका यह कर्तव्य है कि वे अपना अनाज वहींसे खरीदें जहांसे सामान्य लोग खरीदते हैं। अन्नका एक दाना भी वे दूसरी जगहसे न लें। इसका असर फौरन होगा और वह दूर तक पहुंचेगा। आज कपड़े और अनाजकी सरकारी दुकानें खुली चोरी और बेईमानीका अड्डा बन गई हैं। अगर कांग्रेसी मंत्री इन्हीं दुकानोंसे अपने हिस्सेका कपड़ा और अनाज खरीदें, तो उनका नैतिक बल इतना बढ़ जायगा कि वे इन बुराइयोंका सफलतासे सामना कर सकेंगे।

उ० — यह प्रश्न इस तरहके कई पत्रोंका निचोड़ है। मुझे इन प्रश्नोंमें दी गई सलाह जचती है। मैं मानता हूं कि मंत्री और दूसरे सरकारी नौकर ऐसा ही करते होंगे। सरकारी दुकानोंके सिवा तो अनाज खरीदनेका रास्ता काला बाजार ही है। अधिकारी लोगोंसे कितना ही क्यों न कहें कि काला बाजारसे मत जाओ, लेकिन उसका उतना असर नहीं होगा जितना उनके अच्छा उदाहरण सामने रखनेसे हो सकता है। अगर वे आम लोगोंके साथ अनाज खरीदें, तो दुकानदार समझ जायेंगे कि सड़ा हुआ अनाज नहीं बेचा जा सकता। मैं सुनता हूं कि इंग्लैण्डमें तो यह आम रिवाज है कि मंत्रीगण और बड़े-बड़े अधिकारी वहींसे सामान खरीदते हैं जहांसे आम लोग खरीदते हैं। होना भी यही चाहिये। १

५४

सबकी आंखें मंत्रियोंकी ओर

ज्यों ही नये मंत्रियोंने अपने ओहदे संभाले त्यों ही कुछ अंग्रेज मित्रोंकी ओरसे गांधीजीको इस आशयके पत्र मिले कि पहले जिन घरोंमें वाइसरॉयकी कार्यकारिणी समितिके सदस्य रहते थे, उन घरोंके सुन्दर बगीचोंकी अब उतनी चिन्ता नहीं की जायगी। उनमें फूल नहीं खिलेंगे और जहां मखमल-सी मुलायम हरियाली फैली हुई है वहां अब ज्यों-त्यों घास उगने और बढ़ने दी जायगी और सारा अहाता गन्दा बन जायगा। दरियां, कुर्सियां और फर्नीचर तेलके और दूसरी चिकनाईके दागोंसे गन्दा हो जायगा और हाथ-मुंह धोनेकी जगह भी गंदी रहने लगेगी। इस पर गांधीजीने कहा, "मैं इंग्लैंड और अफ्रीकामें रहा हूं और अंग्रेजोंको अच्छी तरह पहचानता हूं। इसलिए मैं अपने खुदके अनुभवसे कह सकता हूं कि संस्कारी अंग्रेज सफाई और तन्दुरुस्तीके कानूनोंको जानते हैं और उनका अमल करते हैं। अंग्रेज अफसर तो महलों जैसे मकानोंमें बादशाहोंकी तरह रहते थे। वे अपने घरों और आसपासकी जगहको साफ रखनेके लिए नौकरोंका एक बड़ा-सा दल रखते थे। लोगोंके नेता अन्तरिम सरकारमें उनके सेवकोंकी हैसियतसे गये हैं। उन्हें अपने यहां अनगिनत नौकर रखनेकी जरूरत नहीं। यदि उन्होंने ऐसा किया, तो वे अपने ध्येयके प्रति झूठे साबित होंगे। इसलिए उन्हें अपने घर और घरोंके आसपासकी जगह अपनी ही मेहनतसे साफ-सुथरी रखनी होगी। उनके घरकी स्त्रियां भी इस काममें उनका साथ देंगी और इसका ध्यान रखेंगी। मैं जानता हूं कि इन नेताओंमें कोई भी ऐसे नहीं हैं, जो अपने नहाने-धोनेकी जगहको खुद साफ करनेसे हिचकिचायें। कई साल पहले एक डॉक्टर ... ने मुझसे कहा था कि वाइसरॉयका मकान एक महल है और

वह बिलकुल साफ-सुथरा रहता है, परन्तु उनके हरिजन नौकरोंके घर इससे बिलकुल उलटी तसवीर पेश करते हैं। जनताके नेता ऐसा कोई भेद नहीं रखेंगे। पंडित जवाहरलालके घरका एक हरिजन नौकर प्रान्तकी धारासभाका सदस्य बना है। वे अपने नौकरोंको अपने घरके आदमीकी तरह ही रखते हैं। मुझे खुशी होगी यदि हमारे देशके नेता मंत्री बननेके बाद भी जीवनके हर क्षेत्रमें जीवनका ऊंचेसे ऊंचा स्तर बनाये रखेंगे। मुझे विश्वास है कि वे राष्ट्रको निराश नहीं करेंगे। १

५५
कांग्रेसी मंत्री साहब लोग नहीं

एक कांग्रेस-सेवक पूछते हैं:

"क्या कांग्रेसी मंत्री उस साहबी ठाठसे रह सकते हैं, जिस ठाठसे अंग्रेज रहते हैं? क्या वे अपने घरेलू कामोंके लिए भी सरकारी मोटरों आदिका उपयोग कर सकते हैं?"

मेरी दृष्टिसे दोनों प्रश्नोंका एक ही उत्तर हो सकता है। यदि कांग्रेसको लोकसेवाकी ही संस्था बनी रहना है, तो उसके मंत्री साहब लोगोंकी तरह नहीं रह सकते और न वे सरकारी साधनोंका उपयोग घरेलू कामोंके लिए कर सकते हैं। १

५६
देशसेवा और मंत्रीपद

सेवा अर्थात् देशसेवा करना। देशसेवाका अर्थ यह नहीं है कि मंत्री बनें, तो ही देशकी सेवा हो सकती है। घरकी संभाल रखना भी देशसेवा है। . . आजकल तो देशसेवाका नाम बड़ा हो गया है। लोग मानते हैं कि अखबारोंमें फोटो और नाम छपना अथवा जेलमें

जाकर मंत्री बन जाना ही सच्ची देशसेवा है। इसलिए सभी लोग मंत्री बनना और सत्ता लेना चाहते हैं। ऐसी हालतमें सच्चे मंत्री कैसे काम कर सकते हैं? बेशक, अन्य लोगोंकी तरह मंत्रियोंकी भी देशको जरूरत है। परन्तु मंत्री अगर मंत्रीपदके लिए योग्य हो, तो ही वह शोभा देता है। उस पदको सुशोभित करना हमारा कर्तव्य हो जाता है। इतना हम समझ सकें तो एक अपढ़से अपढ़ स्त्री भी देशकी सेवा करती है — यदि उसके हृदयमें देशहितकी भावना हो। १

५७

कानूनमें दस्तंदाजी ठीक नहीं

अब मैं दूसरी बात लेता हूं। कुछ जगहोंमें अधिकारियोंने कई ऐसे लोगोंको गिरफ्तार किया है, जो दंगोंमें शामिल थे। पुरानी सरकारके दिनोंमें लोग वाइसरॉयसे दयाकी अपील करते थे। उन्हें बनाये हुए कानूनके मुताबिक काम करना पड़ता था, फिर उसमें कितना ही बड़ा दोष क्यों न रहा हो। अब लोग अपने मंत्रियोंसे दयाकी अपील करते हैं। लेकिन क्या मंत्री अपनी मरजीके मुताबिक काम करेंगे? मेरी रायमें उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिये। मंत्री लोग जैसा चाहें वैसा नहीं कर सकते। उन्हें कानूनके अनुसार ही काम करना होगा। राज्यकी दयाका निश्चित स्थान होता है और काफी सावधानीसे उसका उपयोग किया जाना चाहिये। ऐसे मामले तभी वापिस लिये जा सकते हैं, जब कि शिकायत करनेवाले लोग गिरफ्तार किये हुए लोगोंको छोड़नेकी अदालतसे अपील करें। भयंकर अपराध करनेवाले लोग इतनी आसानीसे नहीं छोड़े जा सकते। ऐसे मामलोंमें अपराधीके खिलाफ [illegible]त करनेवालोंके गवाही न देनेसे ही काम नहीं चलेगा। अपराधि[illegible]लतमें अपना अपराध स्वीकार करना होगा और अदालतसे [illegible] करनी होगी। और, अगर शिकायत करनेवालोंने इस

बातमें ईमानदारीसे सहयोग दिया, तो अपराधियोंका बिना सजा दिये छोड़ा जाना सभव हो सकता है। मैं जिस बात पर जोर देना चाहता हूं वह यह है कि कोई भी मंत्री अपने प्रियसे प्रिय जनके लिए भी न्यायके मार्गमें हस्तक्षेप नहीं कर सकता। ऐसा करनेका उसे कोई अधिकार नहीं है। लोकशाहीका काम है कि वह न्यायको सस्ता बनायें और ऐसी व्यवस्था करे कि न्याय लोगोंको जल्दी मिल जाय। उसे लोगोंको यह भी गारण्टी देनी होगी कि शासन-प्रबन्धमें हर तरहकी ईमानदारी और पवित्रताका ध्यान रखा जायगा। लेकिन मंत्रियोंका न्यायकी अदालतों पर असर डालने या खुद उनका स्थान ले लेनेकी हिम्मत करना लोकशाही और कानूनका गला घोंटना है। १

५८

अनुभवी लोगोंकी सलाह

हमारे मंत्री जनताके हैं और जनतामें से हैं। उन्हें इस बातका घमण्ड नहीं करना चाहिये कि उनका ज्ञान उन अनुभवी लोगोंसे ज्यादा है, जो मंत्रियोंकी कुर्सियों पर नहीं बैठे हैं —लेकिन जिनका यह दृढ विश्वास है कि कन्ट्रोल जितनी जल्दी हटे उतना ही देशको लाभ होगा। एक वैद्यने लिखा है कि अनाजके कंट्रोलने उन लोगोंके लिए, जो राशनके खाने पर ही निर्भर करते है, खाने लायक अनाज और दाल पाना असंभव बना दिया है। और, इसलिए सडा-गला अनाज खानेवाले लोग अकारण बीमारियोंके शिकार बनते हैं। १

५३

एक आलोचना

[illegible] एक सज्जनने मध्यप्रान्तके मंत्रि-मंडलकी आलोचना करते हुए मुझे एक लम्बा पत्र भेजा है। उसके सबसे तीव्र अंशको [illegible] मैं नीचे देता हूं :

कुछ समयसे मैं आपको लिखनेकी सोच रहा था, लेकिन जान-बूझकर मैंने ऐसा नहीं किया। अब एक ऐसे व्यक्तिकी हैसियतसे मैं आपको यह लिख रहा हूं, जिसको अपने प्रान्तके — उस प्रान्तके जिसे, मैं समझता हूं, आपने भी अपने शेष जीवनके लिए अपना घर बना लिया है — सुशासनकी चिन्ता है। हमें यह विश्वास कराया गया था कि कांग्रेसके मंत्रियोंका शासन ऐसा अच्छा होगा, जिसमें कोई बुराई नहीं होगी और वे केवल समझदारी और अपने नैतिक बलके प्रभावसे ही हमेशा शासन कर सकेंगे। लेकिन हमें तो कांग्रेस मंत्रि-मंडलका मुख्य उद्देश्य यह मालूम पड़ता है कि —

(अ) प्रकट रूपमें आपकी मूर्तिकी पूजा करें और अन्दर ही अन्दर उसे नष्ट करें;

(आ) अन्दरसे तो साम्राज्यवादके प्रतीकोंकी पूजा करें और प्रकट रूपमें उसकी निन्दा करें;

(इ) अपने विरोधियोंको सत्य और 'वैध' उपायोंसे जीतनेमें असमर्थ होने पर गुंडेपनका उपयोग करें; और

(ई) कानून और सरकारी पदोंका व्यापार खूब जोरोंसे चलायें।

"मध्यप्रान्तका मंत्रि-मडल यह कल्पना करता मालूम होता है कि प्रतिज्ञात लाभोंकी आम दुहाई देकर और निर्वाचकोंको बड़ी-बडी आशा द्वारा भ्रष्ट करके शासन चलाया जा सकता है; लेकिन जनताकी सरकार इस प्रकार नहीं चलाई जा सकती। पिछले दस महीनोमें आपके मत्रियोने प्रान्तके सुशासनकी नैतिक नीव हिला देनेमें कोई कसर बाकी नही छोड़ी। सक्षेपमें, मै अपना जो निर्णय आप तक पहुचाना चाहता हू वह यह है कि काग्रेस पार्टीने अगर कभी भी अधिकार और उत्तरदायित्व ग्रहण न किया होता, तो वह शासनके योग्य समझी जा सकती थी। सत्ता ग्रहण करनेके बाद दूसरी बात उसे छोड देनेकी जिम्मेदारीकी है। यह आश्चर्यकी बात है कि आपकी आत्मा ऐसे लुटेरे या पतित मंत्रि-मडलके विरुद्ध विद्रोह नहीं करती, जिसे बनानेकी नैतिक जिम्मेदारी पूर्ण रूपसे आप पर है।"

कार्यसमितिने मत्रि-मडलके खिलाफ आई हुई सारी शिकायतें पार्लियामेन्टरी बोर्डके पास भेज दी थी, जिसने मौके पर जाकर उनकी जाच की। उसकी रिपोर्ट सार्वजनिक सम्पत्ति है। काग्रेस यथासभव सर्वाधिक विस्तृत मताधिकारवाली सर्वथा लोकतान्त्रिक सस्था है। कार्यसमिति उसका मुख है और उसे काग्रेस-विधान द्वारा बाधी हुई मर्यादाओंके अन्तर्गत काम करना पडता है। मध्यप्रान्तके काग्रेमी प्रतिनिधियोंके लिए यह बात खुली थी कि वे मत्रियोंसे इस्तीफे मागते, लेकिन उन्होंने मत्रियोसे इस्तीफे नहीं मांगे। इसके खिलाफ वे चाहते थे कि मंत्रीगण आपसमें झगड़े निपटा ले और प्रान्तका शासन चलायें। पार्लियामेंटरी बोर्ड प्रतिनिधियोंकी इच्छाओंकी अवहेलना नहीं कर सकता था। उसके पास ऐसा करनेकी कोई सत्ता नहीं थी। लेकिन मत्रि-मंडलकी जो कुछ कमियां उसे मालूम हुई उनसे उसे छुडानेके लिए वह जो कुछ कर सकता था वह सब उसने किया। और यह बात स्वीकार करनी होगी कि बोर्डने जो कुछ करना चाहा उसमा

गया है — यानी प्रति मनुष्य रोजका छह छटाक अनाज दिया जाता है। इसमें दो छटाक गेहूं, दो छटाक चावल और दो छटाक मिलावटी आटा दिया जाता है। लोग आम तौर पर मिलावटी आटेको पसन्द नहीं करते और राशनमें इससे ज्यादा कमी करना लगभग असंभव है। स्पष्ट है कि शहरी क्षेत्रोंको अन्न देनेके लिए गांवोंसे उसकी पूर्ति लगातार जारी रहनी चाहिये। भारत सरकारने प्रान्तीय सरकारोंको सुझाया है कि अन्नकी लगातार पूर्तिकी पक्की व्यवस्था करनेके लिए ज्यादा अन्न पैदा करनेवाले जिलोंमें — यानी उन जिलोंमें जहां खेतीका उत्पादन ग्राम्य क्षेत्रोंकी जरूरतोंसे ज्यादा होनेकी आशा रखी जाती है — अनाजकी अनिवार्य वसूली करना वांछनीय होगा। अनिवार्य रूपसे अनाज वसूल करनेका यह प्रश्न लोगोंको बहुत परेशान किये हुए है। कहा जाता है कि सरकारने कंट्रोलकी जो कीमतें तय की हैं वे बहुत कम हैं, इसलिए वे बढ़ाई जानी चाहियें। इसका उत्तर यह है कि कीमतोंका ढांचा तो सारे हिन्दुस्तानके लिए बनाया जाता है, इसलिए उस पर असर डाले बिना किसी प्रान्तमें कीमतें बढ़ाई नहीं जा सकतीं। इसके अलावा, संयुक्त प्रान्तमें कंट्रोलके दाम ४० सेरी मनके सवा दस रुपये रखे गये हैं, जो सच पूछा जाय तो कम नहीं हैं। यह काफी अच्छी रकम है और इसमें सेतीके और जीवनकी सामान्य जरूरतोंके बढ़े हुए खर्चका उचित विचार किया गया है। युद्धसे पहलेके दिनोंमें गेहूं १ रुपयेके १३ सेर बिका करते थे। आज कंट्रोलकी दर प्रति रुपये ४ सेर है। चूंकि आम तौर पर लोगोंको यह भय रहता है कि बाजारमें अनाज मांगकी तुलनामें बहुत कम आयेगा, इसलिए जहां स्वार्थी लोग अपनी निजी जरूरतें पूरी करनेके लिए ऊंचे दामों पर खाद्यपदार्थ खरीद सकते हैं वहां काला बाजार जरूर खड़ा होगा।

मंत्रियोंने कोई विरोध नहीं किया। अब यह देखना बाकी है कि नई व्यवस्था किस तरह चलती है।

लेकिन जो बात मैं बताना चाहता हूं वह यह है कि कार्य-समिति कांग्रेस संस्थामें पाई जानेवाली किसी बुराईकी लीपापोती नहीं करना चाहती। वह अनुशासनकी कारंवाई करनेमें भयभीत नहीं होती, जिसका अधिकांश मामलोंमें पालन किया गया है।

मैं पत्र-लेखककी इस बातकी पूरी तरह ताईद करता हूं कि कांग्रेस "समझदारी और नैतिक बलके आधार पर" ही शासन कर सकती है। उन्हें और उनके समान अन्य आलोचकोंको यह विश्वास रखना चाहिये कि यदि किसी दिन कांग्रेस समझदारी और नैतिक प्रभावके स्थान पर गुण्डेपनसे काम लेना शुरू करेगी, तो उसी दिन उसकी कुदरती मृत्यु हो जायगी, जिसकी कांग्रेस अधिकारिणी होगी। १

६०

एक मंत्रीकी परेशानी

डॉ॰ काटजूने यह पत्र भेजा है:

"हिन्दुस्तानके कई हिस्सोंमें इस साल रबीकी फसल और सालोंसे खराब आई है और इसलिए आम तौर पर लोगोंको यह डर है कि इस बार देशमें अन्नकी बहुत ज्यादा तंगी रहेगी। अन्नके मामलेमें अमीर और गरीब सबको एकसी सुविधायें देनेकी दृष्टिसे संयुक्त प्रांतके बहुतसे शहरी क्षेत्रोंमें राशन देना शुरू किया गया है। राशनिंगके कारण सरकार पर यह जिम्मेदारी आती है कि वह राशनिंगके क्षेत्रोंमें रहनेवाले लोगोंके लिए अन्न मुहैया करे। प्रान्तमें अन्नकी इतनी ज्यादा तंगीका डर है कि यहां राशनकी मात्राको घटा कर कमसे कम कर दिया

गया है — यानी प्रति मनुष्य रोजका छह छटाक अनाज दिया जाता है। इसमें दो छटाक गेहू, दो छटाक चावल और दो छटाक मिलावटी आटा दिया जाता है। लोग आम तौर पर मिलावटी आटेको पसन्द नही करते और राशनमें इससे ज्यादा कमी करना लगभग असभव है। स्पष्ट है कि शहरी क्षेत्रोंको अन्न देनेके लिए गावोंसे उसकी पूर्ति लगातार जारी रहनी चाहिये। भारत सरकारने प्रान्तीय सरकारोंको सुझाया है कि अन्नकी लगातार पूर्तिकी पक्की व्यवस्था करनेके लिए ज्यादा अन्न पैदा करनेवाले जिलोंमें — यानी उन जिलोंमें जहा खेतीका उत्पादन ग्राम्य क्षेत्रोंकी जरूरतोंसे ज्यादा होनेकी आशा रखी जाती है — अनाजकी अनिवार्य वसूली करना वाछनीय होगा। अनिवार्य रूपसे अनाज वसूल करनेका यह प्रश्न लोगोंको बहुत परेशान किये हुए है। कहा जाता है कि सरकारने कट्रोलकी जो कीमतें तय की है वे बहुत कम है, इसलिए वे बढाई जानी चाहियें। इसका उत्तर यह है कि कीमतोंका ढाचा तो सारे हिन्दुस्तानके लिए बनाया जाता है, इसलिए उस पर असर डाले बिना किसी प्रान्तमें कीमतें बढाई नहीं जा सकती। इसके अलावा, संयुक्त प्रातमें कट्रोलके दाम ४० सेरी मनके सवा दस रुपये रखे गये है, जो सच पूछा जाय तो कम नहीं है। यह काफी अच्छी रकम है और इसमें खेतीके और जीवनकी सामान्य जरूरतोंके बढे हुए खर्चका उचित विचार किया गया है। युद्धसे पहलेके दिनोंमें गेहू १ रुपयेके १३ सेर बिका करते थे। आज कट्रोलकी दर प्रति रुपये ४ सेर है। चूकि आम तौर पर लोगोंको यह भय रहता है कि बाजारमें अनाज मागकी तुलनामें बहुत कम आयेगा, इसलिए जहा स्वार्थी लोग अपनी निजी जरूरतें पूरी करनेके लिए ऊचे दामों पर खाद्यपदार्थ खरीद सकते हैं वहा काला बाजार जरूर खडा होगा।

खोदनेके काममें भी सहायता की जा रही है। इन सब बातोंके कहने और करनेके बावजूद जब तक जनता साथ नहीं देती तब तक कुछ किया नहीं जा सकता। और जनताके सहयोगका अर्थ है 'अन्नदाता' किसान इस कामके लिए यथाशक्ति अधिकसे अधिक अनाज दें।"

डॉक्टर काटजूके इस पत्र पर किसानों और उनके सलाहकारोंको तथा शहरवालोंको गंभीरतासे सोचना चाहिये। सिर पर मंडरानेवाले संकटका सदुपयोग किया जा सकता है। उस स्थितिमें वह संकट न रहकर एक आशीर्वाद बन जायगा। वर्ना शाप तो वह है और शाप वह रहेगा।

डॉ॰ काटजूने एक जिम्मेदार मंत्रीके नाते ऊपरका पत्र लिखा है। इसलिए लोग उन्हें बना भी सकते हैं और बिगाड भी सकते हैं। वे उन्हें हटाकर उनसे ज्यादा अच्छे व्यक्तिको उनकी जगह रख सकते हैं। लेकिन जब तक लोगोंके चुने हुए मंत्री उनके सेवकोंकी तरह काम करते हैं, तब तक लोगोंको उनकी सूचनाओंका पालन करना चाहिये। हरएक कानून या सूचनाका विरोध सत्याग्रह नहीं होता। सत्याग्रहकी अपेक्षा वह दुराग्रह आसानीसे बन सकता है। १

६१
मंत्रियोंकी टीका

यह स्वाभाविक ही है कि जो लोग कांग्रेसकी राजनीतिको नापसन्द करते हैं, वे सभी कांग्रेसी मंत्रियोंकी बुरी तरह टीका-टिप्पणी करेंगे। ऐसी आलोचनामें जो सचाई हो वह हमें कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार कर लेनी चाहिये। लेकिन बहुत-सी आलोचना तो दलबन्दीके ही उद्देश्यसे होती है। उसको भी हमें बरदाश्त करना पड़ेगा। लेकिन जब कांग्रेसवादी भी वही शोर मचायें, तब बड़ी कठिनाई पैदा हो

लोगोंके कामसे भी सहायता की जा रही है। इन सब बातोंके रहते और करोंके बावजूद जब तक जनता साथ नहीं देती तब तक कुछ किया नहीं जा सकता। और जनताके सहयोगका अर्थ है 'श्रमदान' किसान इस कामके लिए यथाशक्ति अधिकसे अधिक मजदूर दें।"

डॉक्टर काटजूके इस पत्र पर किसानों और उनके सलाहकारोंको तथा सहकारियोंको गंभीरतासे सोचना चाहिये। फिर यह मंडरानेवाले संकटका सदुपयोग किया जा सकता है। उस स्थितिमें वह संकट न रहकर एक आशीर्वाद बन जायगा। यहां सार तो यह है और सार यह रहेगा।

डॉ॰ काटजूने एक जिम्मेदार मंत्रीके नाते ऊपरका पत्र लिखा है। इसलिए लोग उन्हें बना भी सकते हैं और बिगाड़ भी सकते हैं। वे उन्हें हटाकर उनसे ज्यादा अच्छे व्यक्तियोंको उनकी जगह रख सकते हैं। लेकिन जब तक लोगोंके चुने हुए मंत्री उनके सेवकोंकी तरह काम करते हैं, तब तक लोगोंको उनकी सूचनाओंका पालन करना चाहिये। इसलिए कानून या सूचनाका विरोध सत्याग्रह नहीं होगा। सत्याग्रहकी अपेक्षा वह दुराग्रह आसानीसे बन सकता है। १

६१

मंत्रियोंकी टीका

यह स्वाभाविक ही है कि जो लोग कांग्रेसकी राजनीतिको नापसन्द करते हैं, वे सभी कांग्रेसी मंत्रियोंकी बुरी तरह टीका-टिप्पणी करेंगे। ऐसी आलोचनामें जो सचाई हो वह हमें कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार कर लेनी चाहिये। लेकिन बहुत-सी आलोचना तो दलबन्दीके ही उद्देश्यसे होती है। उसको भी हमें बरदाश्त करना पड़ेगा। लेकिन जब कांग्रेसवादी भी यही शोर मचायें, तब बड़ी कठिनाई पैदा हो

जाती है। वैसे उनके पास तो इसका इलाज है। वे अपने प्रान्तकी कांग्रेस कमेटीसे शिकायत कर सकते हैं और वहां भी सफलता न मिले, तो वर्किंग कमेटीके पास और अन्तमें अ० भा० कांग्रेस कमेटी तक पहुंच सकते हैं। अगर ये सब उपाय भी कारगर न हों, तो फिर निश्चय ही उनकी आलोचनाके लिए कोई गुंजाइश नहीं है। लेकिन इन आलोचकोंसे मुझे सबसे बड़ी शिकायत तो यह है कि वे बड़ी जल्दबाजी करते हैं और तथ्योंको जाननेकी तकलीफ ही नहीं उठाते। परन्तु अज्ञानसे बड़ा कोई पाप नहीं है, इस महान लोकोक्तिका प्रमाण मुझे रोज ही मिलता है। १

६२

सरकारका विरोध

लोकप्रिय मंत्रि-मंडल धारासभाके सदस्योंके अधीन रह कर काम करता है। उनकी इजाजतके बिना वह कुछ कर नहीं सकता। और हरएक सदस्य अपने मतदाताओं यानी लोकमतके अधीन है। इसलिए सरकारके हर कार्य पर गहराईसे सोचनेके बाद ही उसका विरोध करना उचित होगा। आम लोगोंकी एक बुरी आदत पर भी इस सम्बन्धमें विचार किया जाना चाहिये। करदाताको करके नामसे ही नफरत होती है। फिर भी जहां अच्छी व्यवस्था है वहां अकसर यह दिखाया जा सकता है कि करदाता खुद करके रूपमें जो कुछ देता है, उसका पूरा बदला उसे मिल जाता है। शहरोंमें पानी पर वसूल किया जानेवाला कर इसी प्रकारका है। शहरमें जिस दरसे मुझे पानी मिल सकता है, उस दरमें मैं अपनी जरूरतका पानी खुद पैदा नहीं कर सकता। मतलब यह कि पानी मुझे सस्ता पड़ता है। उसकी यह दर मतदाताओंकी इच्छाके अनुसार तय करनी पड़ती है। तिस पर भी जब पानीका कर जमा करनेकी नौबत आती है तब सामान्य

नागरिकोंमें उसके प्रति एक नफरत-सी पैदा हो जाती है। यही हाल दूसरे करोंका भी है। यह सच है कि सभी तरहके करोंका ऐसा सीधा हिसाब नहीं किया जा सकता। जैसे जैसे समाजका और उसकी सेवाका क्षेत्र बढ़ता जाता है, वैसे वैसे यह बताना मुश्किल होता जाता है कि कर चुकानेवालेको उसका सीधा बदला किस तरह मिलता है। लेकिन इतना जरूर कहा जा सकता है कि समाज पर जो एक विशेष कर लगाया जाता है, उसका समाजको पूरा बदला मिलता ही है। अगर ऐसा न हो तो जरूर यह कहा जा सकता है कि यह समाज लोकमतकी बुनियाद पर नहीं चल रहा है। १

६३

मंत्रियोंको भावुक नहीं होना चाहिये

मेरे पास ऐसे बहुतसे पत्र आये हैं, जिनमें लिखनेवाले भाइयोंने हमारे मंत्रियोंके रहन-सहनको आरामतलब कहकर उसकी बड़ी आलोचना की है। उन पर यह आरोप लगाया गया है कि वे पक्षपातसे काम लेते हैं और अपने रिश्तेदारोंको ही आगे बढ़ाते हैं। मैं जानता हूं कि बहुतसी आलोचना तो आलोचकोंके अज्ञानके कारण होती है। इसलिए मंत्रियोंको उससे दुःखी नहीं होना चाहिये। सिर्फ दोष बतलानेवाली आलोचनाओंमें से उन्हें अपने लिए अच्छी बात ले लेनी चाहिये। यदि मेरे पास आये हुए पत्र मैं मंत्रियोंके पास भेज दूं, तो उन्हें आश्चर्य होगा। संभव है कि उनके पास इनसे भी बुरे पत्र आते हों। चाहे जो हो, इन पत्रोंसे मैं तो यही सबक लेता हूं कि जहां तक सादगी, धीरज, ईमानदारी और परिश्रम करनेका सम्बन्ध है, ये 'आलोचक' दूसरोंकी अपेक्षा जनता द्वारा चुने हुए सेवकोंसे इन गुणोंकी अधिक आशा रखते हैं। शायद परिश्रम और अनुशासनको छोड़कर और किसी बातमें हमें पुराने अंग्रेज शासकोंकी नकल नहीं करनी चाहिये। अगर एक तरफ

मंत्री लोग उचित आलोचनासे लाभ उठाने लगें और दूसरी तरफ आलोचना करनेवाले लोग कोई बात कहनेमें संयम और पूरी सचाईका खयाल रखें, तो इस टिप्पणीका उद्देश्य पूरा हो जायगा। गलत बात कहने या बातको बढ़ा-चढ़ाकर कहनेसे एक अच्छा मामला भी बिगड़ जाता है। १

६४
धमकियां — मंत्रियोंके लिए रोजकी बात

आम जनताको मैं यह बता देता हूं कि रोजकी धमकियोंके बावजूद मंत्री लोग हरएक तरहका अन्याय दूर करनेके लिए भरसक कोशिश कर रहे हैं। आजकल, जब कि मानसिक हिंसा देशमें बढ़ती ही चली जा रही है, व्यापक लोकतांत्रिक मताधिकारके मातहत चुने गये मंत्रियोंका भाग्य ही ऐसा है कि इस तरहकी धमकियां उनके लिए रोजमर्राकी बात बन गई हैं। वे अपने पदोंको अथवा जीवनको खतरेमें डालकर भी जिसे वे अपना कर्तव्य समझते हैं उसे करते हुए पीछे नहीं हट सकते। इसी तरह ऐसी बेहूदी धमकियोंके कारण, जैसी कि इस अर्जीमें दी गई हैं, न तो वे नाराज होंगे और न न्याय करनेसे इनकार करेंगे। १

६५
सरकारको कमजोर न बनाइये

सरकारने कुछ लोगोंको गिरफ्तार किया था, जिसके खिलाफ आन्दोलन हुआ। सरकारको ऐसा करनेका अधिकार था। हमारी सरकार निर्दोषोंको जान-बूझकर गिरफ्तार नहीं कर सकती। लेकिन मनुष्यसे गलती हो सकती है और संभव है कि गलतीसे कुछ निर्दोषोंको तकलीफ उठानी पड़े। यह काम सरकारका है कि अपनी इस गलतीको

कर सुधारे। प्रजातंत्रमें लोगोंको चाहिये कि वे सरकारकी कोई गलती देखें, तो उसकी तरफ सरकारका ध्यान खींचें और सन्तोष मान लें। अगर वे चाहें तो अपनी सरकारको हटा सकते हैं, परन्तु उसके खिलाफ आन्दोलन करके उसके कामोंमें बाधा न डालें। हमारी सरकार जबरदस्त जलसेना और स्थलसेना रखनेवाली कोई विदेशी सरकार तो है नहीं। उसका बल तो जनता ही है।

सच्ची शान्ति किस तरह स्थापित की जा सकती है? आप इस बातसे शायद खुश हों कि दिल्लीमें फिरसे शान्ति स्थापित होती जान पड़ती है। परन्तु मैं इस सन्तोषमें हिस्सा नहीं बटा सकता। हिन्दुओं और मुसलमानोंके दिल एक-दूसरेसे फिर गये हैं। वे पहले भी आपसमें लड़ा करते थे। परन्तु वह लड़ाई एक या दो दिनकी रहती थी और फिर हरएक उसके बारेमें सब-कुछ भूल जाता था। आज उनमें इतनी अधिक कड़वाहट पैदा हो गई है कि वे मानने लगे हैं, मानो वे सदियोंसे दुश्मन हों। इस तरहकी भावनाको मैं कमजोरी मानता हूं। आपको इसे जरूर छोड़ देना चाहिये। तभी आप एक महान शक्ति बन सकते हैं। आपके सामने दो बातें हैं। आप उनमें से किसी एकको चुन सकते हैं। या तो आप एक महान फौजी शक्ति बन सकते हैं; या अगर आप मेरा मार्ग अपनायें, तो आप एक अहिंसक और किसीसे भी न जीती जा सकनेवाली शक्ति बन सकते हैं। लेकिन दोनोंके ही लिए पहली शर्त यह है कि आप अपना सारा डर दूर कर दें।

एक-दूसरेके नजदीक पहुंचनेका एकमात्र रास्ता यह है कि हर आदमी दूसरे पक्षकी गलतियोंको भूल जाय और अपनी गलतियोंको बहुत बड़ी बनाकर देखे। मैं अपनी सारी ताकतसे मुसलमानोंको ऐसा करनेकी सलाह देता हूं, जैसा कि मैंने हिन्दुओं और सिक्खोंसे करनेके लिए कहा है। कलके दुश्मन आजके दोस्त बन सकते हैं, बशर्ते वे अपने अपराधोंको स्पष्ट शब्दोंमें स्वीकार कर लें। 'जैसेके साथ तैसा' की नीतिसे आपसमें दोस्ती नहीं कायम हो सकती। अगर आप पूरे

दिलसे मेरी सलाह पर अमल करेंगे, तो मैं दिल्ली छोड़ सकूंगा और अपना 'करो या मरो' का मिशन पूरा करनेके लिए पाकिस्तान जा सकूंगा। १

६६
मंत्री और जनता

नई दिल्लीकी हार्डिंज लायब्रेरीमें (ता० २८-१२-'४७ को) व्यापारियोंकी एक सभामें भाषण देते हुए गांधीजीने कहा : मैं समझता हूं कि अनाज पर जो अंकुश लगाया जाता है वह बुरा है। हिन्दुस्तानका हित उसमें हो ही नहीं सकता। कपड़ेका अंकुश भी हटना चाहिये। आज जब हमें आजादी मिल गई है, तो उसमें हम पर कंट्रोल क्यों? जवाहरलालजी, सरदार पटेल वगैरा जनताके सेवक हैं। जनताकी इच्छाके विरुद्ध वे कुछ नहीं कर सकते। अगर हम उनसे कहें कि आप अपने पदों परसे हट जाइये, तो वे वहां रह नहीं सकते। १

मैंने ऐसे लोगोंको सरकारकी विनाशात्मक टीका करते भी सुना है, जो राष्ट्रके हाथमें आई हुई सत्ताको न खुद संभाल सकते हैं और न उन्हें संभालने देना चाहते जो इसके योग्य हैं। लेकिन दूसरी तरफ मंत्रियोंको उस प्रजाके सच्चे सेवक बनना चाहिये, जिससे उन्हें सत्ता मिली है। उन्हें नौकरियोंके बारेमें पक्षपात नहीं करना चाहिये, घूस-खोरीकी बुराईमें नहीं फंसना चाहिये और सबके साथ एकसा न्याय करना चाहिये।

अगर बिहारके जमींदार, रैयत और सरकार तीनों अपना अपना कर्तव्य पालें, तो बिहार सारे हिन्दुस्तानके सामने सुन्दर उदाहरण पेश करेगा। २

६७

हमारी असफलता

इलाहाबादमें — जो कि काग्रेसका मुख्य केन्द्र है — साम्प्रदायिक दंगा होने और उसके लिए पुलिसको ही नहीं, बल्कि फौजको भी बुलानेकी जरूरत पडनेसे मालूम होता है कि कांग्रेस अभी उस योग्य नहीं हुई है कि ब्रिटिश सत्ताका स्थान ले सके। यह बात चाहे जितनी अप्रिय लगे, लेकिन अच्छा यही है कि हमें इस नग्न सत्यको अनुभव करें और उसका सामना करें। . . .

ये दंगे और दूसरी कुछ बातें ऐसी हैं, जिन पर हमें ठहरकर यह सोचना ही चाहिये कि क्या सचमुच काग्रेसका विकास हो रहा है और वह अधिकाधिक शक्ति प्राप्त करती जा रही है ? . .

यह कहा जाता है कि जब हम स्वाधीनता प्राप्त कर लेंगे तब दंगे तथा अन्य ऐसी बातें नहीं होंगी। लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि स्वतत्रताकी लड़ाईके दरमियान अगर हम अहिंसात्मक कार्यके तत्त्वको अच्छी तरह समझकर प्रत्येक कल्पनीय परिस्थितिमें उसका उपयोग न करें, तो हमारी यह आशा थोथी ही साबित होगी। जिस हद तक कांग्रेसी मंत्रियोंको पुलिस या फौजका सहारा लेना पड़ा है, उस हद तक, मेरी रायमें, हमें अपनी असफलता स्वीकार करनी ही चाहिये। क्योंकि दुर्भाग्यवश यह बिलकुल सच है कि मत्री लोग इसके सिवा कुछ कर ही नहीं सकते थे। अत: मेरी ही तरह यदि हरएक कांग्रेसवादी और कांग्रेस कार्यसमिति भी यह सोचती हो कि हम असफल सिद्ध हुए हैं, तो मैं चाहूंगा कि वे इस बात पर विचार करें कि हम असफल क्यों हुए। १

६८

आत्म-परीक्षणकी अपील

संयुक्त प्रांतके दंगोंसे मेरे हृदयको गहरा आघात लगा है। मैंने मौलाना अबुल कलाम आजाद और वोस-बन्धुओंके साथ अहिंसाकी दृष्टिसे इस पर चर्चा की। मुझे ऐसा लगा कि हम अपने ध्येयके समीप नहीं जा रहे हैं, वल्कि उससे दूर हट रहे हैं। हरिपुरामें मेरे मनमें यह आशा पैदा हुई थी कि हमारी शक्ति बढ़ती जा रही है और हमारे दोषोंके बावजूद मैं अपने जीवन-कालमें स्वराज्य देख सकूंगा। मैंने यह सोचा था कि इस साल हम वह शक्ति प्राप्त कर लेंगे। लेकिन इलाहाबाद और दूसरी जगहोंमें जो दंगे हुए हैं, उनसे मेरे दिलको सख्त चोट लगी है। हमें पुलिस और फौजकी मदद लेनी पड़ी, यह हमारे लिए लज्जाजनक बात हुई। . . . १

संयुक्त प्रांतमें हालमें जो दंगे हुए हैं, उनके संबंधमें मेरी आलोचनाओंकी ओर बहुतोंका ध्यान गया है। मित्रोंने मेरे पास अखबारोंकी कतरनें भेजी हैं। उनमें लिखित या मौखिक आलोचनाका एक मुद्दा यह है :

(२) मैंने पर्याप्त तथ्योंके बिना अपनी बात लिखी है। . . .

२. जहां तक तथ्योंका सवाल है, इतना ही पर्याप्त है कि दंगे हुए, फिर वे कितने ही छोटे क्यों न हों। कांग्रेसवादी अहिंसात्मक पद्धतिसे उनका सामना नहीं कर सके और उन्हें शान्त करनेके लिए पुलिस और फौजकी मदद लेनी पड़ी। इन तीन मुख्य बातोंके बारेमें कोई मतभेद नहीं है। और मैं जिस निष्कर्ष पर पहुंचा, उसके लिए इतनी बातें काफी थीं। इसमें मंत्रियों पर कोई आक्षेप नहीं है। बल्कि यह बात मैं खुद स्वीकार कर चुका हूं कि वे दूसरा कुछ कर ही नहीं सकते थे। लेकिन यह बात तो रहती ही है कि कांग्रेसकी अहिंसा संकटके समय कारगर सिद्ध नहीं हुई। २

मैं इस बातसे लज्जित हूं कि हमारे मंत्रियोंको अपनी सहायताके लिए पुलिस और फौजको बुलाना पड़ा। उन्होंने अपने विरोधी दलवाले वक्ताओंके भाषणोंके उत्तरमें जिस भाषाका प्रयोग किया, उसके लिए भी मैं लज्जित हूं। . . . ऐसे मौकों पर हम लोगोंकी अहिंसा असफल कैसे हो जाती है? तब क्या यह निर्बलोंकी अहिंसा है? हमारी अटल श्रद्धासे हमें गुंडे भी न डिगा सकें और न यह कहनेके लिए हमें बाध्य कर सकें कि जरूरत पड़ने पर हम उन्हें फांसीके तख्ते पर लटका देंगे या गोलीसे उड़ा देंगे — ऐसी हमारी स्थिति होनी चाहिये। वे भी तो हमारे ही देशवासी हैं। यदि वे हमें मारना चाहते हैं, तो ऐसा करनेके लिए उन्हें स्वतंत्र छोड़ देना चाहिये। आप निर्बलोंकी अहिंसाको सगठित हिंसाके मुकाबलेमें खड़ा नहीं कर सकते। उसके लिए तो बहादुरसे बहादुर लोगोंकी अहिंसा ही उपयुक्त हो सकती है। ३

कांग्रेसके जो हजारों सदस्य हैं, वे कांग्रेसके सदस्य बनते समय जिस फार्म पर हस्ताक्षर करते हैं उसके परिणामोंको क्या वे जानते हैं? . . . क्या वे सब सच्चे अर्थोंमें सदस्य हैं? क्या नकली सदस्योंका होना ही अहिंसाके सिद्धान्तका भंग नहीं है? जहां सदस्य नकली नहीं किन्तु वास्तविक हैं, वहां क्या प्रान्तकी कांग्रेस कमेटीने दगोंको शान्त करनेमें अपना कर्तव्य पूरा करनेके लिए उनसे कहा है? हम उन्हें इस प्रकार क्यों नहीं कहते? और अगर कभी हम उन्हें इसके लिए कहें, तो दस हजारमें से कितने हजार सदस्य उस पर ध्यान देंगे? अगर पांच हजार या सिर्फ एक हजार भी उस पर ध्यान दें और लड़नेवाले लोगोंके बीचमें जाकर खड़े हो जायें, तो इसमें कोई शक नहीं कि उनमें से कुछके सिर जरूर फूट जायेंगे, लेकिन इस तरह मरनेवाले वही आखिरी आदमी होंगे। इसके बाद औरोंके सिर फूटनेकी नौबत नहीं आयेगी। लेकिन यह तभी हो सकता है जब अहिंसा-धर्मके परिणामोंको भलीभांति समझ लिया जाये।

६१

नागरिक स्वाधीनता

नागरिक स्वाधीनताका अर्थ अपराध करनेकी आजादी नहीं है। कानून और व्यवस्था लोक-नियंत्रणमें हों तब जिन मंत्रियों[illegible] ये कार्य-विभाग होते हैं वे एक दिन भी नहीं टिक सकते यदि वे लोकमतके खिलाफ कुछ करने लगें। यह सच है कि धारा-सभाएं अभी समस्त जनताका प्रतिनिधित्व नहीं कर रही हैं, तो भी मताधिकार इतना व्यापक जरूर हो गया है कि कानून और व्यवस्थाके विभागों से राष्ट्रके मतका प्रतिनिधित्व कर सकें। आज देशके आठ प्रान्तोंमें कांग्रेसका शासन चल रहा है। मालूम होता है कि कुछ लोगोंने तो इसका अर्थ यह समझा है कि कमसे कम इन प्रान्तोंमें तो आदमी जो चाहे सो कह और कर सकता है। पर जहां तक मैंने कांग्रेसकी मनशाको समझा है, वह इस प्रकारकी स्वच्छंदताको वरदाश्त नहीं करेगी। नागरिक स्वाधीनताके मानी यह हैं कि साधारण कानूनकी मर्यादाके अंदर रहते हुए आदमी जो चाहे सो कहे और करे। 'साधारण' शब्दका प्रयोग यहां पर जान-बूझकर किया गया है। विशेषाधिकार देनेवाले कानूनोंकी बात छोड़ दीजिये। किन्तु ताजीरात हिन्द और फौजदारी कानूनके अन्दर भी विदेशी शासकोंने अपनी रक्षाके लिए कितनी ही धाराएं डाल रखी

है। इन धाराओंको हम बड़ी आसानीसे ढूंढ़ सकते हैं, और उन्हें रद्द कर दिया जाना चाहिये। पर सच्ची कसौटी तो वह अर्थ होगा, जो कानून और व्यवस्थाके मन्त्रियोंकी कांग्रेसकी कार्यसमिति बतायेगी। इसलिए कार्यसमितिने कांग्रेसके मन्त्रियोंके मार्गदर्शनके लिए जो सूचनाएं जारी कर रखी हैं, उन्हें ध्यानमें रखते हुए मन्त्री अपनी सत्ताका उपयोग मेरी बनाई मर्यादाओंके भीतर उन लोगोंके खिलाफ कर सकते हैं, जो नागरिक स्वाधीनताके नाम पर अराजकता और अव्यवस्थाका प्रचार करते हैं।

किसी किसीका कहना है कि कांग्रेसी मन्त्री तो अहिंसाके लिए प्रतिज्ञाबद्ध हैं। इसलिए वे ऐसे कानूनका उपयोग नहीं कर सकते, जिसमें सजाका विधान हो। कांग्रेस द्वारा स्वीकृत अहिंसाको जहां तक मैं समझा हूं वहां तक यह खयाल ठीक नहीं है। मैं खुद अभी कोई ऐसा मार्ग नहीं खोज पाया हूं जिसकी मददसे हर तरहकी परिस्थितिमें हम सजाओं और दण्डात्मक प्रतिबन्धोंके बिना काम चला सकें। निःसन्देह सजाएं अहिंसक ही होनी चाहियें — अगर यहां यह भाषा-प्रयोग सही हो। जिस प्रकार युद्धशास्त्र हिंसाकी एक विशेष विधि है और उसमें संहारके ऐसे ऐसे तरीके तथा साधन ढूंढ़े गये हैं जिनके बारेमें पहले किसीने सुना भी नहीं था, उसी प्रकार अहिंसाका भी एक शास्त्र है, एक कार्य-पद्धति है। राजनीतिशास्त्रके रूपमें अहिंसाका विकास होना अभी बाकी है। उसकी विशाल शक्तियोंका तो अभी हमें पता लगाना है। अनेक क्षेत्रोंमें और बड़े पैमाने पर जब अहिंसाका प्रयोग होने लगेगा, तब इस विषयके संशोधन भी हो सकेंगे। अगर कांग्रेसके मंत्रि-मंडलोंको अहिंसामें विश्वास होगा, तो वे इस संशोधनके कामको अपने हाथोंमें ले लेंगे। पर जब तक वे ऐसा करते हैं, अथवा वे ऐसा करें या न भी करें, तब तक इसमें तो कोई शक नहीं कि वे अभी ऐसे कार्योंको या भाषणोंको बरदाश्त नहीं कर सकते, जिसमें हिंसाको उत्तेजना मिलती हो — भले ही इस कारण उन्हें लोग हिंसक वृत्तिवाला बतायें। जब

लोग देखें कि उन्हें ऐसे मंत्रियोंकी सेवाओंकी जरूरत नहीं है, तो वे अपने प्रतिनिधियोंके जरिये अपनी असंमति प्रकट कर दें। अगर कांग्रेस-की ओरसे मंत्रियोंको कोई खास सूचना न मिली हो, तो मंत्रियोंके लिए यह उचित होगा कि वे अपनी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी या कार्यसमितिको यह सूचना कर दें कि उनकी रायमें जनतामें अमुक व्यक्तिका व्यवहार हिंसाको उत्तेजित करनेवाला है और उसके बारेमें प्रान्तीय समिति या कार्यसमितिकी आज्ञा मांग लें। अगर उनके उच्चाधिकारी उनकी सिफारिशोंको स्वीकार न करें, तो मंत्री अपने इस्तीफे पेश कर दें। उन्हें परिस्थितिको यहां तक बिगड़नेका मौका ही नहीं देना चाहिये कि फौजको बुलानेकी नौबत आ जाय। उसमें अहिंसाकी किसी भी योजनामें देशकी भीतरी शान्तिके लिए बाहरी फौजका उपयोग हो ही नहीं सकता। और अगर किसी मंत्रीको अपनी रक्षाके लिए उस फौजको बुलाने पर मजबूर होना ही पड़े — जो असंभव नहीं है — तो मैं तो उसे [illegible] [illegible] ही समझूंगा।

७०

तूफानके आसार

शोलापुरकी हालकी घटनामे और कानपुर तथा अहमदाबादके मजदूरोकी अशातिसे यह जाहिर होता है कि इस प्रकारके उपद्रवोंकी शक्तियों पर कांग्रेसका नियंत्रण कितना संदिग्ध है। 'जरायम-पेशा' कहलानेवाली जातियोंके साथ पहले जिस तरह व्यवहार किया जाता था, उससे अत्यन्त भिन्न किसी प्रकारसे उनके साथ तब तक व्यवहार नहीं किया जा सकता, जब तक इस बातका निश्चय न हो जाय कि वे कैसा बरताव करेंगी। हां, एक फर्क जरूर फौरन किया जा सकता है। उनके साथ अपराधियों जैसा व्यवहार न किया जाय। न तो उनसे हम डरें और न उनसे घृणा करें, बल्कि उनके साथ भाईचारा जोड़ने और उन्हें राष्ट्रीय प्रभावके नीचे लानेके प्रयत्न करें। यह कहा जाता है कि शोलापुरकी जरायम-पेशा बस्तीके आदमियोंको लाल झंडेवाले (साम्यवादी) अंदर ही अंदर उभाड़ते हैं। क्या वे कांग्रेसके आदमी हैं? यदि हां, तो वे उन कांग्रेसियोंके पक्षमें क्यों नहीं हैं, जो कि कांग्रेस-की इच्छासे आज मंत्रीपद पर आसीन हैं? और अगर वे कांग्रेस-जन नहीं हैं, तो क्या वे कांग्रेसके प्रभाव और प्रतिष्ठाको नष्ट करनेकी कोशिश कर रहे हैं? यदि वे कांग्रेसी नहीं हैं और कांग्रेसकी प्रतिष्ठाको नष्ट करना चाहते हैं, तो कांग्रेसजन इन जातियोंके पास क्यों नहीं पहुंचे? और कांग्रेसजन ऐसा कोई उपाय करनेमें असमर्थ क्यों रहे, जिससे उन लोगोंके फुसलानेका इन जातियों पर कोई असर न पड़े, जो इन जातियोंकी आनुवंशिक — कल्पित या वास्तविक — हिंसात्मक प्रवृत्तियोंका अनुचित लाभ उठाते हैं?

अहमदाबाद और कानपुरमें हमें क्यों हमेशा ही अचानक और अनुचित ढंग पर हड़तालोंके होनेका डर लगा रहता है? संगठित मज-

दूसों पर सही दिशामें अपना प्रभाव डालनेमें कांग्रेस क्यों असमर्थ है? जिन प्रान्तोंमें आज कांग्रेसी मंत्रियों द्वारा शासन चल रहा है, उनमें वहाँकी सरकारके जारी किये हुए नोटिसोंको हम अविश्वासकी नजरसे न देखें। हम गैर-जिम्मेदार सरकारके नोटिसोंको कोई महत्त्व नहीं दिया करते थे; वैसा व्यवहार इन नोटिसोंके साथ करनेसे काम नहीं चलेगा। अगर हमारा कांग्रेसी मंत्रियों पर विश्वास नहीं है या हम उनसे असन्तुष्ट हैं, तो वे बिना किसी शिष्टाचारके बरखास्त किये जा सकते हैं। लेकिन जब तक हम उन्हें मंत्रीपद पर बने रहने देते हैं तब तक उनके नोटिसों और अपीलोंको सारे कांग्रेसजनोंका पूर्ण हार्दिक समर्थन

सदस्य न सिर्फ कुछ लाख पुरुष और स्त्रियां हों, बल्कि १८ वर्षसे ऊपरके हरएक बालिग पुरुष और स्त्रीको उसका सदस्य होना चाहिये, फिर वे किसी भी धर्मके हों। और कांग्रेसके रजिस्टरमें उनके नाम इसलिए दर्ज किये जायें कि वे राष्ट्रीय स्वतंत्रताकी लड़ाईके अर्थमें सत्य और अहिंसाके आचरणकी ठीक ठीक तालीम और शिक्षण पायें। कांग्रेसके बारेमें मेरी हमेशा यह कल्पना रही है कि वह सारे राष्ट्रको राजनीतिक शिक्षा देनेका सबसे बड़ा विद्यालय है। लेकिन कांग्रेस इस आदर्शकी सिद्धिमें अभी बहुत दूर है। सुननेमें आता है कि कांग्रेसके झूठे रजिस्टर बनाये जाते हैं और संख्या बढ़ानेकी गरजसे उनमें सदस्योंके झूठे नाम लिख लिये जाते हैं, और जहां रजिस्टर ईमानदारीके साथ तैयार किये जाते हैं, वहां मतदाताओंके निकट सम्पर्कमें रहनेका प्रयत्न नहीं किया जाता।

स्वभावत: यह प्रश्न उठता है कि क्या हम सचमुच सत्य और अहिंसामें, ठोस काम और अनुशासनमें तथा चतुर्विध रचनात्मक कार्यक्रमकी शक्तिमें विश्वास करते हैं? अगर करते हैं तो कांग्रेसी मंत्रियोंके चंद महीनोंके शासनमें यह दिखानेके लिए काफी प्रमाण मिल चुका है कि जब पद स्वीकार किये गये थे तबसे पूर्ण स्वाधीनता आज हमारे अधिक निकट है। परन्तु यदि हमें अपने खुदके पसन्द किये हुए उद्देश्योंमें विश्वास नहीं है, तो हमें आश्चर्य नहीं करना चाहिये अगर किसी दिन हमारी आंखें खुल जायं और हम देखें कि पद-ग्रहणकी दिशामें कदम रखकर हमने एक भारी भूल की थी। पद-ग्रहणकी दिशामें एक प्रवर्तक बल्कि प्रधान प्रवर्तककी हैसियतसे मेरी अन्तरात्मा बिलकुल स्पष्ट है। मैंने इस खयालसे पद-ग्रहणकी सलाह दी थी कि कांग्रेसवादी कुल मिलाकर न केवल लक्ष्य पर बल्कि सत्यतापूर्ण और अहिंसात्मक साधनों पर भी दृढ़ हैं। अगर साधनोंमें इस राजनीतिक श्रद्धा पर हमारा विश्वास नहीं है, तो संभव है कि पद-ग्रहण एक जाल साबित हो। १

सदस्य न सिर्फ कुछ लाख पुरुष और स्त्रियां हों, बल्कि १८ वर्षसे ऊपरके हरएक बालिग पुरुष और स्त्रीको उसका सदस्य होना चाहिये, फिर वे किसी भी धर्मके हों। और कांग्रेसके रजिस्टरमें उनके नाम इसलिए दर्ज किये जायें कि वे राष्ट्रीय स्वतंत्रताकी लड़ाईके अर्थमें सत्य और अहिंसाके आचरणकी ठीक ठीक तालीम और शिक्षण पायें। कांग्रेसके बारेमें मेरी हमेशा यह कल्पना रही है कि वह सारे राष्ट्रको राजनीतिक शिक्षा देनेका सबसे बड़ा विद्यालय है। लेकिन कांग्रेस इस आदर्शकी सिद्धिसे अभी बहुत दूर है। सुननेमें आता है कि कांग्रेसके झूठे रजिस्टर बनाये जाते हैं और संख्या बढ़ानेकी गरजसे उनमें सदस्योंके झूठे नाम लिख लिये जाते हैं, और जहां रजिस्टर ईमान-दारीके साथ तैयार किये जाते हैं, वहां मतदाताओंके निकट सम्पर्कमें रहनेका प्रयत्न नहीं किया जाता।

स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि क्या हम सचमुच सत्य और अहिंसामें, ठोस काम और अनुशासनमें तथा चतुर्विध रचनात्मक कार्यक्रमकी शक्तिमें विश्वास करते हैं? अगर करते हैं तो कांग्रेसी मंत्रियोंके चंद महीनोंके शासनमें यह दिखानेके लिए काफी प्रमाण मिल चुका है कि जब पद स्वीकार किये गये थे तबसे पूर्ण स्वाधी-नता आज हमारे अधिक निकट है। परन्तु यदि हमें अपने खुदके पसन्द किये हुए उद्देश्योंमें विश्वास नहीं है, तो हमें आश्चर्य नहीं करना चाहिये अगर किसी दिन हमारी आंखें खुल जाय और हम देखें कि पद-ग्रहणकी दिशामें कदम रखकर हमने एक भारी भूल की थी। पद-ग्रहणकी दिशामें एक प्रवर्तक बल्कि प्रधान प्रवर्तककी हैसियतसे मेरी अन्तरात्मा बिलकुल स्पष्ट है। मैंने इस खयालसे पद-ग्रहणकी सलाह दी थी कि कांग्रेसवादी कुल मिलाकर न केवल लक्ष्य पर बल्कि सत्यतापूर्ण और अहिंसात्मक साधनों पर भी दृढ़ हैं। अगर साधनोंमें इस राजनीतिक श्रद्धा पर हमारा विश्वास नहीं है, तो सम्भव है कि पद-ग्रहण एक जाल साबित हो। १

अधिकांश विद्यार्थी कांग्रेसी मनोवृत्तिके हैं और होने चाहिये। वे ऐसा कोई भी काम नहीं करेंगे, जिससे मंत्रियोंकी स्थिति संकटमें पड़ जाय। वे हड़ताल करेंगे तो केवल इसी कारणसे करेंगे कि मंत्री उनसे ऐसा कराना चाहते हैं। परन्तु कांग्रेस जब पदोंका त्याग कर दे और जब कांग्रेस कदाचित् तत्कालीन सरकारके खिलाफ अहिंसात्मक लड़ाई छेड़ दे, तो उस प्रसंगके अलावा जहां तक मैं कल्पना कर सकता हूं कांग्रेसी मंत्री कभी भी विद्यार्थियोंसे हड़ताल करनेके लिए नहीं कहेंगे। और कभी ऐसा प्रसंग आ जाय तब भी मुझे लगता है कि प्रारंभमें ही विद्यार्थियोंसे हड़तालके लिए पढ़ाई स्थगित करनेकी बात कहना मानो अपना दिवाला पीटना होगा। अगर हड़ताल जैसे किसी भी प्रदर्शनके लिए कांग्रेसके साथ जनसमूह होगा, तो विद्यार्थियोंको — सिवा अंतिम सहारेके रूपमें — उसमें शामिल होनेके लिए नहीं कहा जायगा। गत स्वातंत्र्य-युद्धके समय विद्यार्थियोंको सबसे पहले उसमें शामिल होनेके लिए नहीं कहा गया था। मुझे जहां तक याद है सबसे अन्तमें उनसे कहा गया था — वह भी केवल कॉलेजके विद्यार्थियोंसे।

अच्छा हो कि एक अध्यापकके पत्र पर मैंने १८ सितम्बरके 'हरिजन' में 'शिक्षामंत्रियोंके प्रति' शीर्षक जो लेख लिखा है, उसे ये पत्रलेखक पढ़ जायं या दुबारा पढ़ें। विद्यार्थियों और अध्यापकोंकी राजनीतिक स्वतन्त्रताके विषयमें मेरे विचार उस लेखमें उन्हें मिल जायेंगे।

लेकिन दूसरे एक सज्जन इसी सम्बन्धमें लिखते हैं :

> "अगर हम सरकारके वेतनभोगी अफसरों, अध्यापकों और दूसरे कर्मचारियोंको राजनीतिमें भाग लेने देंगे, तो सब कुछ चौपट हो जायगा। सरकारकी नीति पर जिन सरकारी अफसरोंको अमल करना है वे ही अगर उस नीतिके सम्बन्धमें वाद-विवाद करने लग जायें, तो कोई भी सरकार चल नहीं सकती। आपकी यह अभिलाषा उचित ही है कि राष्ट्रकी आत्माको

शासनप्रणाली और देशभक्तिके विचारोंको प्रकट करनेकी पूरी स्वतन्त्रता मिलनी चाहिये। पर मुझे भय है कि आप अपने विद्यार्थियोंको अगर बिलकुल शान्त नहीं करेंगे, तो आपके लिये [illegible] पैदा हो सकती है।"

मेरा खयाल था कि मैंने अपने विद्यार्थियोंको बिलकुल शान्त बना दिया है। अतः राष्ट्रीय सरकार होती है वहां उसके तथा उसके अधिकारियों और विद्यार्थियोंके बीच शायद ही कोई संघर्ष होता है। मेरे उस लेखमें अनुशासन-भंगके प्रति तो चेतावनी है ही। उन अध्यापकका रोष तो इस बात पर है कि अब भी विद्यार्थियोंके पीछे जासूस लगे जाते हैं और उनके स्वतन्त्र विचारोंको कुचला जाता है; और उनका यह रोष उचित ही है। कांग्रेसके मंत्री खुद प्रजाके हैं और प्रजामें से ही आये हैं। उन्हें कोई बात गुप्त नहीं रखनी है। उनसे आशा तो यह की जाती है कि वे हरएक सार्वजनिक प्रवृत्तिसे व्यक्तिगत सम्पर्क रखेंगे — जिसमें विद्यार्थियोंका मानस भी आ जाता है। कांग्रेसका सारा तंत्र उनके हाथमें है, और चूंकि यह तंत्र प्रजाकी इच्छाका प्रदर्शक है, अतः इसकी शक्ति कानून, पुलिस और फौजकी अपेक्षा निश्चय ही अधिक है। जिन्हें इस प्रकारके लोक-तंत्रका समर्थन प्राप्त नहीं है, वे बन्दूकके काममें लाये हुए खाली कारतूसके समान हैं। जिन मंत्रियोंके पीछे कांग्रेसका बल है, उनके लिए कहा जा सकता है कि कानून, पुलिस और फौज केवल ऊपरी शोभाकी चीजें हैं। और कांग्रेस तो अनुशासनकी, नियमपालनकी मूर्ति है; अगर यह बात उसमें न हो तो फिर उसमें और रखा ही क्या है? इसलिए कांग्रेसके शासन-कालमें नियमका पालन सर्वत्र मजबूरन् नहीं, बल्कि स्वेच्छासे ही होना चाहिये। १

७२
क्या यह पिकेटिंग है?

एक शिकायत यह है कि शान्त पिकेटिंगके नाम पर धरना देनेवाले लोग ऐसे उपायोंका सहारा ले रहे हैं, जो हिंसाकी हद तक पहुंच जाते हैं — जैसे वे जिन्दा आदमियोंको खड़ा करके दीवार-सी बना लेते हैं, जिसे खुद अपनेको या दीवार बनानेवालोंको चोट पहुंचाये बिना कोई पार नहीं कर सकता। शान्त पिकेटिंग मेरी चलाई हुई है; लेकिन मुझे ऐसा एक भी उदाहरण याद नहीं, जिसमें मैंने ऐसी पिकेटिंगको प्रोत्साहन दिया हो। एक मित्रने इस संबंधमें धरासनाका हवाला दिया है। वहां मैंने नमकके कारखाने पर अधिकार करनेकी बात जरूर सुझाई थी, लेकिन इस मामलेमें वह बात बिलकुल लागू नहीं होती। धरासनामें तो हमारा लक्ष्य नमकके कारखाने पर था, जिसे सरकारके हाथसे छीनकर हमें अपने अधिकारमें लेना था। उस कार्यको पिकेटिंग शायद ही कहा जा सकता है। लेकिन यह तो शुद्ध हिंसा है कि कर्मचारियों या मजदूरोंके आगे खड़े होकर उन्हें अपने काम पर जानेसे रोका जाय। इसलिए इसे तो छोड़ ही देना चाहिये। ऐसा करनेवाले कांग्रेसवादी अगर इससे बाज न आयें, तो मिलों या अन्य कारखानोंके मालिकोंका इसके लिए पुलिसकी मदद लेना बिलकुल उचित होगा और कांग्रेसी सरकारको यह मदद देनी ही होगी। १

जिस (दूसरी) असंगतताका मुझ पर आरोप लगाया गया है, वह कारखानेदारोंको दी गई मेरी यह सलाह है कि जिसे मैंने हिंसात्मक पिकेटिंग कहा है उससे अपनी रक्षा करनेके लिए वे पुलिसकी मदद ले सकते हैं। मेरे आलोचकोंका यह कहना है कि दंगोंको दबानेके लिए मंत्रि-मंडलोंने पुलिस और फौजकी जो मदद ली, उसकी निन्दा

उनका उपयोग इतना कम कर दिया जाय कि देखनेवालोंको वह नर्मी साफ मालूम पड़ने लगे, तो उनके लिए यह दुर्भाग्यकी बात होगी। २

और पिकेटिंगका क्या हो? जो लोग बड़ीसे बड़ी कठिनाइयोंके बीच जैसे-तैसे शासनके भारी बोझको उठाये हुए हैं, उनके घरों या दफ्तरों पर जाकर बच्चे या बड़े उन्हें गालियां दें यह असहनीय है। सत्याग्रहकी दृष्टिसे जब तक इसका कोई सही उपाय हमें न मिले तब तक मन्त्रियोंको इस बातकी छूट होनी ही चाहिये कि ऐसे अपराधोंके लिए जो तरीका उन्हें सबसे अच्छा लगे उसका वे उपयोग करें। अगर वे लोग ऐसा न करें, तो कांग्रेसी राज्यमें जो स्वतन्त्रता संभव है वह जल्दी ही बिगड़कर शुद्ध गुंडेपनका रूप ले लेगी। वह मुक्तिका मार्ग नहीं, बल्कि सर्वनाशका सबसे आसान राजमार्ग है। इसलिए कोई भी वफादार मंत्री देशके सर्वनाशका निमित्त बननेसे दृढ़ताके साथ इनकार करेगा। ३

७३

मंत्रि-मंडल और सेना

प्रान्तीय स्वतन्त्रता, जैसी कुछ भी वह है, सविनय कानून-भंगके द्वारा — फिर वह कितने ही नीचे दर्जेका क्यों न रहा हो — हासिल की गई है। लेकिन क्या यह महसूस नहीं किया जाता कि अगर कांग्रेसी मंत्री पुलिस और फौजकी अर्थात् ब्रिटिश तोपोंकी सहायताके बिना अपना काम न चला सकें, तो वह स्वतन्त्रता खतम हो जायेगी? अगर आंशिक प्रान्तीय स्वतन्त्रता अहिंसात्मक उपायोंसे प्राप्त की गई है, तो उसकी रक्षा भी उन्हीं उपायोंसे — किन्हीं दूसरे उपायोंसे नहीं — की जानी चाहिये। हालांकि पिछले २० वर्षोंसे — सर्वाधिक जन-जागृतिकी इस अवधिमें — जनताको हथियारोंका, जिनमें ईंट-पत्थर और लाठी भी शामिल हैं, प्रयोग न करने और एकमात्र

अहिंसाकी ही अपनानेकी शिक्षा दी जाती रही है, फिर भी हम जानते हैं कि जनताकी तरफसे होनेवाली वास्तविक या काल्पनिक हिंसाको दबानेके लिए कांग्रेसी मंत्रियोंको हिंसाका प्रयोग करनेके लिए मजबूर होना पड़ा है। . . . तब क्या हमारी अहिंसा कमजोरोंकी अहिंसा थी? १

७४

कांग्रेसी मंत्री और अहिंसा

श्री शंकरराव देव लिखते हैं :

"लोगोंकी समझमें यह बात नहीं आ रही है कि जो लोग अपनेको सत्याग्रही कहते हैं, वे मंत्री बनते ही फौज और पुलिसका उपयोग क्यों करने लगते हैं। लोग मानते हैं कि धर्म या व्यवहार (नीति) के रूपमें मानी हुई अहिंसाका यह भंग है। और ऊपरी विचारसे यह सच भी मालूम होता है। कांग्रेसी मंत्रियोंके विचारोंमें और व्यवहारमें यह जो विरोध दिखाई देता है, उसका समर्थन करना आसान न होनेके कारण हमारे कार्यकर्ता उलझनमें पड़ जाते हैं। और इस विसंगतिसे लाभ उठानेवाले कांग्रेसी या गैर-कांग्रेसी प्रचारकोंका मुकाबला करना उनके लिए मुश्किल होता है।

"आम तौर पर कांग्रेसियोंकी अहिंसा कमजोरोंकी अहिंसा ही रही है। हिन्दुस्तानकी आजकी हालतमें यही हो सकता था, इसे तो आप भी जानते हैं। आप कहते हैं कि बलवानकी अहिंसामें तेज होता है। फिर भी कमजोरोंको बलवान बनानेके लिए आपने अहिंसाका उपयोग स्वीकार किया। इतना ही नहीं, बल्कि आप उनके नेता भी बने। इस तरह कमजोर होते हुए भी आज उनके हाथमें सत्ता आई है। यह असंभव है कि जो

लोग अंग्रेजी हुकूमतके खिलाफ अहिंसासे लड़े, वे ही अब अपने हाथमें सत्ता लेकर देशमें दगा-फसादके समय भी अहिंसाका उपयोग करके उसे मिटानेको तैयार हों। अगर वे ऐसी कोशिश करें भी, तो न वे अपनी कोशिशमें सफल होंगे और न उन्हें इस काममें आम लोगोंकी हमदर्दी ही मिलेगी।

"मैंने एक बार आपसे पूछा था कि क्या सत्याग्रही अपने हाथमें सत्ता या हुकूमतकी बागडोर ले सकता है? अगर वह ले सकता है, तो उस सत्ताके जरिये वह अहिंसाको कैसे आगे बढ़ा सकता है? कृपा करके आप इस पर थोड़ा प्रकाश डालिये। जिसने अहिंसाको धर्म माना है, वह कभी सरकारमें शामिल होना पसन्द नहीं करेगा। और मेरी राय है कि उसे ऐसा करना भी नहीं चाहिये। लेकिन मैं मानता हूं कि जिन्होंने अहिंसाको केवल नीति या व्यवहारकी दृष्टिसे अपनाया है, उनके लिए पद-ग्रहण करनेमें कोई दिक्कत न होनी चाहिये। बहुतेरे कांग्रेसियोंने मंत्रीपद संभाले हैं और इसके लिए आपने उन्हें इजाजत भी दी है। ऐसी हालतमें सवाल यह उठता है कि उन मंत्रियोंमें जिनका अहिंसामें विश्वास है, उनसे आपका यह आशा रखना कहां तक उचित है कि वे खुद तो दगा-फसादके मौकों पर अहिंसाका ही उपयोग करें? अहिंसाके द्वारा सत्ता प्राप्त करनेके बाद उसका इस प्रकार कैसे उपयोग किया जाय कि जिससे हुकूमत ही अनावश्यक हो जाय? अगर ऐसा कोई मार्ग आप न सुझायेंगे, तो हमारे अपने ध्येय तक पहुंचनेमें सत्याग्रह एक अधूरा साधन माना जायगा।"

मेरी दृष्टिसे इसका उत्तर आसान है। कुछ समयसे मैंने यह कहना शुरू कर दिया है कि कांग्रेसके विधानसे 'सत्य और अहिंसा' शब्दोंको हटा देना चाहिये। अगर हम यह समझकर चलें कि कांग्रेसके विधानसे ये दोनों शब्द हटें या न हटें, फिर भी हम तो इन दोनोंसे

नी रेखाको ध्यानमें रखनेके कारण ही हमने भूमितिमें प्रगति की है। यही बात प्रत्येक आदर्शके बारेमें सच है।

इतना हमें जरूर याद रखना चाहिये कि आज दुनियामें कहीं भी अराजक समाज अस्तित्वमें नहीं है। अगर ऐसा समाज कभी कहीं बन सकता है, तो उसका आरंभ हिन्दुस्तानमें ही हो सकता है, क्योंकि हिन्दुस्तानमें ऐसा समाज बनानेकी कोशिश की गई है। आज तक हम आखिरी दरजेकी बहादुरी नहीं दिखा सके। परन्तु उसे दिखानेका एक ही मार्ग है; और वह यह है कि जो लोग उसमें विश्वास रखते हैं, वे उसे अपने जीवनमें सिद्ध कर दिखायें। ऐसा करनेके लिए हमें मृत्युका भय उसी तरह छोड़ देना होगा, जिस प्रकार हमने जेलोंका भय छोड़ दिया है। १

७५

सचमुच शर्मकी बात

जिस अहमदाबाद शहर पर सरदार वल्लभभाई पटेलको नाज रहा है और जिसकी म्युनिसिपैलिटीमें उन्होंने प्रथम श्रेणीका बुनियादी काम किया है, उससे आज भगवान रूठ गया है। अहमदाबादके हिन्दू और मुसलमान हमेशा एक-दूसरेके साथ मिल-जुलकर शांतिसे रहते आये हैं। लेकिन मालूम होता है कि इधर अहमदाबादवालों पर पागलपन सवार हो गया है। इससे गांधीजीको अपार वेदना हुई है। प्रार्थनाके बाद अपने एक भाषणमें उन्होंने कहा : "मालूम होता है कि अहमदाबाद-के हिन्दू और मुसलमान हैवान बन गये हैं। अहमदाबादमें पिछले दिनों जो लोग मारे गये हैं, वे सब छुरीसे या ऐसे ही दूसरे हथियारोंसे कि‍ गये आक्रमणसे नहीं मरे हैं। यह सचमुच एक शर्मकी बात है कि एक-दूसरेका गला काटनेसे रोकनेके लिए पुलिस और ... लेनी पड़ती है। अगर एक पक्षके लोग बदला लेना

भी रेखाको ध्यानमें रखनेके कारण ही हमने भूमितिमें प्रगति की है। यही बात प्रत्येक आदर्शके बारेमें सच है।

इतना हमें जरूर याद रखना चाहिये कि आज दुनियामें कहीं भी अराजक समाज अस्तित्वमें नहीं है। अगर ऐसा समाज कभी कहीं बन सकता है, तो उसका आरंभ हिन्दुस्तानमें ही हो सकता है, क्योंकि हिन्दुस्तानमें ऐसा समाज बनानेकी कोशिश की गई है। आज तक हम आखिरी दरजेकी बहादुरी नहीं दिखा सके। परन्तु उसे दिखानेका एक ही मार्ग है; और वह यह है कि जो लोग उसमें विश्वास रखते हैं, वे उसे अपने जीवनमें सिद्ध कर दिखायें। ऐसा करनेके लिए हमें मृत्युका भय उसी तरह छोड़ देना होगा, जिस प्रकार हमने जेलोंका भय छोड़ दिया है। १

७५

सचमुच शर्मकी बात

जिस अहमदाबाद शहर पर सरदार वल्लभभाई पटेलको नाज रहा है और जिसकी म्युनिसिपैलिटीमें उन्होंने प्रथम श्रेणीका बुनियादी काम किया है, उससे आज भगवान रूठ गया है। अहमदाबादके हिन्दू और मुसलमान हमेशा एक-दूसरेके साथ मिल-जुलकर शांतिसे रहते आये हैं। लेकिन मालूम होता है कि इधर अहमदाबादवालों पर पागलपन सवार हो गया है। इससे गांधीजीको अपार वेदना हुई है। प्रार्थनाके बाद अपने एक भाषणमें उन्होंने कहा : "मालूम होता है कि अहमदाबादके हिन्दू और मुसलमान हैवान बन गये हैं। अहमदाबादमें पिछले दिनों जो लोग मारे गये हैं, वे सब छुरीसे या ऐसे ही दूसरे हथियारोंसे [illegible] गये आक्रमणसे नहीं मरे हैं। यह सचमुच एक शर्मकी बात है कि एक-दूसरेका गला काटनेसे रोकनेके लिए पुलिस और [illegible] लेनी पड़ती है। अगर एक पक्षके लोग बदला लेना

दूर हट ही गये हैं, तो हम स्वतंत्र रूपसे यह समझ सकेंगे कि कोई काम सही है या गलत।

मैं मानता हूं कि जब तक भीतरी शांति बनाये रखनेके लिए फौज या पुलिसका भी उपयोग होगा, तब तक हम ब्रिटिश हुकूमत या दूसरी किसी विदेशी हुकूमतके अधीन ही रहेंगे — फिर चाहे देशका शासन कांग्रेसियोंके हाथमें हो या दूसरोंके हाथमें। मान लीजिये कि कांग्रेसी मंत्रि-मंडलोंका अहिंसामें विश्वास नहीं है। यह भी मान लीजिये कि लोग अर्थात् हिन्दू, मुसलमान और दूसरे हिन्दुस्तानी सेना और पुलिसका सहारा चाहते हैं। अगर वे यह सहारा चाहते हैं, तो वह उन्हें मिलता रहेगा। जो कांग्रेसी मंत्री अहिंसामें पूरा विश्वास रखते हैं, उन्हें सेना या पुलिसकी मदद लेना अच्छा नहीं लगेगा। इसलिए वे इस्तीफा दे सकते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि जब तक लोगोंमें आपसमें फैसला करनेकी शक्ति नहीं आ जाती तब तक दंगा-फसाद होते रहेंगे और हममें अहिंसाका सच्चा बल पैदा ही नहीं होगा।

अब सवाल यह रहता है कि ऐसा अहिंसक बल कैसे पैदा हो सकता है? इस सवालका उत्तर अहमदाबादसे आये हुए एक पत्रके उत्तरमें ४ अगस्त, १९४६ को मैं 'पहले खुद कूदो' लेखमें दे चुका हूं। जब तक हमारे हृदयोंमें बहादुरी और प्रेमके साथ मरनेकी शक्ति पैदा नहीं होती, तब तक हम वीरोंकी अहिंसाके विकासकी आशा नहीं रख सकते।

अब सवाल यह है कि आदर्श समाजमें कोई राज्यसत्ता होगी या वह एक बिलकुल अराजक समाज बनेगा? मेरे विचारसे ऐसा प्रश्न पूछनेसे कोई लाभ नहीं होगा। अगर हम ऐसे समाजके लिए मेहनत करते रहें, तो वह कुछ हद तक धीरे धीरे बनता रहेगा। और उस हद तक लोगोंको उससे लाभ पहुंचेगा। युक्लिडने कहा है कि रेखा वही हो सकती है, जिसमें चौड़ाई न हो। लेकिन ऐसी रेखा न तो आज तक कोई बना पाया है और न आगे बना पायेगा। फिर

ो रेखाको ध्यानमें रखनेके कारण ही हमने भूमितिमें प्रगति की
। यही बात प्रत्येक आदर्शके बारेमें सच है।

इतना हमें जरूर याद रखना चाहिये कि आज दुनियामें कहीं भी
राजक समाज अस्तित्वमें नहीं है। अगर ऐसा समाज कभी कहीं बन
कता है, तो उसका आरंभ हिन्दुस्तानमें ही हो सकता है, क्योंकि
हिन्दुस्तानमें ऐसा समाज बनानेकी कोशिश की गई है। आज तक
हम आखिरी दर्जेकी बहादुरी नहीं दिखा सके। परन्तु उसे दिखानेका
एक ही मार्ग है; और वह यह है कि जो लोग उसमें विश्वास रखते
हैं, वे उसे अपने जीवनमें सिद्ध कर दिखायें। ऐसा करनेके लिए हमें
मृत्युका भय उसी तरह छोड़ देना होगा, जिस प्रकार हमने जेलोंका
भय छोड़ दिया है। १

७५

सचमुच शर्मकी बात

जिस अहमदाबाद शहर पर सरदार वल्लभभाई पटेलको नाज
रहा है और जिसकी म्युनिसिपैलिटीमें उन्होंने प्रथम श्रेणीका बुनियादी
काम किया है, उससे आज भगवान रूठ गया है। अहमदाबादके हिन्दू
और मुसलमान हमेशा एक-दूसरेके साथ मिल-जुलकर शांतिसे रहते आये
हैं। लेकिन मालूम होता है कि इधर अहमदाबादवालों पर पागलपन
सवार हो गया है। इससे गांधीजीको अपार वेदना हुई है। प्रार्थनाके
बाद अपने एक भाषणमें उन्होंने कहा : "मालूम होता है कि अहमदाबाद-
के हिन्दू और मुसलमान हैवान बन गये हैं। अहमदाबादमें पिछले दिनों
जो लोग मारे गये हैं, वे सब छुरीसे या ऐसे ही दूसरे हथियारोंसे किये
गये आक्रमणसे नहीं मरे हैं। यह सचमुच एक शर्मकी बात है कि उन्हें
एक-दूसरेका गला काटनेसे रोकनेके लिए पुलिस और सेनाकी मदद
लेनी पड़ती है। अगर एक पक्षके लोग बदला लेना बन्द कर दें, तो

दंगा आगे बढ़े ही नहीं। हिन्दुस्तानके ४० करोड़ लोगोंमें से कुछ लाख लोग यहां दंगेमें मारे जायं या मर मिटें, तो उसमें क्या हर्ज है? अगर वे बिना मारे मरनेका सबक सीख सकें, तो इतिहास और पुराणोंमें कर्मभूमिके नामसे प्रसिद्ध भारतवर्ष स्वर्गभूमि बन जाय।"

गांधीजीने बम्बई सरकारके गृहमंत्री श्री मोरारजी देसाईसे, जो अहमदाबाद जानेसे पहले उनसे मिलने आये थे, कहा था कि उन्हें अकेले एक ईश्वरके भरोसे इस आगका सामना करना चाहिये और इसे बुझानेमें पुलिस या सेनाकी मदद नहीं लेनी चाहिये। अगर जरूरत समझें तो वे खुद इस आगको बुझानेकी कोशिशमें श्री गणेशशंकर विद्यार्थीकी तरह मर मिटें। श्री मोरारजी देसाईने अहमदाबाद पहुंचकर वहांके हिन्दुओं और मुसलमानोंके प्रतिनिधियोंकी एक संयुक्त कान्फरेन्स बुलाई और उनसे कहा कि अगर आप चाहें तो शहरसे पुलिस और सेना उठा लेनेकी मेरी तैयारी है। लेकिन वहां आये हुए लोगोंने एकराय होकर उनसे कहा कि हम ऐसा कोई खतरा उठानेको तैयार नहीं हैं। परिणाम यह हुआ कि शहरमें पुलिस और सेना बनी रही। इस पर गांधीजीने अत्यन्त व्यथित होकर कहा: "इस तरीकेसे कुछ समयके लिए अहमदाबादमें दंगे-फसाद जरूर रुक गये हैं। लेकिन आज वहां जो शांति दिखाई देती है वह तो स्मशानकी शांति है। उस पर किसीको कोई नाज नहीं हो सकता। काश, हिन्दू और मुसलमान दोनों मिल जाते और उन्हें आपसके झगड़ोंसे दूर रखनेके लिए बुलाई गई पुलिस और सेनाकी मदद लेनेसे वे इनकार कर देते।"

गांधीजीने लोगोंको चेतावनी देते हुए कहा कि जब तक वे शांति और कानूनकी रक्षाके लिए पुलिस और सेनाकी मदद लेते रहेंगे, तब तक सच्ची आजादीकी बात निरी बकवास ही रहेगी। [1]

विभाग – १२ : विविध

७६

प्रांतीय गवर्नर कौन हों ?

यह पत्र आचार्य श्रीमन्नारायण अग्रवालने वर्धासे हिन्दीमें लिखा है :

"एक सवाल है, जो मेरे खयालसे महत्वका है और जिसके बारेमें मैं आपकी राय जानना चाहता हूं। भारतका जो नया विधान बनाया जा रहा है, उसमें प्रान्तोंके गवर्नर चुननेके लिए नियम रखे गये हैं। प्रान्तका गवर्नर उस प्रान्तके सभी बालिगोंके मतसे चुना जायेगा। इसलिए यह साफ जाहिर है कि जिसे कांग्रेसका पालियामेन्टरी बोर्ड चुनेगा, उसे ही आम तौरसे प्रान्तकी जनता गवर्नर चुन लेगी। प्रान्तका मुख्यमंत्री भी कांग्रेस पार्टीका ही होगा। प्रान्तका गवर्नर ऐसा ही व्यक्ति होना चाहिये, जो उस प्रान्तकी पार्टीबाजीसे अलग रहे। लेकिन अगर प्रान्तका गवर्नर आम तौरसे कांग्रेसी होगा और उसी प्रान्तका होगा, तो वह कांग्रेस दलकी पार्टीबाजीसे अलग नहीं रह सकेगा। या तो वह कांग्रेसी मुख्यमंत्रीके इशारों पर चलेगा या फिर गवर्नर और मुख्यमंत्रीके बीच कुछ न कुछ खींचातानी रहेगी।

"मेरे खयालसे तो प्रान्तोंमें अब गवर्नरोंकी जरूरत ही नहीं है। मुख्यमंत्री ही सब कामकाज चला सकता है। जनताका ५५०० रु. मासिक गवर्नरके वेतन पर व्यर्थ ही क्यों खर्च किया जाये? फिर भी अगर प्रान्तोंमें गवर्नर रखने ही हैं, तो वे उसी प्रान्तके नहीं होने चाहियें। बालिग मतसे उन्हें चुननेमें भी

वेकारका खर्च और परेशानी होगी। यही अच्छा होगा कि
संघका राष्ट्रपति हर प्रान्तमें दूसरे किसी प्रान्तका ऐसा प्रतिष्ठित
कांग्रेसी सज्जन भेजे, जो उस प्रान्तकी पार्टीवाजीसे अलग रहकर
वहांके सार्वजनिक और राजनीतिक जीवनको ऊंचा उठा सके।
आज प्रान्तोंके जो गवर्नर केंद्रीय सरकारने नियुक्त किये हैं, वे
करीव करीव इन्हीं सिद्धान्तोंके अनुसार चुने गये हैं, ऐसा लगता
है। और इसलिए प्रान्तोंका राजनीतिक जीवन भी ठीक ही चल
रहा है। अगर स्वतंत्र भारतके आगामी विधानमें उसी प्रान्तका
आदमी वालिग मतसे चुननेका कायदा रखा गया, तो मुझे डर
है कि प्रान्तोंका राजनीतिक जीवन ऊंचा नहीं रह सकेगा।

"उस विधानमें ग्राम-पंचायतोंका और राजनीतिक सत्ताको
छोटी इकाइयोंमें वांट देनेका कोई जिक्र नहीं किया गया है।
लेकिन मेरा उद्देश्य अपने पूज्य नेताओंकी टीका करना जरा
भी नहीं है। जो चीज मुझे खटकती है, उस पर मैं आपकी राय
जानना चाहता हूं।"

आचार्यजीने प्रान्तीय गवर्नरोंके वारेमें जो कहा है, उसके सम-
र्थनमें कहनेको तो वहुत है। लेकिन मुझे कवूल करना होगा कि मैं
विधान-परिषदकी सव कार्रवाई नहीं देख सका हूं। मुझे इतना भी
मालूम नहीं है कि गवर्नरके चुनावका प्रस्ताव किस तरह पैदा हुआ।
इसको न जानते हुए भी मुझे आचार्यजीकी दलील मजवूत लगती है
उसमें यह चीज मुझे चुभती है कि मुख्यमंत्रीको गवर्नर समझा जाय औ
किसी दूसरेको गवर्नर नहीं वनाया जाय। इसके वावजूद कि लोगों
तिजोरीकी कौड़ी-कौड़ीको वचाना मुझे वहुत पसन्द है, पैसेकी वचत
लिए प्रान्तीय गवर्नरोंकी संस्थाको एकदम उड़ा देना सही अर्थशास
नहीं होगा। गवर्नरोंको हस्तक्षेप करनेका वहुत अधिकार देना ठी
नहीं है। वैसे ही उनको सिर्फ शोभाके पुतले वना देना भी ठीक न
होगा। मंत्रियोंके कामको सुधारनेका अधिकार उन्हें होना चाहि

प्रान्तकी खटपटसे अलग होनेके कारण भी वे प्रान्तका कारोबार ठीक तरहसे देख सकेंगे और मंत्रियोंको गलतियोंसे बचा सकेंगे। गवर्नर लोग अपने अपने प्रान्तकी नीतिके रक्षक होने चाहियें।

आचार्यजी जैसा बताते हैं, अगर विधानमें ग्राम-पंचायत और सत्ताको छोटी इकाइयोंमें बांटने (विकेन्द्रीकरण) के बारेमें इशारा तक नहीं है, तो यह गलती दूर होनी चाहिये। अगर आम जनताकी राय ही हमारे लिए सब कुछ है, तो पंचोंका अधिकार जितना ज्यादा हो उतना लोगोंके लिए अच्छा है। पंचोंकी कार्रवाई और प्रभाव लाभदायक हों, इसके लिए लोगोंकी सही शिक्षा बहुत आगे बढ़नी चाहिये। यह लोगोंकी फौजी ताकतकी बात नहीं है, बल्कि नैतिक ताकतकी बात है। इसलिए मेरे मनमें तो तालीमसे नई तालीमका ही मतलब है। १

७७

भारतीय गवर्नर

१. हिन्दुस्तानी गवर्नरको चाहिये कि वह खुद पूरे संयमका पालन करे और अपने आसपास संयमका वातावरण खड़ा करे। इसके बिना शराबबन्दीके बारेमें सोचा भी नहीं जा सकता।

२. उसे अपने आपमें और अपने आसपास हाथ-कताई और हाथ-बुनाईका वातावरण पैदा करना चाहिये, जो हिन्दुस्तानके करोड़ों मूक लोगोंके साथ उसकी एकताकी प्रकट निशानी हो, 'मेहनत करके रोटी कमाने' की जरूरतका और संगठित हिंसाके खिलाफ — जिस पर आजका समाज टिका हुआ मालूम होता है — संगठित अहिंसाका जीता-जागता प्रतीक हो।

३. अगर गवर्नरको अच्छी तरह काम करना है, तो उसे लोगोंकी निगाहोंसे बचे हुए और फिर भी सबकी पहुंचके लायक छोटेसे मकानमें रहना चाहिये। ब्रिटिश गवर्नर स्वभावसे ही ब्रिटिश

सत्ताको दिखाता था। उसके लिए और उसके लोगोंके लिए सुरक्षित महल बनाया गया था — ऐसा महल जिसमें वह और उसके साम्राज्यको टिकाये रखनेवाले उसके सेवक रह सकें। हिन्दुस्तानी गवर्नर राजा-नवाबों और दुनियाके राजदूतोंका स्वागत करनेके लिए थोड़ी शान-शौकतवाली इमारतें रख सकते हैं। गवर्नरके मेहमान बननेवाले लोगोंको उसके व्यक्तित्व और आसपासके वातावरणसे 'अनटु दिस लास्ट' (सर्वोदय) — सबके साथ समान बरताव — की सच्ची शिक्षा मिलनी चाहिये। उसके लिए देशी या विदेशी महँगे फर्नीचरकी जरूरत नहीं। 'सादा जीवन और ऊँचे विचार' उसका आदर्श होना चाहिये। यह आदर्श सिर्फ उसके दरवाजेकी ही शोभा न बढ़ाये, बल्कि उसके रोजके जीवनमें भी दिखाई दे।

७८
गवर्नर और मंत्रीगण

गवर्नरोका कर्तव्य और अधिकार अपने मत्रियोको राज्यकी नीतिकी मोटी मोटी वातो पर सलाह देना और अमुक सत्ताओं पर अमल करनेमें रहे खतरेके बारेमें उन्हें सावधान कर देना है। परन्तु इतना करनेके बाद उन्हें अपने मत्रियोको उनके स्वतत्र निर्णय पर अमल करनेके लिए छोड देना चाहिये। अगर ऐसा न किया जाय, तो जिम्मेदारी शब्दका कोई अर्थ नही रह जायगा, और जो मत्री अपने मतदाताओंके प्रति जिम्मेदार हैं, उनके हिस्सेमें अपमान और अनादरके सिवा दूसरा कुछ नही आयेगा — यदि कानूनके द्वारा उनके हाथमें सौंपे गये दैनिक राजकाजमें अपनी जिम्मेदारीको उन्हें गवर्नरोंके साथ बाटना पड़े। १

७९
किसान प्रधानमंत्री

एक भाईने मुझसे किसानोकी वात की। मैंने कहा, मेरा चले तो हमारा गवर्नर-जनरल किसान होगा; हमारा प्रधानमत्री किसान होगा; सब-कुछ किसान होगा, क्योंकि यहाका राजा किसान है। मुझे बचपनमें सिखाया गया था: "हे किसान, तू बादशाह है।" किसान जमीनसे अनाज पैदा न करे, तो हम क्या खायेंगे ? हिन्दुस्तानका सच्चा राजा तो वही है। लेकिन आज हम उसे गुलाम बनाकर बैठे हैं। आज किसान क्या करे? एम. ए. वने? बी. ए. वने? ऐसा किया तो किसान मिट जायेगा। बादमें वह कुदाली नही चलायेगा। जो आदमी अपनी जमीनमें से अन्न पैदा करता है और खाता है, वह जनरल बने, प्रधान बने, तो हिन्दुस्तानकी शकल बदल जायेगी। फिर आज जो सडांध है, वह नहीं रहेगी। १

८१
विधान-सभाका अध्यक्ष

जो अध्यक्ष (स्पीकर) कानूनकी किसी धाराके पाठके स्पष्ट अर्थको जान-बूझकर उलटा अर्थ करे, तो वह अपनेको इस उच्च पदके अयोग्य सिद्ध करेगा और कांग्रेसके ध्येयको बदनाम करेगा। उसके लिए यह आवश्यक है कि वह हर तरहसे कांग्रेसकी प्रामाणिकता और शुद्धताकी साख बनाये रखे। लेकिन मेरा मतलब तो यही है कि जहां किसी धाराके स्पष्टत. दो या दोसे अधिक अर्थ लगाये जा सकते हों, वहां अध्यक्ष इस बातके लिए बंधा हुआ है कि वह उसका वही अर्थ लगाये जो राष्ट्रीय ध्येयके अनुकूल पड़ता हो। लेकिन जब किसी धाराका सिर्फ एक ही अर्थ निकलता हो, तो अध्यक्षको बिना किसी हिचकिचाहटके वही अर्थ बताना चाहिये। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि अध्यक्षकी ऐसी निष्पक्षतासे उसकी ख्याति बढ़ेगी और उस हद तक कांग्रेसकी नैतिक प्रतिष्ठा भी जरूर बढ़ेगी। हिंसाका परित्याग कर देनेके बाद कांग्रेसकी शक्ति तो कांग्रेसवादियोंकी वैयक्तिक नैतिक दृढ़ता और निर्भयता पर ही पूर्णत. अवलम्बित है। १

८२
सरकारी नौकरियां

ऐसा लगता है कि अगर यूनियनके सारे प्रान्तोंको हर दिशामें एकसी प्रगति करनी हो, तो हर प्रान्तकी नौकरियां, पूरे हिन्दुस्तानकी प्रगतिके ख्यालसे, ज्यादातर वहांके रहनेवालोंको ही दी जानी चाहियें। अगर हिन्दुस्तानको दुनियाके सामने स्वाभिमानसे अपना सिर ऊंचा रखना है, तो किसी प्रान्त और किसी जाति या तबकेको पिछड़ा हुआ नहीं रखा जा सकता। लेकिन हिन्दुस्तान अपने हथियारोंके बल पर ऐसा नहीं कर सकता, जिनसे दुनिया ऊब चुकी है। उसे अपने हर

प्रधानमंत्रीका श्रेष्ठ कार्य

हिन्दू और सिक्ख शरणार्थियोंके कष्टोंका उल्लेख करते हुए गांधीजीने कहा: पंडितजीको मैं जानता हूं। उनके पास अगर एक खोला और एक गूदड़ा दो बिछौने होंगे, तो वे गूदड़े पर किसी दुःखीको सुलायेंगे और खोला खुद लेंगे या कसरत करके अपने शरीरको गरम रखेंगे। मैं यह पढ़कर बहुत खुश हुआ कि उनका घर मेहमानोंसे भरा रहने पर भी वे कहते हैं कि मैं अपने घरमें दो-एक कमरे शरणार्थियोंके लिए निकाल दूंगा। उनमें दुःखियोंको रखूंगा। ऐसा ही दूसरे बड़े धनी लोग और फौजी अफसर भी करें, तो कोई दुःखी नहीं रहेगा। उसका बड़ा असर होगा। इस सुन्दर देशमें हमारे पास ऐसे रत्न हैं। दुःखी जब देखेगा कि वह अकेला नहीं है, उसके साथ और भी लोग हैं, तो उसका दुःख दूर होगा और वह मुसलमानोंके साथ दुश्मनी नहीं करेगा। १

एक भाई लिखते हैं कि जवाहरलालजी, दूसरे मंत्री और फौजी अफसर वगैरा सब अपने-अपने घरोंमें से कुछ जगह शरणार्थियोंके लिए निकालें, तो भी उनमें कितने लोग बस सकते हैं? कहनेवाले ज्यादा हैं, करनेवाले कम।

ठीक है। कुछ हजार ही उनमें रह सकेंगे। काम इतना बड़ा नहीं है, पर करनेवाले एक उदाहरण सामने रखेंगे। इंग्लैंडके राजा कुछ भी त्याग करें, एक प्याली शराब भी छोड़ें, तो भी उनकी कदर होती है। सब सभ्य देशोंमें ऐसा होता है। पंडित नेहरूने सारे देशके सामने एक सुन्दर उदाहरण रखा है। इसीलिए दिल्लीकी तरफ अधिक शरणार्थी आकर्षित हो रहे हैं। जाहिर है कि उन्हें लगता है कि दिल्लीमें उनके साथ उत्तम व्यवहार होगा। २

८१

विधान-सभाका अध्यक्ष

जो अध्यक्ष (स्पीकर) कानूनको किसी धाराके पाठके स्पष्ट अर्थका जान-बूझकर उलटा अर्थ करे, तो वह अपनेको इस उच्च पदके अयोग्य सिद्ध करेगा और कांग्रेसके ध्येयको बदनाम करेगा। उसके लिए यह आवश्यक है कि वह हर तरहसे कांग्रेसकी प्रामाणिकता और शुद्धताकी लाज बनाये रखे। लेकिन मेरा मतलब तो यही है कि जहां किसी धाराके स्पष्टतः दो या दोसे अधिक अर्थ लगाये जा सकते हों, वहां अध्यक्ष इस बातके लिए बंधा हुआ है कि वह उसका वही अर्थ लगाये जो राष्ट्रीय ध्येयके अनुकूल पड़ता हो। लेकिन जब किसी धाराका सिर्फ एक ही अर्थ निकलता हो, तो अध्यक्षको बिना किसी हिचकिचाहटके वही अर्थ बताना चाहिये। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि अध्यक्षकी ऐसी निष्पक्षतासे उसकी ख्याति बढ़ेगी और उस हद तक कांग्रेसकी नैतिक प्रतिष्ठा भी जरूर बढ़ेगी। हिंसाका परित्याग कर देनेके बाद कांग्रेसकी शक्ति तो कांग्रेसवादियोंकी वैयक्तिक नैतिक दृढ़ता और निर्भयता पर ही पूर्णतः अवलम्बित है। १

८२

सरकारी नौकरियां

ऐसा लगता है कि अगर यूनियनके सारे प्रान्तोंकी हर दिशामें एकसी प्रगति करनी हो, तो हर प्रान्तकी नौकरियां, पूरे हिन्दुस्तानकी प्रगतिके खयालसे, ज्यादातर वहांके रहनेवालोंको ही दी जानी चाहियें। अगर हिन्दुस्तानको दुनियाके सामने स्वाभिमानसे अपना सिर ऊंचा रखना है, तो किसी प्रान्त और किसी जाति या तबकेको पिछड़ा हुआ नहीं रखा जा सकता। लेकिन हिन्दुस्तान अपने हथियारोंके बल पर ऐसा नहीं कर सकता, जिनसे दुनिया ऊब चुकी है। उसे अपने हर

नागरिकके जीवनमें और हालमें ही मेरे बताये हुए समाजवादमें प्रकट होनेवाली अपनी मौलिक संस्कृतिके द्वारा ही चमकना चाहिये। . . . इसका यह मतलब है कि अपनी योजनाओं या उसूलोंको जनप्रिय बनानेके लिए किसी भी तरहकी शक्ति या दबाव काममें न लिया जाय। जो चीज सचमुच जनप्रिय है, उसे सबसे मनवानेके लिए जनताकी रायके सिवा दूसरी किसी शक्तिकी शायद ही जरूरत हो। इसलिए बिहार, उड़ीसा और आसाममें कुछ लोगों द्वारा की गई हिंसाके जो बुरे दृश्य देखनेमें आये, वे कभी दिखाई नहीं देने चाहिये थे। अगर कोई आदमी नियमके खिलाफ काम करता है या दूसरे प्रांतोंके लोग किसी प्रांतमें आकर वहांके लोगोंके अधिकार छीनते हैं, तो उन्हें दंड देने और व्यवस्था बनाये रखनेके लिए जनप्रिय सरकारें प्रांतोंमें राज्य कर रही हैं। प्रांतीय सरकारोंका यह फर्ज है कि वे दूसरे प्रांतोंसे अपने यहां आनेवाले सब लोगोंकी पूरी-पूरी रक्षा करें। "जिस चीजको तुम अपनी समझते हो, उसका इस तरह उपयोग करो कि दूसरेको नुकसान न पहुंचे" — यह न्यायका जाना-पहचाना सिद्धान्त है। यह नैतिक व्यवहारका भी सुन्दर नियम है। आजकी हालतमें यह कितना उचित मालूम होता है!

"रोममें रोमनोंकी तरह रहो" यह कहावत जहां तक रोमन बुराइयोंसे दूर रहती है वहां तक समझदारीसे भरी और लाभ पहुंचानेवाली कहावत है। एक-दूसरेके साथ घुल-मिलकर उन्नति करनेके काममें यह ध्यान रखना चाहिये कि बुराइयोंको छोड़ दिया जाय और अच्छाइयोंको पचा लिया जाय। १

पांच इंजीनियरोंकी जरूरत हो, तो ऐसा नहीं होना चाहिये कि हम हरएक जातिसे एक एक इंजीनियर ले। हमें तो पांच सबसे सुयोग्य इंजीनियर चुन लेने चाहियें, भले वे सब मुसलमान हों या पारसी हों। सबसे निचले दरजेकी जगहें, यदि जरूरी मालूम हो, परीक्षाके जरिये भरी जायं; और यह परीक्षा किसी ऐसी समितिकी निगरानीमें हो, जिसमें विविध जातियोंके लोग हों। लेकिन नौकरियोंका बटवारा विविध जातियोंकी संख्याके अनुपातमें नहीं होना चाहिये। राष्ट्रीय सरकार बनेगी तब शिक्षामें पिछड़ी हुई जातियोंको शिक्षाके मामलेमें जरूर दूसरोंकी अपेक्षा विशेष सुविधायें पानेका अधिकार होगा। ऐसी व्यवस्था करना कठिन नहीं होगा। लेकिन जो लोग देशके शासन-तंत्रमें बड़े-बड़े पदोंको पानेकी आकांक्षा रखते हैं उन्हें उसके लिए जरूरी परीक्षा अवश्य पास करनी होगी। २

सिविल सर्विस और तनख्वाहें

मेरे पास शिकायतें आती हैं कि सिविल सर्विसवालोंको इतनी भारी तनख्वाहें क्यों दी जाती हैं? लेकिन सिविल सर्विसवालोंको हम एकदम हटा नहीं सकते। अगर हटा दें तो काम कैसे चले? कुछ लोग तो चले गये। इसलिए जो लोग रह गये हैं, उन्हें अधिक मेहनतसे काम करना पड़ता है। इसलिए सरदार पटेलने उन्हें धन्यवाद भी दिया है। जो लोग धन्यवादके लायक हैं उन्हें धन्यवाद मिले, तो मुझे कोई शिकायत नहीं हो सकती। परन्तु सच्ची सिविल सर्विस तो हम लोग हैं। हम जितना विश्वास सिविल सर्विसके लोगों पर रखते हैं उतना अगर अपने आप पर रखें, तो हम बहुत आगे बढ़ सकते हैं। अगर हम दगा करें, तो जैसे सिविल सर्विसवालोंको सजा होती है वैसे ही हमें भी सजा होनी चाहिये। अमुक काम गौर कर कहा जाय कि इतना काम आपको करना ही है। इस तरह सारी प्रजाको हम जिम्मेदार समझते हैं। जिन्हें पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी बनाते हैं उन्हें भी प्रतिमाह भारी वेतन देना पड़ता है और सिविल सर्विसवालोंको भी। अब कांग्रेसके

हाथमें करोड़ोंका कारोबार नहीं था, तब तो हम किसीको मासिक वेतन नहीं देते थे। मासिक वेतन देना, मकान देना और पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी बनाना, यह मुझे तो चुभता है। कांग्रेसका काम हमेशा सेवा करना रहा है। पहले हमें आजादी हासिल करनी थी। अब हमें हिन्दुस्तानको ऊंचा उठाना है और यह देखना है कि हिन्दू, सिक्ख, मुसलमान, पारसी, ईसाई सब लोग यहां शान्तिसे रहें। इस कामके लिए क्या हम पैसे दें? आज तक नहीं देते थे, तो अब कैसे दें? १५ अगस्तके बाद हमने देशको कितना आगे बढ़ाया है? कितना पानी गिरा, कितनी उपज बढ़ी? कितने उद्योग बढ़े? इसका हिसाब तो लीजिये। पैसे क्या कर सकते हैं? हिन्दका काम बढ़े, नाम बढ़े और दाम बढ़े, तब तो बात है। तब गांवके लोग भी महसूस करेंगे कि कुछ हो रहा है। ऐसा न हो और हम खर्च बढ़ाते जायं, वह कैसे हो सकता है? हर पेढ़ीको अपनी आमदनी और खर्चका हिसाब रखना पड़ता है। आमदनी खर्चसे ज्यादा हो तो अच्छा लगता है। लेकिन इससे उलटी बात हो तो चिंता होती है। हिन्दुस्तान एक बड़ी पेढ़ी है। आज हमारे पास पैसे हैं, इसलिए हम नाचते हैं। लेकिन हम संभल कर नहीं चलेंगे, तो वे पैसे रहनेवाले नहीं हैं। ३

सिविल सर्विसवालोंके कर्तव्य

लोकराज्य तो वही है जिसमें कोई रास्ते चलता आदमी उसके विषयमें क्या कहता है, इसका अभ्यास किया जाय। और ऐसा राज्य बादशाहोंके महल या आलीशान मकानमें बैठकर नहीं चल सकता। हम तो गरीब हैं। इसलिए पैदल चलकर काम हो सकता हो, तो हम मोटरका उपयोग न करें। यदि कभी कोई मोटरमें बैठनेको कहेगा, तो हम उससे भी कहेंगे कि आपकी मोटर आपको ही मुबारक हो, हम तो पैदल ही ऑफिस जायेंगे। महलोंमें रहनेवाला या मोटरमें फिरनेवाला आदमी राज्य नहीं चला सकता, क्योंकि इसके कारण उसे आम जनताकी परिस्थिति मालूम होना कठिन हो जाता है। लेकिन

यदि वह पैदल घूमे-फिरे और आम जनताके बीच रहे तो उसे सच्ची जानकारी प्राप्त हो सकती है।

दूसरी एक बात और है। मेरे पास ऐसी शिकायतें आई है कि आजकल सरकारने व्यापार भी शुरू कर दिया है। उदाहरणके रूपमें, अनाजकी व्यवस्था राजेन्द्रबाबू सभाल रहे हैं, वस्त्रकी व्यवस्था राजाजी देख रहे हैं। ऐसी जीवनके लिए आवश्यक वस्तुओंका व्यापार श्रेष्ठ पुरुषोंके हाथमें होते हुए भी लोगोंको जरूरी वस्त्र और अन्न मिल नही रहा है। इसका कारण यह है कि सरकारी नौकर काफी बड़ी मात्रामें रिश्वत लेते हैं। मैं नही कह सकता कि यह खबर कहा तक सही है। लेकिन यदि सरकारी नौकर ऐसे ही हों, तो उन विभागोंके मंत्रियोंको इस बातकी उचित जाच अवश्य करनी चाहिये। सरकारी नौकरोंकी जिन पर कृपा हो, जिनका वसीला हो अथवा सगे-सम्बन्धी हों, उन्हें तुरन्त नौकरी मिल जाये, सख्याकी अपेक्षा दुगुने-तीगुने रेशन कार्ड मिल जायें — ऐसी तमाम बाते यदि सच हो तो हमें शरम आनी चाहिये। अब हम पर कोई विदेशी सरकार राज्य नही कर रही है। और अग्रेजोंके जमानेमें छोटे सरकारी कर्मचारियों पर जिस तरहके हुक्म बजाये जाते थे, वैसे हुक्म भी अब आप पर कोई नही बजा सकता। इसलिए छोटे-बड़े सब लोगोंको वफादारीके साथ देशकी सेवा करनी चाहिये। आपको अपने मनसे यह वृत्ति निकाल देनी चाहिये कि नौकरी करके पैसे कमा लिये और अपना पेट भर गया, तो हमने दुनिया जीत ली। जितने भी सिविल सर्विसवाले कर्मचारी हैं उनसे मैं विनतीपूर्वक कहना चाहता हूं कि आजसे आपकी जिम्मेदारी दस गुनी ज्यादा बढ रही है। आप लोग जितनी वफादारीसे देशकी सेवा करेंगे उतनी ही जल्दी स्वराज्यमें सुख, शान्ति और समृद्धि प्राप्त होगी। ४

घुड़दौड़ और सिविल सर्विस

नीचे दिया हुआ भाग 'हरिजनबन्धु' में छपे एक गुजराती पत्रका साराश है :

हाथमें करोड़ोंका कारोबार नहीं था, तब तो हम किसीको मासिक वेतन नहीं देते थे। मासिक वेतन देना, मकान देना और पालियामेंटरी सेक्रेटरी बनाना, यह मुझे तो चुभता है। कांग्रेसका काम हमेशा सेवा करना रहा है। पहले हमें आजादी हासिल करनी थी। अब हमें हिन्दुस्तानको ऊंचा उठाना है और यह देखना है कि हिन्दू, सिक्ख, मुसलमान, पारसी, ईसाई सब लोग यहां शान्तिसे रहें। इस कामके लिए क्या हम पैसे दें? आज तक नहीं देते थे, तो अब कैसे दें? १५ अगस्तके बाद हमने देशको कितना आगे बढ़ाया है? कितना पानी गिरा, कितनी उपज बढ़ी? कितने उद्योग बढ़े? इसका हिसाब तो लीजिये। पैसे क्या कर सकते हैं? हिन्दका काम बढ़े, नाम बढ़े और दाम बढ़े, तब तो बात है। तब गांवके लोग भी महसूस करेंगे कि कुछ हो रहा है। ऐसा न हो और हम खर्च बढ़ाते जायं, वह कैसे हो सकता है? हर पेढ़ीको अपनी आमदनी और खर्चका हिसाब रखना पड़ता है। आमदनी खर्चसे ज्यादा हो तो अच्छा लगता है। लेकिन इससे उलटी बात हो तो चिंता होती है। हिन्दुस्तान एक बड़ी पेढ़ी है। आज हमारे पास पैसे हैं, इसलिए हम नाचते हैं। लेकिन हम संभल कर नहीं चलेंगे, तो वे पैसे रहनेवाले नहीं हैं। ३

सिविल सर्विसवालोंके कर्तव्य

लोकराज्य तो वही है जिसमें कोई रास्ते चलता आदमी उसके विषयमें क्या कहता है, इसका अभ्यास किया जाय। और ऐसा राज्य वाइसरॉयके महल या आलीशान मकानमें बैठकर नहीं चल सकता। हम तो गरीब हैं। इसलिए पैदल चलकर काम हो सकता हो, तो हम मोटरका उपयोग न करें। यदि कभी कोई मोटरमें बैठनेको कहेगा, तो हम उससे भी कहेंगे कि आपकी मोटर आपको ही मुबारक हो, हम तो पैदल ही ऑफिस जायेंगे। महलोंमें रहनेवाला या मोटरमें फिरनेवाला आदमी राज्य नहीं चला सकता, क्योंकि इसके कारण उसे आम जनताकी प्रतिक्रिया मालूम होना कठिन हो जाता है। लेकिन

यदि वह पैदल घूमे-फिरे और आम जनताके बीच रहे तो उसे सच्ची जानकारी प्राप्त हो सकती है।

दूसरी एक बात और है। मेरे पास ऐसी शिकायतें आई हैं कि आजकल सरकारने व्यापार भी शुरू कर दिया है। उदाहरणके रूपमें, अनाजकी व्यवस्था राजेन्द्रबाबू संभाल रहे हैं, वस्त्रकी व्यवस्था राजाजी देख रहे हैं। ऐसी जीवनके लिए आवश्यक वस्तुओंका व्यापार श्रेष्ठ पुरुषोंके हाथमें होते हुए भी लोगोंको जरूरी वस्त्र और अन्न मिल नहीं रहा है। इसका कारण यह है कि सरकारी नौकर काफी बड़ी मात्रामें रिश्वत लेते हैं। मैं नहीं कह सकता कि यह खबर कहां तक सही है। लेकिन यदि सरकारी नौकर ऐसे ही हों, तो उन विभागोंके मंत्रियोंको इस बातकी उचित जांच अवश्य करनी चाहिये। सरकारी नौकरोंकी जिन पर कृपा हो, जिनका वसीला हो अथवा सगे-सम्बन्धी हों, उन्हें तुरन्त नौकरी मिल जाये, सख्याकी अपेक्षा दुगुने-तीगुने रेशन कार्ड मिल जायें — ऐसी तमाम बातें यदि सच हों तो हमें शरम आनी चाहिये। अब हम पर कोई विदेशी सरकार राज्य नहीं कर रही है। और अंग्रेजोंके जमानेमें छोटे सरकारी कर्मचारियों पर जिस तरहके हुक्म बजाये जाते थे, वैसे हुक्म भी अब आप पर कोई नहीं बजा सकता। इसलिए छोटे-बड़े सब लोगोंको वफादारीके साथ देशकी सेवा करनी चाहिये। आपको अपने मनसे यह वृत्ति निकाल देनी चाहिये कि नौकरी करके पैसे कमा लिये और अपना पेट भर गया, तो हमने दुनिया जीत ली। जितने भी सिविल सर्विसवाले कर्मचारी हैं उनसे मैं विनतीपूर्वक कहना चाहता हूं कि आजसे आपकी जिम्मेदारी दस गुनी ज्यादा बढ़ रही है। आप लोग जितनी वफादारीसे देशकी सेवा करेंगे उतनी ही जल्दी स्वराज्यमें सुख, शान्ति और समृद्धि प्राप्त होगी। ४

घुड़दौड़ और सिविल सर्विस

नीचे दिया हुआ भाग 'हरिजनबन्धु' में छपे एक गुजराती पत्रका सारांश है:

"वरसातके मौसममें पूनामें घुड़दौड़ होती है। तीन स्पे
गाड़ियां हर रोज पूना जाती हैं और वापस आती हैं। अ
यह तव होता है जव गाड़ियोंमें जगह नहीं मिलती और व्याप
रियोंको यात्रियोंसे ठसाठस भरी हुई गाड़ियोंमें सफर करन
पड़ता है। यात्री अकसर पायदानों पर खड़े खड़े सफर करते
देखे जाते हैं। नतीजा यह होता है कि कभी कभी प्राणघातक
दुर्घटनाएं हो जाती हैं। इसमें यह वात और जोड़ दीजिये कि
जव पेट्रोलकी सव जगह कमी है तव विशेष मोटर गाड़ियां भी
वम्वईसे पूना दौड़ती हैं। क्या ये यात्री वम्वईमें अपना हमेशाका
राशन नहीं लेते? क्या इन्हें स्पेशल गाड़ियोंमें और घुड़दौड़के
मैदानमें नाश्ता नहीं मिलता?

"इस परसे मेरे मनमें सिविल सर्विसकी जांच करनेकी
वात पैदा होती है। जिन लोगोंके वुरे प्रवन्धकी हम पहले निन्दा
करते थे, क्या वे ही लोग आज देशका राजकाज नहीं चला रहे
हैं? हमारी आज क्या हालत हो रही है? हमें जरूरतका अनाज
और कपड़ा भी प्राप्त नहीं हो रहा है। फिर भी हम ऐसे
खर्चीले खेल-तमाशोंमें फंसे हुए हैं।"

मैं अकसर घुड़दौड़की वुराइयोंके वारेमें लिख चुका हूं। लेकिन
उस समय मेरी वात पर कोई ध्यान नहीं देता था। विदेशी शासक
इस वुराईको पसंद करते थे और उन्होंने इसे एक तरहकी अच्छाईका
जामा पहना दिया था। लेकिन अव उस गन्दी वुराईसे चिपके रहनेका
कोई कारण नहीं है। या कहीं ऐसा न हो कि हम विदेशी हुकू-
मतकी वुराइयोंको तो वनाये रखें और उसकी अच्छाइयां उसके साथ
ही खतम हो जायं?

पत्र लिखनेवाले भाई सिविल सर्विसके वारेमें जो कहते हैं, उसमें
वहुत सचाई है। वह एक ऐसी संस्था है, जिसके आत्मा नहीं है। वह
अपने मालिकके ढंग पर चलती है। इसलिए अगर हमारे प्रतिनिधि

सचेत रहें और हम उन पर अपना फर्ज अदा करनेके लिए जोर डालें, तो सिविल सर्विसके जरिये बहुत कुछ काम किया जा सकता है। आलोचना किसी भी लोकतांत्रिक सरकारका भोजन है। लेकिन वह रचनात्मक और समझदारीसे भरी होनी चाहिये। जन-आन्दोलनके आरंभमें कांग्रेस अपनी जिस बुनियादी पवित्रताके लिए प्रसिद्ध थी, उस पर ही जनताकी आशा टिकी हुई है। और अगर हमें जिन्दा रहना है, तो कांग्रेसमें वह पवित्रता हमें फिरसे लानी होगी। ५

सिविल सर्विस और कंट्रोल

सिविल सर्विसके कर्मचारी आफिसोंमें बैठकर काम करनेके आदी हैं। वे दिखावटी कार्रवाइयों और फाइलोंमें ही उलझे रहते हैं। उनका काम इससे आगे नहीं बढ़ता। वे कभी किसानोंके सम्पर्कमें नहीं आये। वे किसानोंके बारेमें कुछ नहीं जानते। मैं चाहता हूं कि वे नम्र बनकर राष्ट्रमें जो परिवर्तन हुआ है उसे पहचानें। कंट्रोलोंकी वजहसे उनके इस तरहके कामोंमें कोई रुकावट नहीं होनी चाहिये। उन्हें अपनी सूझ-बूझ पर निर्भर करनेका मौका देना चाहिये। लोकशाहीका यह नतीजा नहीं होना चाहिये कि वे अपने-आपको लाचार महसूस करें। मान लीजिये कि इस बारेमें बड़ेसे बड़े डर सब साबित हों और कंट्रोल हटानेसे हालत ज्यादा बिगड़ जाय, तो वे फिर कंट्रोल लगा सकते हैं। मेरा अपना तो यह विश्वास है कि कंट्रोल उठा लेनेमें हालत सुधरेगी। लोग खुद इन सवालोंको हल करनेकी कोशिश करेंगे और उन्हें आपसमें लड़नेका समय नहीं मिलेगा। ६

सिविल सर्विस, पुलिस और फौज

आज हिन्दुस्तानमें सिविल सर्विसके कर्मचारी, पुलिस और फौज, जिनमें ब्रिटिश अफसर भी शामिल हैं, सब जनताके सेवक हैं। वे दिन अब बीत गये जब वे विदेशी शासकोंसे तनखाह पाकर जनताके साथ मालिकों जैसा बरताव करते थे। अब उन्हें पंचायत-राज्यके वफादार सेवक बनना होगा। उन्हें मंत्रियोंसे आदेश लेने होंगे। उन्हें

पर भारी भारी कुर्बानी किये गये; कुटुम्बी या रिश्तेदार, जो अपनी जीविका कमानेवाले सदस्योंसे हाथ धो बैठे, वकील, जिन्होंने अपनी वकालत छोड़ दी और मुवक्किलोंकी हवालातमें पहुंच गये, और विद्यार्थी, जिन्होंने अपनी पढ़ाई और भविष्यकी तमाम आशायें छोड़ दीं। उनका मतलब यह है कि स्वेच्छापूर्वक किया गया कष्ट-सहन स्वयं ही अपना पुरस्कार है, और ऐसा कष्ट-सहन किसी और मुआवजेका दावा नहीं करता।

यदि वे सबके सब कांग्रेसी मंत्रियोंके सामने इस तरहका दावा करने लग जायें, तब तो उनका सचमुच यह दुर्भाग्य ही कहा जायेगा और मुआवजोंके इन सारे दावों पर विचार करनेके सिवा वे दूसरा कोई काम ही नहीं कर सकेंगे। इन दावोंको पूरा करनेके लिए उन्हें रुपया भी कहींसे पैदा करना पड़ेगा, जो कई करोड़ होना चाहिये। इसके अलावा, जिन सरकारी नौकरोंने अपनी नौकरियां मजबूरन् या अपनी मरजीसे छोड़ दी थीं, उनके लिए यह बताना भी कठिन होगा कि दूसरे पीड़ितोंने उनकी तुलनामें कम तकलीफें उठाई थीं।

मेरी रायमें इन भूतपूर्व सरकारी नौकरोंने एक वर्गके नाते सबसे कम तकलीफ या नुकसान उठाया है। और अगर इतने बरसों तक उन्हें कोई काम नहीं मिला और वे बिलकुल बेकार बैठे रहे हैं तो वे शायद ही राज्यके योग्य नौकर हो सकते हैं। कांग्रेसजनोंके लिए सरकारी नौकरी कोई आर्थिक उन्नतिका द्वार नहीं है; उसे तो लोक-सेवाका एक साधन होना चाहिये। इसलिए सिर्फ वे ही कांग्रेसवादी सरकारी नौकरियोंमें प्रवेश करें, जिनकी बाजार-कीमत उससे कहीं ऊंची हो जो वे सरकारसे पा सकते हैं। वे तभी नियुक्त किये जा सकते हैं जब सरकारको उनकी आवश्यकता हो। 'कांग्रेसका आश्रय' जैसी कोई चीज तो होनी ही नहीं चाहिये। १

है। दूसरी बात तो यह है कि वे सेनामें गलत प्रकारका रस लेते हैं। वे मानते हैं कि सेना उनकी रक्षा करती है व्यापारकी रक्षा करती है, धन लाती है, दूसरे देशों पर हमारा अधिकार जमाती है और देशके भीतर दंगा-फसाद होने पर सरकारको उसके ऊपर खड़ा रखती है। क्या ही अच्छा हो कि लोकराज्य किसी भी बातके लिए सेनाका सहारा न ले, ताकि वह सच्चा लोकराज्य हो सके।

जिस सेनाकी ऊपर चर्चा की गई है, उसने हिन्दुस्तानके लिए क्या किया है? मुझे डर है कि किसी अर्थमें भी उसने हिन्दुस्तानको लाभ नहीं पहुंचाया है। उसने बेकार खाना-खोरा देशवासियोंको गुलाम बना रखा है। उसने थोड़े लोगोंको महान बना दिया है। उस सेनाका ब्रिटिश विभाग जितनी जल्दी यहांसे वापिस भेज दिया जाय और किसी अधिक अच्छे काममें लगा दिया जाय, उतना ही हिन्दुस्तानका, इंग्लैंडका और दुनियाका भला होगा। सेनाके हिन्दुस्तानी विभागका विभाग भी जितनी जल्दी विनाशके कार्यसे हटाकर सर्जनके कार्यमें लगा दिया जाय, उतना ही लोकराज्यके लिए वह अधिक उपयोगी होगा। जो लोकराज्य केवल सेनाके सहारे ही जीवित रह सके, वह एक निकम्मी चीज है। सैनिक शक्ति मनके विकासको रोकती है। उसमें मनुष्यकी आत्मा दब जाती है। इस 'सुयोग्य' सेनाने इतने बरसोंसे विदेशी हुकूमतको देशमें कायम रखा है। उसकी कृपासे आज स्थिति यह हो गई है कि कैबिनेट मिशनके प्रयत्नोंके बावजूद हिन्दुस्तानको शायद एक छोटी या लम्बी घरेलू लड़ाईमें से गुजरना पड़े। उसका कड़वा अनुभव ही शायद हमें सशस्त्र सेनाके मोहसे छुड़ा सकेगा। सेनामें आदेश या नियमके अनुसार चलनेकी जो खूबी है, वह तो समाजके हर अंगमें होनी चाहिये। इस खूबीको निकाल दें, तो सेना आदमीको हैवान बनानेके सिवा और कुछ नहीं सिखाती। अगर स्वतंत्र हिन्दुस्तानको भी आजके जितना ही सैनिक खर्च

पड़ा, तो भूखों मरनेवाले करोड़ों लोगोंको उसकी स्वतंत्रतासे कोई लाभ नहीं पहुंचेगा। १

अगर हम स्वराज्यकी देहरी पर खड़े हैं, तो हमें सेनाको अपनी समझकर रचनात्मक कार्यमें उसका उपयोग करनेसे जरा भी हिच-किचाना नहीं चाहिये। आज तक उसका उपयोग हमारे खिलाफ अंधाधुंध गोलीबार करनेमें हुआ है। आज सेनावाले हल चलाकर अनाज पैदा करें, कुएं खोदें, पाखाने साफ करें और दूसरे अनेक रच-नात्मक कार्य करके लोगोंकी आंखकी किरकिरी न रहकर सबके प्रिय बनें। २

८५

[illegible]नुशासनका गुण

आजाद [illegible] शासन कैसा होना चाहिये, इसकी मिसाल हमें अंग्रेजोंसे ले[illegible]। रानी विक्टोरियाके बारेमें यह कहानी प्रसिद्ध है कि जब [illegible]रसकी थी तब एक रात उसे यह कहनेके लिए जगाया गया [illegible]लैंडकी रानी है। वह जवान लड़की भग-वान द्वारा सौंपी ग[illegible]री जिम्मेदारीसे स्वाभाविक रूपमें घबरा गई और जरूरतसे [illegible] गई। बूढ़े प्रधानमंत्रीने रानीके सामने घुटनोंके बल झुककर [illegible] ढाढ़स बंधाया। रानी विक्टोरियाने सिर्फ इतना ही कहा कि मैं ठीक हो जाऊंगी। इंग्लैंडके अनुशासन पालने-वाले लोगोंने ही रानीको राज्य करनेमें मदद की। आज मैं चाहता हूं कि आप यह समझ लें कि आजादी आपके दरवाजे पर खड़ी है। वाइस-रॉय मंत्रि-मंडलके सिर्फ नामके अध्यक्ष हैं। आप देशके राजकाजमें उनकी मददकी आशा न करके ही उन्हें मदद पहुंचायेंगे। आपके बेताज-के बादशाह पंडित जवाहरलाल नेहरू हैं। वे आपकी सेवा राजा बनकर नहीं, बल्कि प्रथम पंक्तिके सेवक बनकर ही कर रहे हैं। वे हिन्दुस्तानकी

सेवाके द्वारा सारी दुनियाकी सेवा करना चाहते हैं। जवाहरलाल अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्ति हैं और वे हिन्दुस्तानमें रहनेवाले सारे विदेशी राजदूतोंसे मित्रताका सम्बन्ध रखते हैं। लेकिन अगर लोग अनुशासन तोड़कर जवाहरलालके कामको बिगाड़ दें, तो वे अकेले राज नहीं चला सकते। पहलेके स्वेच्छाचारी शासकोंकी तरह वे तलवारके बल पर राज नहीं कर सकते। ऐसा राज न तो पंचायत-राज होगा और न जवाहर-राज। हर हिन्दुस्तानीका यह कर्तव्य है कि वह मंत्रियोंके कामको आसान बनाये और उसमें किसी तरहका हस्तक्षेप न करे।

आपको याद होगा कि पंडित नेहरू किस प्रकार एक साल पहले काश्मीर गये थे जब कि उनका दिल्लीमें रहना अत्यन्त आवश्यक था; और किस प्रकार उस समयके कांग्रेस प्रेसिडेंट मौलाना साहबके आदेशसे वे दिल्ली लौट आये थे। आज पंडितजी फिर काश्मीर जानेकी बात कर रहे हैं। उनका दिल दुखी है, क्योंकि काश्मीरियोंके नेता शेख अब्दुल्ला साहब अभी तक जेलमें बन्द हैं। लेकिन मुझे लगता है कि पंडितजीका दिल्लीमें रहना ज्यादा जरूरी है। इसलिए उनके बदले मैंने काश्मीर जानेकी इच्छा प्रकट की है। लेकिन जवाहरलाल मुझे वहां जानेकी आज्ञा दें, इसके पहले उन्हें बहुतसी बातोंका विचार करना होगा। यदि मैं काश्मीर गया तो वहांसे भी उसी तरह बिहार और बंगालकी सेवा करूंगा, जैसे मैं इन प्रान्तोंमें शरीरसे मौजूद रह कर करता। १

८७

नमक-कर

आज मुझे एक दूसरी बात कहनी है। नमकका कर रद करानेके लिए हमने दांडीकूच की थी। बेशक, वह कर तो रद कर दिया गया। परन्तु नमक आजकल महंगा हो गया है। अगर यह सच हो तो हमारे व्यापारियोंके लिए यह लज्जाकी बात है। गरीब लोग जिस नमक पर निर्वाह करते हैं उस नमकसे भी व्यापारी नफा कमानेकी इच्छा रखें, यह सचमुच घृणास्पद और निन्दनीय है। शक्कर न मिले तो आदमी काम चला सकता है, परन्तु नमकके बिना गरीबोंके गलेके नीचे रोटी नहीं उतर सकती। सरकारसे भी मेरी विनती है कि इस बारेमें वह जाग्रत रहे। सरकारको चाहिये कि वह अपनी देखरेखमें नमकके आगरों और कारखानोंका काम चलाये, जिससे गरीब जनताको मूल कीमत पर नमक मिल सके। नमक-कर रद होनेका लाभ देशकी जनताको मिलना ही चाहिये। अगर लोग चाहें तो वे गांवोंमें और शहरोंमें घर-घर नमक बना सकते हैं। ऐसा करनेसे कोई उन्हें रोक नहीं सकता। अगर हम अपना आलस्य छोड़ दें, तो ऐसे अनेक गृह-उद्योगोंका विकास हो सकता है और हमारी आर्थिक और नैतिक स्थिति सुधर सकती है। अगर लोग खुद नमक बनायें और उसके वितरणकी व्यवस्था करें तथा उससे नफा कमानेका लोभ छोड़ दें, तो नाममात्रकी कीमत पर ही नमक मिल सकता है। परन्तु हमारे देशमें आज सर्वत्र स्वार्थ और भ्रष्टाचारका बोलबाला है। ऐसी परिस्थितिमें रामराज्यकी कल्पना कैसे सिद्ध हो सकती है? लेकिन एक बात निश्चित है कि यदि पाकिस्तान या भारतकी सरकार अपनी सत्ताके गर्वमें आकर नमक पर कर लगायेगी, तो वह एक लज्जाजनक और दुःखद कृत्य होगा। मेरी आशा तो यह है कि ऐसा नहीं होगा। आज हम नमक-हराम बन गये हैं। १

८६

मंत्री और प्रदर्शन

अब हमें देशका भिन्न रीतिसे मार्गदर्शन करना पड़ेगा; और उसके लिए कार्यकर्ताओंका एक अच्छा दल खड़ा करना होगा। इन कार्यकर्ताओंका यह कर्तव्य होगा कि वे लोगोंमें घुल-मिलकर उनके सच्चे दुःखों और कष्टोंको जानें और उन्हें यह पाठ सिखायें कि अब यह देश हमारा है और देशका शासन चलानेवाले मंत्री हमारे चुने हुए हैं। अब यदि उनके खिलाफ प्रदर्शन किये जायं, तो उनसे मंत्रियोंकी अपेक्षा लोगोंका ही अपमान अधिक होता है। हां, यदि कोई मंत्री ऐसा काम करता हो जिससे आम जनताके साथ अन्याय हो, तो जनता उसे कान पकड़ कर मंत्रीपदसे अलग कर सकती है — उसके स्थान पर दूसरेको बैठा सकती है। अब यह शक्ति भी जनतामें विकसित होनी चाहिये। मंत्री अपने पदों पर जनताके स्वामियोंके नाते नहीं बैठे हैं, परन्तु उनके सेवकोंके नाते बैठे हैं। यही बात मैं समाजवादियोंसे भी कह रहा हूं। परन्तु . . . जैसे लोग भी आज मेरी बात समझते नहीं हैं, यद्यपि मैं आशा तो रखता हूं कि उन्हें समझा सकूंगा। कांग्रेसने अंग्रेजोंके खिलाफ आजादीकी लड़ाई लड़ते समय जो काम किया, उसे भूल कर अब कांग्रेसको राष्ट्रकी जनताको राजनीतिक शिक्षण देनेकी मुहिम शुरू करनी चाहिये। १

८७

नमक-कर

आज मुझे एक दूसरी बात कहनी है। नमकका कर रद करानेके लिए हमने दाडीकूच की थी। बेशक, वह कर तो रद कर दिया गया। परन्तु नमक आजकल महंगा हो गया है। अगर यह सच हो तो हमारे व्यापारियोंके लिए यह लज्जाकी बात है। गरीब लोग जिस नमक पर निर्वाह करते हैं उस नमकसे भी व्यापारी नफा कमानेकी इच्छा रखें, यह सचमुच घृणास्पद और निन्दनीय है। शक्कर न मिले तो आदमी काम चला सकता है, परन्तु नमकके बिना गरीबोंके गलेके नीचे रोटी नहीं उतर सकती। सरकारसे भी मेरी विनती है कि इस बारेमें वह जाग्रत रहे। सरकारको चाहिये कि वह अपनी देखरेखमें नमकके आगरों और कारखानोंका काम चलाये, जिससे गरीब जनताको मूल कीमत पर नमक मिल सके। नमक-कर रद होनेका लाभ देशकी जनताको मिलना ही चाहिये। अगर लोग चाहें तो वे गांवोंमें और शहरोंमें घर-घर नमक बना सकते हैं। ऐसा करनेसे कोई उन्हें रोक नहीं सकता। अगर हम अपना आलस्य छोड दें, तो ऐसे अनेक गृह-उद्योगोंका विकास हो सकता है और हमारी आर्थिक और नैतिक स्थिति सुधर सकती है। अगर लोग खुद नमक बनायें और उसके वितरणकी व्यवस्था करें तथा उससे नफा कमानेका लोभ छोड़ दें, तो नाममात्रकी कीमत पर ही नमक मिल सकता है। परन्तु हमारे देशमें आज सर्वत्र स्वार्थ और भ्रष्टाचारका बोलबाला है। ऐसी परिस्थितिमें रामराज्यकी कल्पना कैसे सिद्ध हो सकती है? लेकिन एक बात निश्चित है कि यदि पाकिस्तान या भारतकी सरकार अपनी सत्ताके गर्वमें आकर नमक पर कर लगायेगी, तो वह एक लज्जाजनक और दुःखद कृत्य होगा। मेरी आशा तो यह है कि ऐसा नहीं होगा। आज हम नमक-हराम बन गये हैं। १

स्रोत

[इसमें यं. इं. 'यंग इंडिया' के लिए, ह. 'हरिजन' के लिए, ह. से. 'हरिजनसेवक' के लिए, हिं. न. 'हिंदी नवजीवन' के लिए तथा नटेसन 'स्पीचेज एण्ड राइटिंग्स ऑफ महात्मा गांधी, (चौथा संस्करण), नटेसन, मद्रास, के लिए आया है।]

विभाग – १

प्रकरण – १
१. यं. इं, १०–९–'३१, पृ. २२५
२. ह, २५–३–'३९, पृ. ६५
३. ह, १८–५–'४०, पृ. १२९

प्रकरण – २
१. हिं. न, २९–१–'२५, पृ. १९८
२ यं. इं., २९–१२–'२०, पृ. ६
३. हिंद स्वराज्य, (१९५९), पृ. २३
४. नटेसन, पृ. ४०६–०८

विभाग – २

प्रकरण – ३
१. ह. से., १–५–'३७, पृ. ८९-९०

प्रकरण – ४
१. ह. से., ८–५–'३७, पृ. ९१-९२

प्रकरण – ५
१. ह. से, १०–२–'४६, पृ. ८

प्रकरण – ६
१. ह से., २२–५–'३७, पृ. ११०-११

विभाग – ३

प्रकरण – ७
१. ह. से, १७–८–'४७, पृ. २३४

प्रकरण – ८
१. ह. से., १६–७–'३८, पृ. १७२-७३

प्रकरण – ९
१. ह. से, ८–३–'४२, पृ. ७२,

प्रकरण – १०
१. ह. से, २१–७–'४६, पृ. २२७

विभाग – ४

प्रकरण – ११
१. ह. से, १३–१–'४०, पृ. ३८६
(आ)

प्रकरण – १२
१. ह. से., २–६–'४६, पृ. १६२-६३

विभाग – ५

प्रकरण – १३
१. ह से., २८–७–'४६, पृ २३७-३८

प्रकरण – १४
१. ह से., १६–६–'४६, पृ. १८४

प्रकरण – १५
१ दिल्ली-डायरी, (१९६०), पृ. ३२४-२५
२ दिल्ली-डायरी, (१९६०), पृ. ३३०-३१

प्रकरण – १६
१. ह से., २३–४–'३८, पृ. ७६
२. ह. से, १४–८–'३७, पृ. २०७

विभाग – ६

प्रकरण – १७
१. ह. से., २५–१–'४२, पृ. १६
२ ह, २–१–'३७, पृ. ३७५
३. रचनात्मक कार्यक्रम, (१९५८) पृ. १३-१४

प्रकरण – १८
१. ह., ७–४–'४६, पृ. ७६
२. ह. से, २८–४–'४६, पृ. १०९

२. ह. से., ७–४–'४६, पृ. ७०

प्रकरण – १९

१. यं. इं, ८–१०–'३१, पृ. २१७
२. ह. से., २–३–'४७, पृ. ३८
३. ह. से., २८–१–'३९, पृ. ४०४-०५

प्रकरण – २०

१. यं. इं., ७–७–'२७, पृ. २११
२. यं. इं., ८–१२–'२७, पृ. ४१५
३. सत्याग्रह इन साउथ आफ्रिका, (१९६१), पृ. ८८
४. नेशन्स व्हॉइस, (१९५८), पृ. ५१-५२

विभाग – ७

प्रकरण – २१

१. ह. से., १७–७–'३७, पृ. १७४-७५

प्रकरण – २२

१. ह. से., २४–७–'३७, पृ. १८२

प्रकरण – २३

१. ह. से., ७–८–'३७, पृ. १९८

प्रकरण – २४

१. ह. से., २१–८–'३७, पृ. २१४

प्रकरण – २५

१. ह. से., ४–९–'३७, पृ. २३०-३१

प्रकरण – २६

१. ह. से., ३१–७–'३७, पृ. १९०-९३

प्रकरण – २७

१. ह. से., १३–११–'३७, पृ. ३१०

प्रकरण – २८

१. ह. से., २८–८–'३७, पृ. २२२-२३
ह. से., २४–१२–'३८, पृ. ३६०
. से., १–४–'३९, पृ. ४९
१५–७–'३९, पृ. १७५-७६

प्रकरण – २९

१. बिहार पछी दिल्ही (गुजराती (१९६१), पृ. ४४०
२. ह., १०–१२–'३८, पृ. ३६८-६९
३. ह. से., २१–१०–'३९, पृ. २८४-८५
४. ह. से., २८–४–'४६, पृ. १०४
५. ह., १–९–'४६, पृ. २८८
६. ह. से., २०–१०–'४६, पृ. ३६२
७. ह. से., २७–१०–'४६, पृ. ३१

प्रकरण – ३०

१. ह. से., २५–८–'४६, पृ. २८१-८२

प्रकरण – ३१

१. ह. से., २५–८–'४६, पृ. २८६-८८

प्रकरण – ३२

१. यं. इं., १–९–'२१, पृ. २७७
२. ह. से., ९–७–'३८, पृ. १६१-६३
३. ह. से., ३०–७–'३८, पृ. १८९

प्रकरण – ३३

१. ह., ११–९–'३७, पृ. २५०

प्रकरण – ३४

१. ह. से., १५–१०–'३८, पृ. २७७-७८

प्रकरण – ३५

१. ह., ४–९–'३७, पृ. २३३-३४
२. ह. से., २५–८–'४६, पृ. २७४

प्रकरण – ३६

१. ह. से., २५–९–'३७, पृ. २५५

प्रकरण – ३७

१. ह. से., २३–६–'४६, पृ. १९८
२. ह. से., १५–९–'४६, पृ. ३११
३. ह. से., ३–११–'४६, पृ. ३७६-७७

प्रकरण – ३८

१. ह. से., २८–१२–'४७, पृ. ४१६

स्रोत

प्रकरण – ३९

१. ह. से., १७–१२–'३८, पृ. ३५२-५३

विभाग – ८

प्रकरण – ४०

१. ह. से., ३–९–'३८, पृ. २२८-२९

प्रकरण – ४१

१. ह. से., १४–४–'४६, पृ. ८९

प्रकरण – ४२

१. ह. से., २१–४–'४६, पृ. ९६

प्रकरण – ४३

१. ह. से., ९–६–'४६, पृ. १७६

प्रकरण – ४४

१. ह. से., ९–११–'४७, पृ. ३३७-३८

विभाग – ९

प्रकरण – ४५

१. कलकत्तेका चमत्कार, (१९५६), पृ. ४२

प्रकरण – ४६

१. बिहारकी कौमी आगमें, (१९५९), पृ. २१०-१२

प्रकरण – ४७

१. ह. से., २५–९–'३७, पृ. २५१

प्रकरण – ४८

१. ह. से., १६–१०–'३७, पृ. २७७

प्रकरण – ४९

१. ह. से., ९–६–'४६, पृ. १७०-७१

प्रकरण – ५०

१. ह. से., १९–१०–'४७, पृ. ३१७-१८

प्रकरण – ५१

१. दिल्ली-डायरी, (१९६०), पृ. ३६३-६४

प्रकरण – ५२

१. टुवर्ड्स न्यू होराइजन्स, (१९...), पृ. १०१-०२

प्रकरण – ५३

१. ह. से., ४–८–'४६, पृ. २...

प्रकरण – ५४

१. ह. से., २९–९–'४६, पृ. ...

प्रकरण – ५५

१. ह. से., २९–९–'४६, पृ. ३...

प्रकरण – ५६

१. एकला चलो रे, (१९६१), पृ. ...

प्रकरण – ५७

१. ह. से., २–११–'४७, पृ. ३...

प्रकरण – ५८

१. ह. से., १६–११–'४७, पृ. ३...

विभाग – १०

प्रकरण – ५९

१. ह. से., २५–६–'३८, पृ. १...

प्रकरण – ६०

१. ह. से., २१–४–'४६, पृ. ९७

प्रकरण – ६१

१. ह. से., १०–९–'३८, पृ. २३६

प्रकरण – ६२

१. ह. से., ८–९–'४६, पृ. ३०१-०२

प्रकरण – ६३

१. ह. से., २१–९–'४७, पृ. २७३

प्रकरण – ६४

१. ह. से., २२–७–'३९, पृ. १८३

प्रकरण – ६५

१. ह. से., २६–१०–'४७, पृ. ३२२-२३

प्रकरण – ६६

१. ह. से. [illegible], पृ. [illegible]

२. ह. [illegible]

अन्य लेखकोंकी पठनीय पुस्तकें

अंग्रेजोंके बारेमें हम क्या करेंगे ?	०.६०
अभिनव रामायण	४ ००
आधुनिक जगतमें गांधीजीकी कार्य-पद्धतियां	१ ००
आशाका एकमात्र मार्ग	२ ००
एकला चलो रे	२ ००
उन पारके पड़ोसी	३.५०
ऐसे थे बापू	१ ७५
गांधीजी एक झलक	१ ५०
गांधीजी और गुरुदेव	० ८०
गांधी और साम्यवाद	१ २५
गांधीजीकी साधना	३ ००
गांधी-विचार-दोहन	२ ५०
ग्राम-संस्कृतिका अगला चरण	१.८०
जड़मूलसे क्रांति	१.५०
जीवन-लीला	३ ००
जीवन-शोधन	३ ००
तालीमकी बुनियादें	२ ००
नेहरूजी — अपनी ही भाषामें	३ ५०
बापूकी विराट् वत्सलता	१ ००
महात्मा गांधी · पूर्णाहुति — प्रथम खंड	८ ००
सर्वोदय तत्त्व-दर्शन	६ ००
हमारी बा	२ ००

नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद-१४

खादी : क्यों और कैसे ? लेखक : गांधीजी

गांधीजी खादी-आन्दोलनमें गांवोंके आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवनके पुनरुद्धारका दर्शन करते थे। इस संग्रहसे यह मालूम होता है कि राष्ट्रीय पुनर्निर्माणके बारेमें गांधीजीके विचार क्या थे और भारतकी जनताकी आर्थिक स्थिति सुधारनेमें खादीका क्या स्थान होना चाहिये।

कीमत २.०० डाकखर्च ०.९०

ग्राम-स्वराज्य लेखक : गांधीजी

गांधीजी इस बात पर बड़ा जोर देते थे कि भारतके गांवोंमें ग्राम-पंचायतोंको पुनर्जीवन देकर सच्चे ग्राम-स्वराज्यकी स्थापना करनी चाहिये। इस संग्रहमें ग्राम-स्वराज्यके विभिन्न अंगों पर प्रकाश डालने-वाले गांधीजीके विचारोंका संकलन किया गया है।

कीमत ३.०० डाकखर्च ०.९०

प्रजातंत्र : सच्चा और झूठा लेखक : गांधीजी

इस संग्रहमें गांधीजीकी कल्पनाके प्रजातंत्र पर प्रकाश डाला गया है। इसके कुछ महत्त्वपूर्ण विषय इस प्रकार हैं: प्रजातंत्र और अहिंसा, प्रजातंत्रमें सेना और पुलिस, प्रजातंत्रमें अधिकार और कर्तव्य, प्रजातंत्रमें सत्याग्रह, प्रजातंत्र और हुल्लड़शाही आदि।

कीमत १.०० डाकखर्च ०.२५

नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद–१४